बुन्देलखण्ड एजेन्सी का प्रबन्ध और इतिहास

(1802-1947)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

में

पी-एच.डी.

उपाधि हेतु
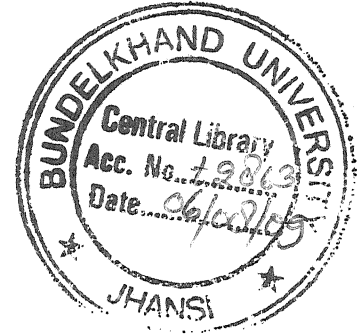
शोध प्रबन्ध

2007

शोध निदेशक

डा. अजीत सिंह

प्रवक्ता इतिहास विभाग

बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी

प्रस्तुतकर्ता

Shobha Pandey
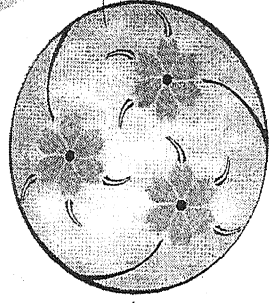
श्रीमती शोभा पाण्डेय

सादर समर्पित

परम पूज्य दादा जी

स्व. श्री शिवमोहन पाण्डेय

डा0 अजीत सिंह
प्रवक्ता, इतिहास
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी

दिनांक ....

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्रीमती शोभा पाण्डेय** ने मेरे निर्देशन में इतिहास विषय में पीएच0डी0 उपाधि हेतु शीर्षक **"बुन्देलखण्ड एजेन्सी का प्रबन्ध एवं इतिहास (1802 से 1947)"** पर शोध कार्य किया है । शोधार्थिनी ने 200 दिन से अधिक उपस्थिति की अनिवार्यता पूरी कर ली है । यह शोध प्रबन्ध मौलिक तथा अनुसंधान की वैज्ञानिकता से युक्त है।

मैं इसे पीएच0डी0 उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ संस्तुत करता हूँ।

भवदीय

Ajeet

डा0 अजीत सिंह

प्राक्कथन

1803 की बेसिन की संधि से बुन्देलखण्ड के इतिहास में विदेशी सत्ता की स्थापना का सूत्रपात हुआ। इससे कम्पनी की यह चिरप्रतीक्षित इच्छा कि मध्य भारत के इस क्षेत्र में अपनी सत्ता की स्थापना कर औपनिवेशिक शक्ति को मजबूती प्रदान की जाए, पूरी हुई। इसी वर्ष कर्नल जॉनवेली ने बाँदा पहुँचकर ब्रिटिश क्षेत्रों पर नियन्त्रण स्थापित किया और बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन किया। 1830 से 1857 ई. के बीच इस क्षेत्र में कम्पनी शासन का प्रसार हुआ। इस अवधि में औपनिवेशिक शक्ति ने बुन्देलखण्ड के लोगों का सामाजिक, आर्थिक शोषण किया। राजस्व की दरों में निरन्तर वृद्धि की गयी जिससे किसानो और जमींदारों की स्थिति सोचनीय हो गयी। इंग्लैण्ड के कल–कारखानों में उत्पादित होने वाली वस्तुओं की बिक्री को प्रोत्साहित करने के लिए भारतीय उत्पादों को हतोत्साहित किया गया। फलतः हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग आदि का तेजी से पतन हुआ। कुटीर उद्योगों के पतन से बुन्देलंखण्ड में कपास की खेती भी नष्ट हो गयी, माँग कम होने के कारण लोगों ने कपास बोना बन्द कर दिया।

सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न की नीति के पीछे अंग्रेजी शासन की सोची–समझी, सुनियोजित नीति थी, उन्हे यह भलीभाँति ज्ञात था कि मध्य भारत के इस जंगली एवं पठारी क्षेत्र में ऐसे लोग निवास करते हैं जो अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए सब कुछ न्योछावर कर सकते हैं। बुन्देलखण्ड के निवासियों का स्वतन्त्रता प्रिय चरित्र का अंग्रेजी शासको ने बारीकी से अध्ययन किया था। 1872 में ओरछा से गुजरते हुए बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट ने

यह लिखा था –''डाँगों, पहाड़ो तथा वनो से आच्छादित इस क्षेत्र मे ऐसे बहादुर, रणबाँकुरे निवास करते हैं जो यदि ब्रिटिश आतंक न हो तो किसी भी समय अपने युद्ध घोषों से अंग्रेजी शासन की जड़ों को झकझोर देंगे।''[1] अतः बुन्देलखण्ड के बहादुर लोगों को दबाए रखने के लिए अंग्रेजों ने सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न की नीति अपनाई ताकि इस क्षेत्र के किसान मजदूर तथा जमींदार पूरे समय अपने रोटी की व्यवस्था के लिए मजबूर रहें और इस तरह भूखा व्यक्ति क्रान्ति या विद्रोह करने की हिम्मत नही जुटा सकेगा।

सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न औपनिवेशिक शासन ने तो किया साथ ही साथ इस क्षेत्र में ऐसे लोग जो विदेशी शासन के सहायक थे जैसे ऋणदाताओं, मारवाड़ियों तथा बड़े जमींदारो ने भी इस क्षेत्र का शोषण किया। जैनियों और मारवाड़ियों ने जमीन गिरवी रख उच्च ब्याज दरों पर ऋण का लेन–देन किया, फलतः किसानों की जमीन उनके हाँथ में आ गयी। जमींदारों ने भी अपने रैयतो से अधिक से अधिक राजस्व लिया और उन्हे उत्पीड़ित किया। इस उत्पीड़न के बावजूद भी यहाँ के रणबाँकुरो ने हिम्मत नही हारी और 1857 मे विदेशी सत्ता के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा गाड़ दिया।

1858 से लेकर 1947ई. तक का युग आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न का चरम युग माना जा सकता है। इसके पीछे बदला लेने की नीति थी और इसी बदला लेने की नीति के कारण बुन्देलखण्ड एजेन्सी के लोगों का सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न किया गया।

---

[1] एटकिन्सन ई.टी., (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास), इलाहाबाद 1874, भूमिका

मैने अपने विषय ''**बुन्देलखण्ड एजेन्सी का प्रबन्ध और इतिहास** (1802 से 1947)'' का अध्ययन करते हुए इस क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न की पृष्ठभूमि को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन समय–समय पर बुन्देलखण्ड में उसके अन्य क्षेत्रों का स्थानान्तरण, प्रशासनिक तन्त्र का उदय, बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश छावनियों की स्थापना, ईसाईयत का प्रचार–प्रसार, बुन्देलखण्ड में वफादार प्रजा के निर्माण की योजना, गरीबी और बेरोजगारी के कारण आपराधिक जातियों का उदय आदि महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रकाश मे लाने का कार्य किया है।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकाड्र्स, भारत सरकार के राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपद नई दिल्ली में भलीभाँति संग्रहीत किया गया है। यहाँ रखी अनेकों फाइलें मध्य भारत के इस उपेक्षित क्षेत्र के इतिहास की श्रृंखलाबद्ध झाँकी प्रस्तुत करती है। मै, निदेशक, राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा उनके स्टॉफ की ऋणी हूँ जिन्होने मुझे इन दुर्लभ पाण्डुलिपियों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया। इसी तरह नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता तथा राज्यीय अभिलेखागार लखनऊ, इलाहाबाद आदि स्थानो पर मुझे महत्वपूर्ण साम्रगी प्राप्त हुई। मै आगरा विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा अन्य पुस्तकालयों में जहाँ मुझे अपने शोध विषय की सामग्री देखने को मिली उनके स्टॉफ की ऋणी हूँ और उन्हे धन्यवाद देती हूँ। बुन्देलखण्ड एजेन्सी के गठन, प्रशासन एवं यहाँ की सामाजिक, आर्थिक दुर्दशा जो अंग्रेजी शासनकाल में हुई उसे देखकर यह आवश्यक और महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि भारत सरकार तथा उत्तर प्रदेश शासन बुन्देलखण्ड के सामाजिक, आर्थिक

पिछड़ेपन को दूर करने के लिए विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराए ताकि अंग्रेजी काल में इस क्षेत्र के लोगों का किए गए शोषण का कुछ भरपाई हो सके।

मै अपने उपर्युक्त शोध प्रबन्ध के लेखन एवं अध्ययन में अपने शोध निदेशक डा0 अजीत सिंह का सम्यक मार्गदर्शन प्राप्त करती रही हूँ अतः मै उनकी आभारी हूँ और उन्हे हृदय से धन्यवाद देती हूँ। मेरे अनुज दिलीप पाण्डेय के सहयोग के बिना तो मेरा यह कार्य सम्भव ही नही था उन्होने दिन–रात मेहनत कर, मेरे साथ–साथ राष्ट्रीय अभिलेखागार जाकर विभिन्न पुस्तकालयों तक न केवल पहुँचने में ही मदद की बल्कि स्रोतों के संकलन एवं टाईपिस्ट से निरन्तर सम्पर्क कर इस कार्य को पूर्ण कराने में भरपूर सहायता की है मै उनको हृदय से धन्यवाद देती हूँ। मै, अपने पिता श्री रामचरित पाण्डेय एवं माता श्रीमती मीरा पाण्डेय की बहुत आभारी हूँ जिन्होने सच्चे हितैषी की भूमिका निभाते हुए मेरा मार्गदर्शन करते हुए प्रत्येक प्रकार से सहयोग किया। मैं अपने भाइयों एवं छोटी बहन को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होने मुझे समय–समय पर प्रोत्साहित किया।

मै अपने पति श्री प्रदीप पाण्डेय के प्रति सर्वाधिक आभारी रहूँगी जिन्होने मेरा केवल मनोबल ही नही बढ़ाया अपितु मेरे साथ–साथ विभिन्न स्थानों पर जाकर मेरे शोध प्रबन्ध को सरल बनाने में अमूल्य योगदान दिया है एवं अपने अमूल्य समय के अलावा उन्होने मुझे अमूल्य परामर्श एवं मार्गदर्शन दिया। अन्त में मैं श्री शैलेष जैन एवं अनुज वर्मा को धन्यवाद देती हूँ जिन्होने मेरे शोध प्रबन्ध को साफ एवं सुन्दर अक्षरों में टाइप कर सजाया–सँवारा है एवं दिन–रात मेहनत कर मेरे शोध प्रबन्ध को तैयार किया है।

बुन्देलखण्ड महाविद्यालय के इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष डा0एस0पी0 पाठक के प्रति भी आभार व्यक्त करना मै अपना कर्तय समझती हूँ जिन्होने मुझे समय–समय पर उचित सलाह एवं मार्गदर्शन प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत किया है। अतः मै उनको हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

शोधार्थिनी

Shobha Pandey
श्रीमती शोभा पाण्डेय
बी–12, आफिसर्स
हॉस्टल, सरकिट हाउस,
झाँसी।

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ सं.
1	बुन्देलखण्ड की संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं सामरिक महत्व	1–23
	➢ गुप्तों के पतन से हर्ष के उदय तक बुन्देलखण्ड की स्थिति	
	➢ चन्देल काल	
	➢ सल्तनतकालीन बुन्देलखण्ड (1000 ई. से 1500 ई. तक)	
	➢ मुगलकाल (1526–1707 ई.) में बुन्देलखण्ड की स्थिति	
	➢ बुन्देला शासन काल	
	➢ छत्रसाल के बाद मराठा – बुन्देला सम्बन्ध	
	➢ हिम्मत बहादुर गुँसाई का बुन्देलखण्ड अभियान	
	➢ बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी सत्ता का प्रारम्भ	
	➢ अलीबहादुर तथा हिम्मत बहादुर गुँसाई का बुन्देलखण्ड अभियान	
	➢ भौगोलिक एवं सामरिक महत्व	
2	बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन	24–39
	➢ अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित की गई बुन्देलखण्ड की रियासतें	
	➢ बेसिन की सन्धि 1802 ई0 के पश्चात् बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश सत्ता का विस्तार	
	➢ लार्ड हेस्टिंग्स के समय से रियासतों के प्रतिनिधित्व में परिवर्तन	
	➢ बुन्देलखण्ड के रियासतों के राजाओं एवं जागीरदारों से किए गए सन्धि तथा समझौतो का प्रभाव	
3	बुन्देलखण्ड एजेन्सी में प्रशासनिक तन्त्र का विकास	40–69
	➢ बुन्देलखण्ड में शान्ति व्यवस्था की स्थापना ब्रिटिश प्रशासन की प्रथम वरीयता	
	➢ राजाओं के मध्य परस्पर विवादों का निपटारा तथा सुशासन की स्थापना हेतु प्रयास	
	➢ बुन्देलखण्ड में पिण्डारियों का दमन कर जनता की वफादारी प्राप्त करने का प्रयास	
	➢ तुलनात्मक पद्धति द्वारा प्रशासनिक सूझ–बूझ का प्रदर्शन और राजाओं के कुशासन का प्रस्तुतीकरण	

- अधिग्रहण के पूर्व की राजस्व दरों में कटौती कर जनता की सद्भावना प्राप्त करने का प्रयास
- बुन्देलखण्ड में सैनिक छावनियों की स्थापना
- सैनिक छावनियों की स्थापना से बुन्देलखण्ड के लोगों में उत्पन्न प्रतिक्रिया
- कम्पनी प्रशासन द्वारा स्थानीय लोगों से सम्बन्ध
- बुन्देलखण्ड में सत्ता अधिग्रहण के पश्चात् किए गए प्रारम्भिक राजस्व प्रबन्ध
- बुन्देलखण्ड का दो जिलों में विभाजन
- सन् 1820–1824–25 तक राजस्व प्रबन्ध
- परवर्ती राजस्व प्रबन्ध
- झाँसी सुप्रीटेंडेंसी का गठन
- झाँसी डिवीजन का प्रशासन

4 पॉलिटिकल एजेण्ट की नियुक्ति एवं ब्रिटिश राजस्व व्यवस्था 70–93

- 1858 के पश्चात् ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के जिलों की राजस्व व्यवस्था
- झाँसी तथा ललितपुर के स्थायी राजस्व प्रबन्ध
- झाँसी का दूसरा और तीसरा बन्दोबस्त
- सन् 1874 का बन्दोबस्त
- हमीरपुर की राजस्व व्यवस्था
- जालौन जिले का राजस्व प्रबन्ध
- राजस्व व्यवस्था का मूल्यांकन
- जागीरों और रियासतों में दोषपूर्ण राजस्व प्रबन्ध

5 प्रमुख जागीरदारों का इतिहास 94–134

- गुँसाई जमींदार
- बाँदा जिले के नए जमींदार परिवार
- अन्य जमींदार
- मुस्लिम जमींदार
- झाँसी जिले के प्रमुख जमींदार
- प्रमुख बुन्देला जमींदार
- ललितपुर सबडिवीजन के जमींदार

➢ हक्–बटोटा

➢ जालौन तथा हमीरपुर के महत्वपूर्ण जमींदार

➢ अन्य जागीरदार

➢ जमींदारों का योगदान

6 सड़क, यातायात, सिचाई एवं स्कूलों की व्यवस्था 135–166

➢ हमीरपुर जिले की सड़क यातायात व्यवस्था

➢ जालौन जिले की सड़क यातायात व्यवस्था

➢ बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत झाँसी जिले की सड़क व्यवस्था

➢ सिचाई साधनों का विकास

➢ बुन्देलखण्ड एजेन्सी में शिक्षा सम्बन्धी प्रयास

➢ नौगाँव में राजकुमार कॉलेज की स्थापना

➢ बुन्देलखण्ड एजेन्सी के रियासतों मे शिक्षा की स्थिति

➢ बुन्देलखण्ड के अन्य रियासतों मे शिक्षा का स्तर

7 तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति 167–188

➢ जातियाँ एवं समाज व्यवस्था

➢ अन्य राजपूत जातियाँ

➢ वैश्य तथा अन्य जातियाँ

➢ अपराधिक जातियाँ

➢ सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन तथा अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा की भावना

8 उपसंहार 189–213

➢ हिम्मतबहादुर के सहयोग से अंग्रेजों द्वारा बुन्देलखण्ड में साम्राज्य विस्तार

➢ बुन्देलखण्ड एजेन्सी मे शान्ति व्यवस्था का प्रबंध

➢ राजाओं के मध्य परस्पर विवादों का निपटारा

➢ पिण्डारियों का दमन

➢ राजस्व दरों में कटौती द्वारा सद्भावना प्राप्ति का प्रदर्शन

➢ बुन्देलखण्ड मे सैनिक छावनियों के पीछे ब्रिटिश सरकार के उद्देश्य

➢ कम्पनी प्रशासन तन्त्र का स्थानीय लोगों से सम्बन्ध

➢ परवर्ती राजस्व प्रबन्ध तथा ब्रिटिश शोषण की नीति

➢ बुन्देलखण्ड का सामाजिक, आर्थिक शोषण की नीति

➢ बुन्देलखण्ड में नील उद्योग का विनाश

➢ कुटीर उद्योग धन्धों का पतन

➢ खरूआ वस्त्र उद्योग का पतन

➢ अन्य उद्योग

➢ बुन्देलखण्ड में कपास की खेती का पतन

➢ सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन के कारण अपराधों मे वृद्धि

➢ अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा की भावना का उदय

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 214-223

A. भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

B. BUNDELKHAND AGENCY RECORDS

C. REPORTS, MEMOIRS AND TREATIES :

D. DISTRICT GAZATTEERS

E. OTHER HISTORICAL WORKS

F. PAMPHLETS

बुन्देलखण्ड की संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं सामरिक महत्व

अध्याय - "प्रथम"

बुन्देलखण्ड की संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं सामरिक महत्व

बुन्देलखण्ड मध्य भारत में स्थित एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिसका सामरिक उपयोग प्रारम्भ काल से लेकर अंग्रेजी शासनकाल तक के शासकों ने किया है। यह भू–खण्ड उत्तर में जमुना, उत्तर–पश्चिम में चम्बल, दक्षिण में जबलपुर, सागर सम्भाग तथा दक्षिण पूर्व में रींवा अथवा मिर्जापुर की पहाड़ियों से आच्छादित है। यमुना, चम्बल, बेतवा, धसान तथा केन यहाँ प्रमुख नदियाँ है। इसमें अंग्रेजी जिले हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर और बाँदा सम्मिलित रहे है। इन क्षेत्रों के अलावा ओरछा का सन्धि राज्य दतिया और समथर की रियासतें तथा अन्य रियासते जिससे ब्रिटिश शासन से समझौते हुए थे, भी सम्मिलित थी। इन रियासतों में अजयगढ़, अलीपुरा, घुरवई की अस्ठभैया जागीर, टोड़ी फतेहपुर, बिजना, बंका पहाड़ी, बरौदा, बावनी, बेरी, बेहट, बिजावर, चरखारी, कालिंजर की चौबे जागीर कामता रजौला, नयागाँव, पालदेव, पहरा, और तरौहा आदि थे। इसके अलावा छतरपुर, गरौरी, गौरिहार, जाजु, जिगनी, खनियाधाता, लुगासी, नौगाँव, रिबाही, पन्ना और सरीला जैसी रियासतें भी बुन्देलखण्ड समाहित थीं।[1]

बुन्देलखण्ड का प्राचीन इतिहास जनश्रुति परम्परा, पुरातत्व, साहित्यिक तथा अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है। महाभारत युग से लेकर गुप्तकाल तक यह भू–भाग चेदिदेश या चेदिराष्ट्र के नाम से भी ज्ञात था।[2] चेदि जनपद उन दिनों यादवों के आधिपत्य में था किन्तु पुरू वंश में राजा वसु ने उसे विजित कर इस क्षेत्र

---

[1] Atkinson, E.T. Statistical Descriptive and Historical Account of The N.W. Provinces of India, Vol. I, (Bundelkhand), Alld, 1874 P.-1

[2] चन्देल और उनका राजत्व काल – केशव चन्द्र मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत – 2011

का विभाजन अपने पांचों पुत्रों में कर दिया। महाभारत काल में ही शिशुपाल यहाँ का राजा बना जिसे इन्द्रप्रस्थ में आयोजित पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में आमन्त्रित किया गया था। शिशुपाल ने अपने से अधिक श्री कृष्ण का सम्मान देखकर आक्रोश प्रकट करते हुये उन्हें अपमानित किया था। अतः श्री कृष्ण के द्वारा उसे मार डाला गया था।[3]

महाभारत काल के पश्चात् यहाँ हरिहर वंश ने शासन किया जिसका उल्लेख पुराणों की सूची में मिलता है।[4] वंश परिवर्तन के साथ क्षेत्र का नाम परिवर्तित नहीं हुआ क्योंकि छठी शताब्दी ईसा पूर्व के महाजनपदों में चेदि महाजनपद का उल्लेख मिलता है, जिसकी राजधानी 'सूक्तिमती'[5] थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अवन्ती नरेश प्रद्योत ने चेदि राज्य को विजित किया था। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में मगध के नन्दवंश के शासक महापद्मनन्द ने संभवतः इस क्षेत्र को मगध राज्य में मिला लिया था।[6]

नन्दों के पश्चात् यह क्षेत्र मौर्यो के अधीन रहा जिसकी पुष्टि सम्राट अशोक के गुजर्रा (दतिया) नामक स्थान पर प्राप्त एक अभिलेख से होती है।[7] ललितपुर के समीप देवगढ़ नामक स्थान से प्राप्त एक शिलालेख से भी इस क्षेत्र में अशोक के शासन का संकेत मिलता है।[8] उल्लेखनीय है कि चाणक्य ने मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को 'द्शार्ण' (बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम) और यहाँ के निवासियों को न छेड़ने

[3] द वैदिक एज – पृष्ठ.298, तथा ललितपुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका 1988, वेवेल– 21
[4] पारजीटर – 950 ई.पू0 तथा ललितपुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका 1958, पृ.21
[5] वर्तमान बॉदा जनपद में केन नदी के तट पर स्थित।
[6] ललितपुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका – 1998, पृ.21
[7] प्राचीन भारत – राधा कुमुद मुखर्जी, दिल्ली 1964, पृ.62 तथा मध्यप्रदेश का इतिहास व संस्कृति, सागर वि0वि0 पुरातत्व पत्रिका, के0डी0 वाजपेयी
[8] ललितपुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका – 1998, पृ.21

की सलाह दी थी। यहाँ के लोगो क़ी स्वतन्त्रता प्रिय मनोवृत्ती के कारण उन्हें कौटिल्य ने **'दुष्टाश्च-पुष्टाश्च'** कहा था।[9] चाणक्य का यह उल्लेख इस क्षेत्र के निवासियों की विद्रोही मनोवृत्ती का संकेत देता है। मौर्यो के पतन के पश्चात् शुंग शासनकाल में उत्तर भारत का अधिकांश क्षेत्र पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों के अधीन रहा।[10] पुष्यमित्र के समय उसका पुत्र अग्निमित्र इस प्रदेश का वायसराय था जिसकी राजधानी विदिशा थी।[11] यह क्षेत्र निःसन्देह अग्निमित्र के ही अधीन शासित था। एरच से प्राप्त पुरावशेष भी इस क्षेत्र में शुंग शासन को प्रमाणित करते है।

प्रथम सदी ईसवी में संभवतः यह क्षेत्र कुषाणों के अधीन रहा है। कनिष्क के समय (78ई. –101ई.) के समय देवगढ़ और मथुरा के बीच व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध के उदाहरण प्राप्त होते है।[12] कुषाणों के अतिरिक्त यह क्षेत्र नागों के प्रभावों में भी रहा नरवर से प्राप्त नाग शासकों के सिक्के तथा समुद्र गुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित गणपति नाग संभवतः इस क्षेत्र का शासक था। तीसरी सदी ईसवी में मध्य क्षेत्र में वाकाट्क वंश राज्य करने लगा और इसी समय प्रबरशेन नामक वाकाट्क नरेश ने बुन्देलखण्ड पर अपना अधिपत्य स्थापित किया था।

चौथी शताब्दी के मध्य में समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड पर भी अधिपत्य स्थापित किया। गुप्तों का यह शासन छठी शताब्दी तक चलता रहा।[13] गुप्तों के शासन प्रबन्ध के अभिलेख में इस क्षेत्र को चेदि भुक्ति

---

[9] जय बुन्देलखण्ड – सीताराम चतुर्वेदी 1980, पृ0 . 15
[10] एन एडवांस हिस्ट्री ऑफ इंडिया आर0सी0 मजुमदार, 1980, लन्दन पृ0 . 114
[11] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलालतिवारी, पृ0 . 17
[12] मेमायरस ऑफ द ए0एस0आई., संख्या 70 माधवस्वरूप (द गुप्ता टेम्पल एट देवगढ़) पृ. – 11
[13] झाँसी गजेटियर, ई.बी0 जोशी 1965, पृ. 37

कहा गया है। 435 ई. में घटोत्कच गुप्त ललितपुर बीना के समीप एरण में वायसराय था और गोविन्द गुप्त ललितपुर जनपद का वायसराय था। इसकी पुष्टि देवगढ़ के गुप्तकालीन मन्दिर दशावतार से होती है। यह अधिक सम्भव है कि गोविन्द गुप्त ने ही दशावतार मंदिर का निर्माण कराया होगा।[14]

गुप्तों के पतन से हर्ष के उदय तक बुन्देलखण्ड की स्थिति :-

533 ई. में गुप्तों के पराभव के बाद मालवा में यशोवर्मन का राज्य स्थापित हुआ। यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि यशोवर्मन के अधीन बुन्देलखण्ड के भी कुछ हिस्से थे।[15] हर्ष के समय खजुराहों की यात्रा पर आये चीनी यात्री व्हेनसांग ने जजहोती प्रदेश का उल्लेख किया है जिसकी राजधानी खजुराहों थी।[16] वहाँ जजहोती नाम का एक ब्राह्मण राजा राज्य कर रहा था। ऐहोल अभिलेख में हर्ष को **उत्तरापथनार्थ** कहा गया है। इस उत्तरापथ की दक्षिणी सीमा नर्मदा तक थी। अतः बुन्देलखण्ड हर्ष के अधीन रहा। हर्ष की मृत्यु के बाद यशोवर्मन ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

बुन्देलखण्ड भमौनी, बालाबेहट, देवगढ़, बाँसी, और दोदहट्टी नामक स्थानों पर गौड़ शासकों के समय के भग्नावशेष प्राप्त होते है, जो इस क्षेत्र पर गौड़ो के शासन की पुष्टि करते हैं।[17] गौड़ों के बाद गूर्जर प्रतिहारों ने इस क्षेत्र पर राज्य किया। देवगढ़ के बारहवें जैन मन्दिर के अर्ध मण्डप में विक्रमी सम्वत् 919 का एक

---

[14] झाँसी गजेटियर, ई.बी० जोशी 1965, पृ. 37

[15] मन्दसौर अभिलेख (सेलेक्टेड इन्सपेक्टेसेस तथा ललितपुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका 1998, सम्पादक सन्तोष वर्मा

[16] देवगढ़ की जैन कला, मार्गचन्द्र जैन पृ.9

[17] झाँसी गजेटियर, ई.बी० जोशी 1965, पृ..25

अभिलेख प्राप्त हुआ है।[18] इससे यह प्रमाणित होता है कि देवगढ़ और आसपास के क्षेत्रों पर भोज देव प्रतिहार के महासामन्त विष्णुदेव ने शासन किया।[19] प्रतिहार शासक नागभट्ट के समय दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय ने झाँसी ललितपुर के समीप युद्ध लड़ते हुये नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया था। राष्ट्रकूट नरेशों को आक्रमण से इस क्षेत्र की सुरक्षा के लिए नागभट्ट द्वितीय ने देवगढ़ का दुर्ग निर्मित किया तथा उसे सुदृढ़ किया। देवगढ़ को इस प्रान्त का मुख्यालय भी बनाया गया।[20] महीपाल द्वितीय के बाद सम्भवतः उसके पुत्र विनायक पाल (48 ई.) ने इस क्षेत्र पर शासन किया जिसका उल्लेख खजुराहो अभिलेख में है। उसके बारे में कहा गया है – **''विनायक पाल देव पालयति बसुधाम।''**[21] ऐसा प्रतीत होता कि विनायक पाल के पश्चात् इस क्षेत्र में चन्देलों की शक्ति का उदय हो चुका था।

चन्देल काल :–

गौड़ो की सत्ता समाप्त होने के पश्चात् चन्देल वंश का उत्कर्ष हुआ। इस वंश ने बुन्देलखण्ड पर अपना वैभवशाली शासन प्रारम्भ किया तथा भारत के इस मध्य भाग पर सफलतापूर्वक शासन किया। प्रारम्भ में चन्देल कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों के ही अधीन थे किन्तु प्रतिहार सत्ता के पराभव के पश्चात् चन्देलों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया।

---

[18] देवगढ़ में मन्दिर संख्या 12 के अर्धमण्डप में दक्षिण पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण
[19] ललितपुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका 1998, पृ. 22, सम्पादक सन्तोष वर्मा
[20] झाँसी गजेटियर 1909, ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, पृ. 317–26
[21] प्राचीन भारत : डा0 राजनाथ पाण्डेय, पृ. 305

पृथ्वीराज चौहान के मदनपुर शिलालेख से ज्ञात होता है कि 12वीं शताब्दी तक यह क्षेत्र जेजाकभुक्ति के नाम से ज्ञात था, जहाँ चन्देल नरेश परमार्दिदेव (परमाल) को परास्त कर पृथ्वीराज ने अपना शासन स्थापित किया था।[22] चन्देल, चौहान युद्ध के पश्चात् पुनः चन्देलों ने उस क्षेत्र में अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा वापस कर ली ।

सल्तनतकालीन बुन्देलखण्ड (1000 ई. 1500 ई. तक) :–

बुन्देलखण्ड में मुस्लिम शासको का प्रथम प्रवेश 1019 में चन्देल शासक विद्याधर के समय में हुआ।[23] उस समय महमूद गजनवी ने इस राज्य पर आक्रमण किया था। महमूद ने 1022 ई. में ग्वालियर होते हुए कालिंजर पर आक्रमण किया परन्तु दोनों में संधि द्वारा मित्रता हो गयी।[24] 1202 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर चन्देल सत्ता को लगभग समाप्त कर दिय था। 1206 ई. से 1290 ई. तक चन्देल शासक त्रिलोकवर्मन (1204–1222 ई.) वीरवर्मन (1242–1286 ई.) एवं भोजवर्मन (1286–1290 ई.) अपने शासन का अस्तित्व रखने के लिए मुस्लिम शासको से संघर्ष करते रहे।[25]

1291–92 ई. में इस जनपद का अधिकांश भाग मालवा सूबे (प्रान्त) के अन्तर्गत था जिसका शासक हरनन्द था।[26] इस समय खिलजी वंश की नींव पड़ चुकी थी। अलाउद्दीन खिलजी ने इस भू–भाग को जीतने के लिए अपने गवर्नर आईन–उल्ल–मुल्तानी को एक विशाल सेना के साथ मालवा भेजा था। दिसम्बर

---

[22] झाँसी गजेटियर, ई. बी० जोशी 1965, पृ. 33.

[23] प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के०सी० श्रीवास्तव,, पृ.604

[24] प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के०सी० श्रीवास्तव,, पृ.604

[25] आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग – 10 ए० कनिघंम, पृ. 103, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज, एन०एस० बोस, पृ.107–08, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ.78 एवं 100–101

[26] चन्देल और उनका राजत्वकाल, केशवचन्द्र मिश्रा, पृ.14

1305 ई. को एक भंयकर युद्ध के बाद यह भू–भाग खिलजी शासन के अधीन हो गया एवं मलिक तैमूर प्रान्तीय गर्वनर नियुक्त हुआ।[27] मुहम्मद–बिन तुगलक (1325–51 ई.) के काल में समस्त बुन्देलखण्ड भू–भाग, दिल्ली सुल्तान के अधीन था। ग्वालियर, कालपी और चन्देरी इसी प्रान्त में थे।[28] इब्नबतूता इस प्रान्त से 1335 ई. में चन्देरी होकर गुजरा था उन दिनों यहाँ का मुख्यालय चन्देरी था। उसने इस प्रान्त क्षेत्र के प्रान्त को शान्तिपूर्ण बतलाया था।[29]

सन् 1435 ई. तक यह क्षेत्र कभी राजपूतो एवं कभी दिल्ली सुल्तानों के अधीन रहा।[30] इस बीच इस भू–भाग पर बुन्देला राजवंश का उदय हो चुका था। सन् 1468 ई. में बुन्देला राजा अर्जुनदेव की मृत्यु के बाद उसका एक मात्र पुत्र मलखान सिंह गढ़कुण्डार की गद्दी पर बैठा।[31] उस समय बुन्देला राजाओं के शासन की सीमा जनपद ललितपुर तक थी।[32] राजा मलखान सिंह बुन्देला ने बहलोल लोदी (1451–1489 ई.) की अधीनता स्वीकार नही की।[33] 1501 ई. में राजा मलखान सिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र गद्दी पर बैठा। 1512 ई. में सिकन्दर लोदी (1489–1517 ई.) ने ललितपुर पर अपना अधिकार कर लिया।

---

27 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के0सी0 श्रीवास्तव, पृ. 604

28 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के0 सी0 श्रीवास्तव, पृ. 107–108

29 हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज – एन0एस0 बोस, पृ.107–108, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास – अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, पृ. 100–101

30 उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग –1, एस0 ए0 रिजवी, अलीगढ़ से प्रकाशित, पृ. 8–10

31 बुन्देलों का इतिहास भगवान दास श्रीवास्तव, पृ. 14

32 ईस्टर्न स्टेट (बुन्देलखण्ड) गजेटियर – सी0डी0 लुआर्ड, पृ 117

33 हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, इलियट डाउसन कलकत्ता, 1953, पृ 123

सन् 1517 ई. में एक बार फिर चन्देरी–ललितपुर पर राजपूत अपना अधिकार करना चाहते थे पर इक्ता (प्रान्तीय सुबेदार) हुसैन करमाली ने चन्देरी पर अपना अधिपत्य कायम रखा।[34]

सन् 1525 ई. तक लोदी शासको की आपसी फूट और प्रान्तीय गर्वनर के विद्रोह एवं शासकों की विलासिता के कारण दिल्ली सुल्तानों की लोकप्रियता घटने लगी, तभी देश की पश्चिमी सीमा पर मुगल आक्रमण करने लगे। 1526 ई. में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी एवं बाबर की सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें बाबर विजयी हुआ। 1527 ई. में खानवा के उत्तरी भारत का शासक बन गया[35] और 1527 ई. में ही बाबर ने चन्देरी के मेदनीराय के विरूद्ध स्वयं अभियान किया। 29 जनवरी 1528 ई. को चन्देरी को विजय कर लिया[36] तथा यह जनपद मुगल शासन के अधीन हो गया।

मुगलकाल (1526–1707 ई.) में बुन्देलखण्ड की स्थिति –

बाबर ने उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया था (1526–1530 ई. तक)। 1530 में अपने राज्यारोहण के पश्चात् हुमाँयू विरासत में प्राप्त भू–भाग के विभिन्ने क्षेत्रों पर अधिकार न रख सका। मुगलों के शत्रु अफगान शासक शेरशाह सूरी ने चन्देरी पर नियन्त्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी।[37] कुछ वर्ष पूर्व बुन्देला शासक रूद्रप्रताप अपनी राजधानी गढ़कुण्डार से ओरछा ले आये। भौगोलिक और

---

[34] भारत का इतिहास (1000ई. से 1707ई.) ए0एल0 श्रीवास्तव, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1996 आगरा पृष्ठ – 320

[35] भारत का इतिहास (1000ई. से 1707ई.) ए0एल0 श्रीवास्तव, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1996 आगरा पृष्ठ – 320

[36] उत्तर तैमूर कालीन भारत, जिल्द – 1 एस0ए0 रिजवी, पृ 235–237

[37] हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन, इलियट डाउसन (कलकत्ता), जिल्द–1, पृ. 50 एवं 45–46

सामरिक दृष्टि से ओरछा अधिक सुरक्षित था इसलिए रूद्रप्रताप ने ओरछा को अपनी राजधानी के रूप में चयन किया। रूद्रप्रताप के उत्तराधिकारी भारती चन्द्र ने ओरछा राज्य का विस्तार किया।[38] अकबर के समय बुन्देलखण्ड का अधिकांश क्षेत्र मालवा के सरकार चन्देरी के अन्तर्गत आता था। मधुकर शाह के समय (1554–92) पहली बार बुन्देलों का मुगलों से टकराव हुआ।[39] 19 अगस्त 1602 ई. में अकबर को पुत्र सलीम (जहाँगीर) के शह पर वीरसिंह बुन्देला ने अकबर के प्रधानमंत्री अबुल–फजल का वध दतिया के पास आंतरी में कर दिया।[40] 1605 ई. में अकबर का पुत्र सलीम, जहाँगीर के नाम से मुगल शासक बना। जहाँगीर ने बादशाह बनने के बाद वीरसिंह बुन्देला को ओरछा, जतारा एवं समस्त बुन्देलखण्ड का अधिकार दे दिया।[41] वीरसिंह के कहने पर चन्देरी और वानपुर की जागीर रामशाह को दे दी गयी।[42] रामशाह की मृत्यु के बाद शाहजहाँ ने यह जागीर उसके पुत्र को दे दी थी।[43] वीरसिंह देव की मृत्यु के बाद जुझार सिंह ओरछा का उत्तराधिकारी हुआ उसने शाहजहाँ के काल में 1629 ई. में विद्रोह किया परन्तु वह दबा दिया गया। इस विद्रोह में जुझार सिंह की सहायता चन्देरी, बानपुर के शासक भरत शाह ने भी नहीं की और वह शाही सेनाओं के साथ रहा।[44] 1635 ई. में जुझार सिंह ने फिर विद्रोह किया परन्तु वह दबा दिया गया। 1635 ई. में ललितपुर जनपद के दक्षिण में

---

[38] मुगलकालीन भारत, ए0एल0 श्रीवास्तव, पृ 95–96

[39] आइने अकबरी, अबुल फजल, अनुवाद एच0 एल0 मेरठ और सरकार, भाग –2, कलकत्ता, 1949, पृ. 198

[40] मध्य कालीन भारत खण्ड – 11 (1540–1761) हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (1998), पृ.638

[41] तुजके जहाँगीरी, भाग – 1, अनुवाद ए0 रोजर्स एवं वेवरिज (लण्दन 1909) पृ. 24–25 मुगल कालीन भारत, ए0एल0 श्रीवास्तव, पृ. 183

[42] तुजके जहाँगीरी, भाग – 1, अनुवाद ए0 रोजर्स एवं वेवरिज (लण्दन 1909), पृ. 87

[43] तुजके जहाँगीरी, भाग – 1, अनुवाद ए0 रोजर्स एवं वेवरिज (लण्दन 1909), पृ. 87

[44] ओरछा का इतिहास – लक्ष्मण सिंह गौड़, पृ. 54

धमोनी के निकट गौड़ो ने उसका वध कर दिया।[45] जुझार सिंह की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ ने ओरछा को अस्थाई रूप से चन्देरी और बानपुर के शासक के अधिकार में दे दिया। 2 वर्ष तक देवीसिंह के अधिकार में ओरछा रहा किन्तु 1637 ई. में उसे ओरछा छोड़ना पड़ा।[46] 1641 ई. में शाहजहाँ ने ललितपुर जनपद के खनियाधाता, तालबेहट, ओरछा एवं झाँसी जनपद के एक बड़े भाग को बुन्देला राजा पहाड़ सिंह को दे दिया। 1654 ई. में पहाड़ सिंह की मृत्यु के पश्चात् सुजानसिंह ओरछा का राजा हुआ, वह 1667 ई. तक ओरछा का हाकिम रहा। उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्र दुर्ग सिंह ओरछा का शासक बन गया।[47]

ललितपुर जनपद के बार, जाखलौन एवं लहचूरा के क्षेत्र अभी भी राजा रामशाह (वीरसिंह देव का भाई) के वंशजो के अधिकार में था एवं झाँसी और उससे लगे 58 गाँव शाहजहाँ ने मुकुन्द सिंह को दे रखे थे।[48]

बुन्देला शासन काल :–

शाहजहाँ की मृत्यु के बाद औरंगजेब मुगल सम्राट बना। उधर बुन्देलखण्ड के छत्रसाल ने सम्राट के प्रति विद्रोह कर दिया, परन्तु इस विद्रोह में चन्देरी, बार, दतिया, ओरछा के शासकों ने उसका साथ नही दिया।[49] छत्रसाल ने शीघ्र ही एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली और ललितपुर जनपद के सिरोज और घमोनी क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया।[50] वह 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के

---

[45] हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ– जी0पी0 सक्सेना, दिल्ली से प्रकाशित, पृ. 88–89
[46] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 40
[47] ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर, सी0ई. लुआर्ड, पृ. 27
[48] ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर सी0ई. लुआर्ड, पृ. 27
[49] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 77
[50] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 77

पश्चात् बुन्देलखण्ड का स्वतन्त्र शासक बन गया।[51] 1707 ई. के बाद औरंगजेब के पुत्र उसके विशाल साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सके इसके कारण छोटे–छोटे सुबेदारों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया।

1722 ई. में मुगल गर्वनर नवाब बंगश बुन्देलखण्ड विजय पर निकला। ओरछा, चन्देरी, दतिया आदि बुन्देला राजाओं ने नवाब का साथ दिया।[52] नबाव बंगश सेहड़ा, मेड़, मोटछा, बेलानी, अगवासी और सिमौनी दुर्गो पर अधिकार करते हुये ललितपुर के दक्षिण में धमौनी आ पहुँचा जहाँ पर बुन्देला ने उसका सामना किया, पर बंगश के कुशल सेनापतित्व के आगे उन्हे पीछे हटना पड़ा।[53] बंगश की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर छत्रसाल ने मराठा सरदार बाजीराव प्रथम से सहायता मांगी जो उस समय ललितपुर जनपद के दक्षिण में गरहा में थे।[54] छत्रसाल ने बाजीराव को निम्नलिखित पद लिखकर भेजा।

जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति भई है आय ।

बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी राय।।[55]

फरवरी 1729 ई. को यह पत्र बाजीराव को प्राप्त हुआ था। पेशवा बाजीराव छत्रसाल की रक्षा के लिए तुरन्त आ गये। 12 मार्च 1729 ई. को उनकी सेना महोबा पहुँची तथा बंगश को कई स्थानों पर पराजित किया।[56]

---

51 बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, जिल्द – 1, राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली, पृष्ठ 112
52 बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 90
53 बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 90
54 महाराज छत्रसाल बुन्देला – भगवानदास गुप्ता (आगरा से प्रकाशित 1958), पृ. 90
55 बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन जिल्द – 1 राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली, पृष्ठ 115
56 मराठों का नवीन इतिहास जिल्द – 2 गोविन्द सखराम सरदेसाई, संस्करण, 1980, पृ. 96

12 मार्च 1731 ई. में छत्रसाल की मृत्यु हो गयी परन्तु इससे पूर्व पेशवा बाजीराव के बंगश के विरूद्ध सहायता देने पर छत्रसाल ने अपने राज्य का 1/3 भाग एवं धन बाजीराव को एक दरबार का आयोजन करके दिया था। इससे बुन्देलखण्ड मराठो का एक उपनिवेश बन गया जिसमें झाँसी, सागर, हृदयनगर, कालपी, जालौन एवं गुरसराँय आदि थे।[57]

सन् 1732 ई. में मराठों ने बुन्देलखण्ड में अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। चन्देरी के शासक दुर्ग सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र दुर्जन सिंह चन्देरी का शासक हुआ। 1735 ई. में मराठों ने चन्देरी पर आक्रमण किया तथा उसके प्रसिद्ध दुर्ग भरतगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया।[58] 1745 ई. में दुर्जन सिंह की मृत्यु हो गयी। दुर्जन सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मानसिंह गद्दी पर बैठा। मानसिंह ने मराठों के आक्रमणों को रोकने के लिए ललितपुर जनपद के महरौनी स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण कराया। परन्तु वह मराठों के आक्रमणों को रोकने के लिए ललितपुर जनपद के महरौनी स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण कराया। परन्तु वह मराठों के आक्रमण को रोक न सका और उसे अपने राज्य का एक बड़ा भाग (ललितपुर जनपद का समस्त दक्षिण का भाग) देना पड़ा।[59] मानसिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र अनिरूद्ध सिंह 1760 ई. में गद्दी पर बैठा। उसने 15 वर्ष तक राज्य किया। 1775 ई. में अनिरूद्ध सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र रामचन्द्र (3 वर्ष) था, इस कारण राज्य का प्रबन्ध उसके चाचा हटेसिंह के अधिकार

---

[57] बाजीराव फर्स्ट द ग्रेट पेशवा – सी0के0 श्रीनिवासन, पृ. 72–73, तथा मध्यकालीन भारत – एल0पी0 शर्मा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा से प्रकाशित, पृ. 210

[58] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 117

[59] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 117

में आ गया। हटेसिंह ने मसौरा खुर्द में एक दुर्ग का निर्माण कराया था।[60] शीघ्र ही चन्देरी की राजमाता ने हटेसिंह के स्थान पर अचलगढ़ के जागीरदार चौधरी कीरत सिंह को राज्य का मंत्री नियुक्त किया और हटेसिंह को मसौरा, तालबेहट और 15 गांव की जागीर दी। 1787 ई. में मराठा सेना ने मोरोपन्त के नेतृत्व में बुन्देलों की इस जागीर पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का सामना सभी बुन्देला सरदार, राव उमराव सिंह–राजवारा, दीवान छतरसिंह जाखलौन, तथा ललितपुर और पनवाड़ी के जागीरदारों ने मिलकर किया।[61]

इसी समय चन्देरी के शासक रामचन्द्र तीर्थ यात्रा को चले गये ओर राज्य का कार्यभार अपने संबंधी देवजू पनवई और उसकी पत्नी को सौंप गये। रामचन्द्र की अनुपस्थिति में मराठों ने सोरई, दबरानी और बालाबेहट अपने अधिकार में कर लिये। 1801 ई. में उसका पुत्र प्रजापाल राजा बना, परन्तु वह एक युद्ध में रजवारा स्थान पर मारा गया। प्रजापाल के बाद उसका छोटा भाई मोर प्रहलाद राजा बना । सन् 1811 ई. में सिंधिया ने ब्रिटिश आफीसर कर्नल वैपटिस्ट फियोलस के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने चन्देरी व समस्त बुन्देला क्षेत्र को अपनी सीमा में मिला लिया[62] और मोर प्रहलाद परिवार सहित झाँसी चले गये।[63] सन् 1811–1842 ई. तक मोर प्रहलाद बराबर मराठो और अंग्रेजों से बुन्देला सरदारों के साथ मिलकर संघर्ष करते रहे, इस समय सिंधिया के अधिकार में चन्देरी थी। बाद में वह बानपुर आकर बस गये और राजा बने।[64]

---

[60] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 117

[61] बुन्देलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव, पृ. 117

[62] झाँसी गजेटियर – ईशा बसन्त जोशी,1965 पृ 52

[63] फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश भाग – 3 एस0ए0 रिजवी, पृ.4

[64] झाँसी गजेटियर – ईशा बसन्त जोशी, 1965 पृ 53

1842 ई. में राजा मर्दन सिंह बानपुर के राजा बने। दो साल बाद चन्देरी का राज्य सिंधिया के अधिकार से ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया[65] परन्तु ललितपुर जनपद का दक्षिण–पूर्वी भाग और धमौनी पर 1707 ई. में छत्रसाल ने अधिकार किया था 1731 ई. में यह क्षेत्र छत्रसाल के बड़े पुत्र हृदय शाह को मिला था। उसके बाद यह क्षेत्र उसके पुत्र सभासिंह को प्राप्त हुआ। सभासिंह के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह ने अपने पिता से अपने लिए एक स्वतन्त्र भाग मांगा, परन्तु सभासिंह ने देने से इनकार कर दिया। पृथ्वीसिंह ने मराठों से मिलकर शाहगढ़, गढ़कोट, मड़ोरा (मड़वारा) का स्वतन्त्र राज्य सभासिंह से प्राप्त कर लिया। पृथ्वीसिंह मराठों की सहायता से राजा बना और हमेशा उनका मित्र बना रहा। इस वंश में अर्जुनसिंह (1810–1842 ई.) हुये। अर्जुन सिंह की मृत्यु के पश्चात् बख्तबली सिंह शाहगढ़ के अन्तिम जागीरदार बने थे।[66]

छत्रसाल के बाद मराठा – बुन्देला सम्बन्ध :–

छत्रसाल द्वारा अपने साम्राज्य के बँटवारे के फलस्वरूप मराठों को बुन्देलखण्ड में जो क्षेत्रफल मिला था उसे केन्द्र बनाकर पेशवा ने अपनी शक्ति का विस्तार करना प्रारंभ किया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में मराठों का अधिपत्य स्थापित हो गया। पेशवा बाजीराव ने इस क्षेत्र की बागडोर अपने सुबेदार गोविन्द पन्त खेर को दे दी जो सागर में रहते हुये इन क्षेत्रों का प्रबन्ध करने लगा। बाँदा और कालपी के क्षेत्र पेशवा की अवैध सन्तान शमशेर बहादुर के हिस्से में पड़े। इस

---

[65] झाँसी गजेटियर – ईशा बसन्त जोशी, 1965, पृ 53

[66] झाँसी गजेटियर – ईशा बसन्त जोशी, 1965, पृ 53

प्रकार झाँसी का प्रबन्ध रघुनाथ हरी निवालकर को सौंप दिया गया।[67] दुर्भाग्यवश इस क्षेत्र में मराठा और बुन्देलाओं के सम्बन्ध क्रमशः खराब होते गये। बुन्देला, मराठाओं को चौथ देने में कतराते थे और वह मराठों की प्रभुता के अधीन रहना नही चाहते थे, लेकिन इसके बावजूद भी गोबिन्द पन्त खेर ने बुन्देलखण्ड को केन्द्र बनाकर मराठा सत्ता का चारो ओर विस्तार किया।

पन्ना के बुन्देला राजाओं की स्थिति भी निरन्तर कमजोर होती गयी। 14 दिसम्बर 1731 ई. में छत्रसाल की मृत्यु से लेकर 1857 के विद्रोह तक पन्ना राज्य की आन्तरिक स्थिति विरोध तथा षड्यन्त्रों से भरी पड़ी थी। इस स्थिति का लाभ लेकर छतरपुर राज्य का गठन सोनेशाह पवार ने किया। यह पन्ना नरेश की सेना में सेना नायक था जो 1826 ई. में स्वतंत्र हो गया। 1854 ई. में उसकी मृत्यु हुई। इसके पश्चात् उसका पुत्र जगतराज गद्दी पर बैठा। ठीक यही स्थिति छत्रसाल के पुत्र जगतराज के रियासत की भी रही। इस प्रकार 1777 ई. में जब अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया उस समय तक जैतपुर (1731), चरखारी (1764) बाँदा (1764) और बिजावर (1765) आदि राज्यों का जन्म हो चुका था।[68] इसी बीच 1761 ई. में पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ जिसमें मराठों की घोर पराजय हुई। इस पराजय से मराठा सत्ता की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। बुन्देलखण्ड में भी इसका प्रभाव पड़ा और जो बुन्देला राजा अभी तक मराठों के अधीन समझे जाते थे अब उन्होने मराठों के विरूद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिये। बुन्देलखण्ड की अस्तव्यस्तता व अव्यवस्था का लाभ लेकर अवध का नवाब वजीर शुजाउद्दौला ने इस क्षेत्र पर

---

[67] एस0एम0 सेन, अठारह सौ सत्तावन, पृ. 267 तथा सरदेसाई जी0एस0, ए न्यु हिस्ट्री ऑफ मराठाज भाग –1, पृ. 230–231

[68] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया), पृ. 367

पुनः मुगल सत्ता की स्थापना करने का निश्चय किया[69] लेकिन मुगलों के विरूद्ध एक बार पुनः बुन्देलों और मराठों ने स्वयं को संगठित किया और नोने अर्जुन सिंह के नेतृत्व में इन संयुक्त सेनाओं ने 1763 ई. के तिंदवारी के युद्ध में शुजाउद्दौला के सेना नायक हिम्मत बहादुर को पराजित किया।[70]

हिम्मत बहादुर गुँसाई का बुन्देलखण्ड अभियान :-

हिम्मत बहादुर गुँसाई बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता स्थापित करने का स्थान देख रहा था। गुँसाईयों के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं होती, लेकिन यह ज्ञात होता है कि दतिया में अकालों के समय एक महिला ने अपने पुत्रों को किसी साधु को बेच दिया था और सम्भवतः यही इन्दर गिरि तथा अनूप गिरि गुँसाई के नाम से विख्यात हुये।[71] इन्दर गिरी ने मोंठ में 1745 ई0 में अपनी प्रभुता स्थापित कर ली। यहाँ पर इसने एक किला बनवाया तथा उसके चारों ओर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। झाँसी के मराठा गवर्नर नारूनशंकर ने 1750 में इन्दर गिरी की हत्या कर दी। उसके पश्चात् उसका शिष्य अनूप गिरि अवध की सेना का सेनानायक बन गया।[72]

तिंदवारी के युद्ध के एक वर्ष पश्चात् 1764 में अवध की सेना को ब्रिटिश सेनानायक हेक्टर मुनरो ने बक्सर के युद्ध में परास्त किया। इस युद्ध में अनूपगिरी ने अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय देते हुये नवाब शुजाउद्दौला के प्राणों की रक्षा

---

[69] ए0एल0 श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला भाग–1 आगरा 1961, पृ. 122–123

[70] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, जी0एल0 तिवारी, पृ. 66–116 तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, (सेन्ट्रल इण्डिया), पृ. 367

[71] फाल ऑफ द मुगल इम्पायर – जे0एन0 सरकार, भाग – 3, पृ. 221

[72] झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल 1987, एस0पी0 पाठक, रामानन्द विद्याभवन नई दिल्ली, पृ. 13

की थी उसकी बहादुरी से प्रभावित होकर नवाब ने उसे हिम्मत बहादुर की पदवी दे दी। उसके पश्चात् बिंदकी तथा आस–पास के परगने जागीर के रूप में दे दिये।

इस बीच बुन्देलखण्ड की आन्तरिक स्थिति विद्रोहों तथा अराजकता से ग्रस्त हुई। बुन्देला राजा आपस में ही संघर्ष करने लगे। मराठों की स्थिति भी अच्छी न थी। पानीपत की पराजय के बाद मराठे भी काफी कमजोर हो गये थे। इस स्थिति का लाभ लेने के लिए हिम्मत बहादुर ने पुनः बुन्देलखण्ड का अभियान किया। यद्यपि 1763 में तिंदवारी के युद्ध में उसकी पराजय हुई थी, लेकिन इसके बावजूद भी वह हतोत्साहित नही हुआ तथा बुन्देलखण्ड में वह अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयास करता रहा। बक्सर के युद्ध में उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर शुजाउद्दौला ने उसे विशाल सेना देकर बुन्देलखण्ड में अभियान करने के लिए भेजा।[73] सबसे पहले दतिया के राजा रामचन्द्र को उसने पराजित कर उससे चौथ वसूल किया। इसके पश्चात् मोंठ तथा गुरसराँय पर आक्रमण किया। गुरसराँय के राजा बालाजी गोविन्द ने इस विषम परिस्थिति में पूना दरबार में मदद प्राप्त करने के लिए एक पत्र लिखा। उन दिनों नाना फड़नवीस ने अपने सेनानायक दिनकर राव अन्ना के नेतृत्व में एक सेना बालाजी की मदद के लिए भेजी। इसके साथ ही ग्वालियर व इन्दौर के मराठा रघुनाथ हरि निवालकर ने भी उसकी सहायता की। इस प्रकार सम्मिलित मराठा सेनाओं ने हिम्मत बहादुर के विरूद्ध अभियान किया जिसमें परास्त होकर हिम्मत बहादुर को मोंठ और गुरसराँय खाली करना पड़ा। तत्पश्चात् वह अवध चला गया।[74]

---

[73] शुजाउद्दौला भाग – 1 व 2, ए0एल0 श्रीवास्तव, आगरा 1961, पृ. 122–123

[74] फाल ऑफ द मुगल इम्पायर जिल्द – 3, जे0एन0 सरकार, पृ. 221

बुन्देलखण्ड में अपनी लगातार असफलताओं के बावजूद भी वह इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए प्रयत्नरत रहा। अन्त में 1775 ई. में वह मराठों की सेना में आ गया। मराठों ने उसे उत्तरी अभियानों के लिए नियुक्त किया। इसी बीच उसका सम्पर्क अलीबहादुर के साथ हुआ। वह दोनों मिलकर बुन्देलखण्ड में अपने–अपने लिए क्षेत्रफल प्राप्त करना चाहते थे। अन्त में अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर ने मिलकर इस क्षेत्र की विजय योजनायें बनाना प्रारम्भ कर दी।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी सत्ता का प्रारम्भ :–

जिस समय अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर गुँसाई बुन्देलखण्ड विजय की योजनाएं बना रहे थे उस समय 1778 में अंग्रेजो ने पहली बार इस क्षेत्र में प्रवेश किया। इस क्षेत्र की केन्द्रीय स्थिति तथा सामरिक महत्व को देखते हुये अंग्रेज यहाँ अपना अधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। उन्हें यह ज्ञात था कि यहाँ सेना रखकर ही आस–पास की रियासतों पर अंकुश बनाए रखा जा सकता है। निश्चित ही इस क्षेत्र में अंग्रेजों के अधिपत्य के पीछे यही उद्देश्य था। अतः जब बुन्देले और मराठे आपस में एक दूसरे का विरोध कर रहे थे, उस समय वारेन हेस्टिंग्स ने कालपी होकर एक सेना पूना भेजने का निश्चय किया। कालपी बड़े ही सामरिक महत्व का था। यह बुन्देलखण्ड में प्रवेश के लिए मुख्य द्वार था। अतः 1778 में कालपी पर अपना अधिकार कर लिया। यद्यपि मराठों ने अंग्रेजों को आगे बढ़ने से कुछ समय तक रोके रखा। किन्तु अन्त में कालिंजर, भोपाल और नागपुर के राजाओं से समझौता करके ब्रिटिश सेना को बुन्देलखण्ड होकर महाराष्ट्र भेज दिया गया। अंग्रेजी सेना का इस क्षेत्र से जाना बुन्देलखण्ड में मराठा आधिपत्य की प्रतिष्ठा को और धक्का लगाने में सफल रहा। यद्यपि जब अंग्रेजी सेनाये नर्मदा नदी पार कर

चुकी थी उस समय झाँसी की मराठा सेनाओं ने कालपी पर पुनः अधिकार कर लिया था लेकिन बाद में चलकर यह क्षेत्र बुन्देलों की पकड़ में आ गया।[75]

अलीबहादुर तथा हिम्मत बहादुर गुँसाई का बुन्देलखण्ड अभियान :-

18 वीं शताब्दी के अन्त तक बुन्देलखण्ड में मराठा प्रभुता के पतन का क्रम जब जारी था उस समय 1789 में अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर को इस क्षेत्र पर मराठा प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए पुनः नियुक्त किया गया। दोनों नेताओं ने यह निश्चय किया कि इस विजय अभियान के बाद अली बहादुर को बाँदा का नवाब बना दिया जायेगा तथा हिम्मत बहादुर को भी जीते हुये क्षेत्र पर हिस्सा दिया जायेगा।[76] इस समझौते के अन्तर्गत लगभग चालीस हजार सेना के साथ दोनों सेनानायकों ने बाँदा, चरखारी, बिजावर आदि को जीतते हुये पन्ना, छतरपुर को भी अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। इस प्रकार इस क्षेत्र में मराठा सत्ता की पुनः स्थापना हुई। 28 अगस्त 1802 को जब अली बहादुर ने कालिंजर पर डेरा डाल हुआ था उस समय उसकी मृत्यु हो गयी।[77] फलतः उसके पुत्र शमशेर बहादुर ने आकर मोर्चा सम्भाला और स्वयं को बाँदा का राजा घोषित किया।

सिन्धिया 1803 ई. में पेशवा और अंग्रेजों के बीच हुई बेसिन की संधि से नाराज था और वह दोआब तथा आस-पास के ब्रिटिश क्षेत्रों पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में मराठों की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के लिए नाना फड़नवीस ने शमशेर बहादुर को नियुक्त

---

[75] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, जे0एल0 तिवारी, पृ. 176 तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया), प्र.367

[76] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, जे0एल0 तिवारी, पृ. 176 तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया), प्र.367

[77] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, जे0एल0 तिवारी, पृ. 176 तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया), प्र.367

किया।[78] इस प्रकार मराठों का संयुक्त अभियान बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध खोई हुई मराठा सत्ता को स्थापित करने का एक प्रयास था, लेकिन इसी बीच हिम्मत बहादुर मराठों का साथ छोड़कर अंग्रेजों की ओर जा मिला। अंग्रेजों के साथ हुई एक सन्धि के अनुसार उसने इस क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के लिए भरसक प्रयास किया।[79] इसके बदले अंग्रेजी शासकों ने हिम्मत बहादुर गुँसाई को बुन्देलखण्ड में यमुना के दाहिने किनारे पर 20 लाख रूपया वार्षिक आय की एक जागीर देने का वचन दिया।

इस प्रकार गुँसाईं नेता की स्वार्थपरता और गद्दारी से इस क्षेत्र की स्वाधीनता को खतरा पैदा हो गया। हिम्मत बहादुर को बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति का अच्छा ज्ञान था जो अंग्रेजों को अपनी सत्ता स्थापित करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। ऐसी परिस्थिति में सिंधिया और पेशवा की संयुक्त सेना 25 अक्टूबर 1802 को पूना में अंग्रेजी सेना द्वारा पराजित कर दी गई।[80] अब परिस्थिति अंग्रेजो के लिए नितान्त अनुकूल थी और वे अपने मन में भारत के इस हृदय प्रदेश बुन्देलखण्ड में अपनी प्रभुसत्ता को स्थापित करने का जो सपना संजोये हुये थे वह पूरा होता दिखाई पड़ रहा था। मराठों की पराजय के पश्चात् अंग्रेज उनके ऊपर संधि की मनचाही धारायें थोप सकते थे फलतः 31 दिसम्बर 1802[81] को पेशवा और अंग्रेजी के बीच बेसिन की संधि हुई जिसके द्वारा पेशवा ने बुन्देलखण्ड स्थित 26 लाख रूपये राजस्व के मूल्य का अपना क्षेत्र अंग्रेजो को स्थानान्तरित कर दिया। 16 दिसम्बर 1803 को एक अन्य संधि द्वारा पेशवा ने बुन्देलखण्ड में अंग्रेजो को अपने

---

[78] ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद, सी0यू0 एचीसन, पृ. 87
[79] ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद, सी0यू0 एचीसन पृ. 187
[80] एटकिन्शन, ई.टी0 (वही), पृ – 35
[81] एटकिन्शन, ई.टी0 (वही), पृ – 35

सैनिक रखने तथा उनके खर्च के लिए पूर्व में स्वीकृत 26 लाख की धनराशि को 36 लाख रु0 तक बढ़ा दिया[82] और 16 दिसम्बर 1803 को इसकी पुष्टि कर दी गई इस प्रकार वेसिन की संधि से अंग्रेजो को बुन्देलखण्ड में प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हुआ।

भौगोलिक एवं सामरिक महत्व :-

भौगोलिक रूप से भारत के हृदय में स्थित बुन्देलखण्ड अपने प्राकृतिक छटा तथा शौर्य के लिए प्रसिद्ध रहा है। अपने प्राचीन काल से यह क्षेत्र दशारण, चेदि, तथा जेजाकभुक्ति नाम से ज्ञात रहा है।[83] सातवी शताब्दी में चीनी यात्री व्हेनसांग ने अपनी यात्राक्रम में इस क्षेत्र से होकर गुजरा था और उसने अपने यात्रा विवरण में लिखा था– "**यह भू–भाग जेजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध है यहाँ जिजहोती नाम का एक ब्राह्मण राजा शासन कर रहा है जिसकी राजधानी खजुराहो है।**"[84] धीरे–धीरे यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया जेजाकभुक्ति से बुन्देलखण्ड[85] नाम कब परिवर्तित हुआ इसके बारे में निश्चित जानकारी का अभाव है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि तेरहवीं शताब्दी में बुन्देला ठाकुरों का प्रभुत्व स्थापित होने के बाद यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड नाम से ज्ञात हुआ।[86] यह भी सम्भव है कि विन्ध्यांचल पर्वत की चोटियाँ इस क्षेत्र में दूर–दूर फैली होने के कारण यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड तत्पश्चात् बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्ध हुआ। भौगोलिक रूप से उत्तर में यमुना, उत्तर–पश्चिम में चम्बल, दक्षिण में जबलपुर तथा सागर तथा दक्षिण पूर्व में

---

82 एटकिन्शन, ई.टी0 (वही), पृ – 35
83 मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी स0 2011, पृ0 4–5
84 मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी स0 2011, पृ0 4–5
85 मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी स0 2011, पृ0 4–5
86 मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी स0 2011, पृ0 4–5

बघेलखण्ड, मिर्जापुर तथा पूर्व की ओर विन्ध्याचल की पहाड़ियों से घिरा हुआ क्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से ज्ञात है। यहाँ की ऊबड़–खाबड़ भूमि पठारी जलवायु एवं जंगली क्षेत्र के कारण लोगो को अपनी जीविकोपार्जन के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा भौगोलिक रूप से प्रथम इकाई होने के कारण इस क्षेत्र के निवासियों में स्वतन्त्रता की भावना निरंतर विकसित होती रही और यही कारण था, यहाँ के लोगो ने किसी भी बाहरी सत्ता के समक्ष हमेशा–हमेशा के लिए सर्मपण नहीं किया और न ही उनकी स्वतंत्रता की भावना हमेशा के लिए समाप्त हुई। किसी विशेष परिस्थितिवश विपक्षियों की महती शक्ति के कारण बाध्य होकर कुछ समय के लिए यहाँ के लोगो ने बाहरी नियन्त्रण स्वीकार तो किया लेकिन अवसर देखकर अपनी स्वतन्त्रता प्रियता की परम्परा के अनुरूप लोगों ने उस सत्ता को समाप्त कर पुनः स्वतन्त्रता को स्थापित किया। पन्ना नरेश छत्रसाल बुन्देला ने इस स्वतन्त्रता प्रियता का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। जिस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए वीरसिंह देव, जुझार सिंह तथा चम्पतराम प्रयासरत रहे उसे छत्रसाल ने अपने साहस और कूटनीति के बल पर सफलता पूर्वक प्राप्त किया।[87]

बुन्देलखण्ड का गौरवमय इतिहास यहाँ के निवासियों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने की एक अमरगाथा है। अंग्रेजी शासनकाल में भी आर्थिक शोषण जाति–वर्ग–भेद तथा अंग्रेजो द्वारा अपनायी गई भेदभाव–पूर्ण नीति से परेशान होकर यहाँ के लोगो में अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता की प्राप्ति करने के लिए रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में विद्रोह का सूत्रपात किया। इस प्रकार इस क्षेत्र की केन्द्रीय स्थिति तथा यहाॅ के निवासियों के स्वतन्त्रतापूर्ण स्वभाव को देखकर ही अंग्रेजो ने 1803 ई. की

---

[87] मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी स0 2011, पृ0 4–5

बेसिन की संधि से इस क्षेत्र. का अधिपत्य स्थापित करते हुये अपनी सत्ता को न केवल निरन्तर मजबूती प्रदान की बल्कि भारत के इस मध्य भाग को केन्द्र बनाकर चारों ओर अपनी सत्ता का विस्तार किया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड सामरिक रूप से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा है।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन

अध्याय - 2

बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन

बेसिन की सन्धि (1802) के पश्चात् जैसे ही कैप्टन बेली बुन्देलखण्ड आया वैसे ही बाँदा पहुँचकर उसने सर्वप्रथम अंग्रेजी क्षेत्रों पर नियन्त्रण और प्रशासन प्रारम्भ कर दिया। बुन्देलखण्ड में मराठो से अंग्रेजों को जो क्षेत्र मिले थे उनकी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए 1804 के अन्त में एक कमीशन नियुक्त कर दिया गया जिसका अध्यक्ष ब्रूक नियुक्त हुआ। इसके अलावा कैप्टन बेली गर्वनर जनरल का एजेण्ट तथा लेफ्टिनेट कर्नल मार्टिन्डेल को इस आयोग का सदस्य नियुक्त किया गया। इस नवगठित आयोग को बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू कलकत्ता के देखरेख में रखा गया।[1] प्रशासनिक व्यवस्था के विस्तार के इस क्रम में यह आवश्यक था कि न्याय के प्रबन्ध के लिए जज तथा मजिस्ट्रेट की नियुक्ति की जाए ताकि न्यायिक और प्रशासनिक कार्य ठीक प्रकार से सम्पादित हो सके। इस कमी की पूर्ति के लिए डब्ल्यू ब्रोडी को न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया तथा जे0डी0 आर्स्किन को कलेक्टर बनाया गया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन के निर्माण का यह प्रारम्भिक ताना–बाना था।[2]

यह प्रशासनिक तंत्र बुन्देलखण्ड के लिए नया था। कैप्टन बेली तथा अन्य अधिकारी यह नही जानते थे कि यहाँ के किसानों और जमीदारों से किस प्रकार राजस्व की वसूली की जाए तथा राजस्व की दरें क्या होगीं? इसके लिए आवश्यक था कि ब्रिटिश शासक के प्रारम्भ से पूर्व प्रचलित राजस्व की दरों के जानकार

---

[1] एटकिन्सन ई.टी., (वही), पृष्ठ 38
[2] एटकिन्सन ई.टी., (वही), पृष्ठ 38

स्थानीय लोगों की सहायता ली जाए। इसीलिए कैप्टन बेली ने लखनऊ के निवासी मीरजाफर की सेवाए प्राप्त की जो नवम्बर 1804 में बेली के साथ ही बाँदा पहुँचा। मीरजाफर को राजस्व दरों की अच्छी जानकारी थी। बेली ने जिस प्रकार का शासन प्रारम्भ किया वह मौलिक रूप में सैनिक तथा राजस्व वसूल करने वाला था। इसके पश्चात् अंग्रेजी सत्ता के समक्ष समर्पण कर दिया। धीरे–धीरे राजाओं को सरकार की ओर से सनदें दी जाने लगी। इस प्रकार इस क्षेत्र में अंग्रेजी शासन स्थापित हो गया।

अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित की गई बुन्देलखण्ड की रियासतें :–

1803 से 1857 के बीच अंग्रेजी साम्राज्यवादी शक्ति ने बुन्देलखण्ड की अनेकों रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया। टिहरी, दतिया और समथर की रियासतों के साथ अंग्रेजों के दिखावे के सन्धि पत्र थे जबकि अन्य राजाओं को सनद और इकरारनामा देकर अंग्रेजों ने उन्हें अपने समझौते से बाँध लिया।

जालौन की रियासत :–

जिस समय अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया उस समय जालौन में मराठों का आधिपत्य था और वहाँ का शासक नाना गोविन्द राव था। चूँकि बाँदा के नवाब शमशेर बहादुर ने अंग्रेजों के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ किए थे, और उसमें जालौन के सुबेदार नाना गोविन्दराव ने भी अंग्रेजों का विरोध प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए 1806 में जालौन में अंग्रेजों के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया तब यहाँ का शासन नाना गोविन्दराव को वापस मिला, किन्तु कालपी तथा यमुना के किनारे के

गाँवों को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया नाना गोविन्दराव ने अंग्रेजों की सेवा तथा मदद करने का वचन दिया। 1822 में उसकी मृत्यु हुई तथा उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्र बालाराव गोविन्द हुआ जिसकी मृत्यु निःसन्तान 1832 में हो गई। बालाराव की विधवा पत्नी ने एक लड़के को गोद लिया जिसका नाम राव गोविन्द राव था। उसकी भी मृत्यु निःसन्तान 1840 में हुई और तभी से जालौन पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।[3]

झाँसी की रियासत :-

झाँसी की रियासत से अंग्रेजों की पहली सन्धि यहाँ के सूबेदार शिवराम भाऊ से हुई थी। 1815 में उसका उत्तराधिकारी रामचन्द्र राव हुआ जिससे अंग्रेजों ने 1817 में दूसरी सन्धि की। रामचन्द्रराव निःसन्तान था। 1835 में उसकी मृत्यु के बाद उसके चाचा रघुनाथ राव को गद्दी मिली। उसकी भी मृत्यु निःसन्तान हुई, अतः गद्दी पर उसका छोटा भाई गंगाधर राव बैठा। गंगाधर राव को अयोग्य बताकर कुछ समय तक अंग्रेजों ने अपना अधिपत्य बनाए रखा किन्तु 27 नवम्बर 1842 को अंग्रेजी अधिकारियों ने गंगाधर राव को गद्दी वापस कर दी। 1848 में उसका विवाह रानी लक्ष्मीबाई से हुआ जिसका 1852 में एक पुत्र भी पैदा हुआ किन्तु दुर्भाग्यवश अल्पावस्था में ही मृत्यु हो गयी, अतः निःसन्तान गंगाधर राव ने आनन्दराव नामक बच्चे को गोद लिया, लेकिन इस गोदनामें को ब्रिटिश सरकार ने मान्यता नही दी और झाँसी की रियासत को अंग्रेजी शासन में मिला लिया।

---

[3] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 190

जैतपुर :-

जैतपुर की रियासत क्षत्रसाल बुन्देला के हाँथ थी, 1852 में यहाँ के राजा केशरी सिंह के साथ ब्रिटिश सरकार ने एक सनद पर हस्ताक्षर किया जिसके अनुसार जब तक कि राजा केशरी सिंह तथा उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों के प्रति वफादार बने रहेगें तब तक पनवारी परगने के 52 गाँवों में उनकी जमींदारी बनी रहेगी।[4] केशरी सिंह के बाद परीक्षित गद्दी पर बैठे जिन्हे बागी होने के आरोप में 1842 में उनकी रियासत पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् खेत सिंह को यहाँ की जागीर दे दी गई। 1849 ई. में बिना किसी पुत्र के उनकी भी मृत्यु हो गयी। अतः ब्रिटिश सरकार ने उनकी रियासत पर अधिकार कर लिया।[5]

खाड़ी :-

खाड़ी एक छोटी सी जागीर थी जिसे 1807 में परशुराम को अंग्रेजों द्वारा दिया गया था। परशुराम डकैतों के एक गिरोह का सरदार था जिसने बुन्देलखण्ड में शान्ति स्थापित करने में उनकी मदद की थी। 1850 ई0 में उसकी मृत्यु हो जाने पर इस रियासत पर भी अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया।[6]

उपरोक्त रियासतों व जागीरों के अलावा कुछ ऐसी भी जागीरें तथा रियासतें थी जिसे अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया गया। 1857 में रियासतों द्वारा अंग्रेजों का विरोध किए जाने के कारण ही उन्हें ब्रिटिश राज़्य में मिला लिया गया। इन रियासतों में तिरगुवां, चिरगाँव, परवर, विजयराघोगढ़, शाहगढ़, वानपुर तथा अन्य

---

[4] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 249–255

[5] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) जिल्द –5, पृष्ठ 190

[6] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 255–259

कुछ छोटी–2 रियासतें थी।[7] इस प्रकार मराठों से प्राप्त बुन्देलखण्ड का क्षेत्र तथा विभिन्न रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने से बाँदा, हमीरपुर, जालौन तथा झाँसी जिलो का क्षेत्रफल निर्धारित कर उनका गठन किया गया। बुन्देलखण्ड की कुछ रियासतों के साथ अंग्रेजों ने जो सन्धियाँ कर रखी थी उन रियासतों में दतिया, ओरछा तथा समथर की रियासते प्रमुख थी।

ओरछा :–

ओरछा की रियासत ही एकमात्र ऐसी रियासत थी जो पेशवा के अधीन नही थी। यद्यपि पेशवा ने इसका कुछ भाग लेकर झाँसी में मिला लिया था। 23 दिसम्बर 1812 में अंग्रेजी सरकार ने ओरछा के राजा विक्रमाजीत महेन्द्र से एक मैत्रीपूर्ण सन्धि की।[8] 1834 में विक्रमाजीत का भाई तेजसिंह गद्दी पर बैठा, लेकिन 1842 में उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु से पूर्व ही उसने अपने एक भतीजे सुजान सिंह को गोद ले लिया था। सरकार ने उस गोद को मान्यता दे दी तथा वहीं की लरई रानी को उस रियासत का रीजेण्ट नियुक्त कर दिया क्योंकि सुजानसिंह एक अवैध वयस्क था। 1857 के विद्रोह के समय लरई रानी ने अंग्रेजों का साथ दिया था तथा अंग्रेजों की ओर से लरई रानी ने झाँसी पर आक्रमण किए थे।

दतिया :–

दतिया की रियासत ओरछा राज्य की एक शाखा थी। 1803 की बेसिन की सन्धि के फलस्वरूप अंग्रेजों की प्रभुता का श्रीगणेश इस क्षेत्र में हुआ था। 15 मार्च

[7] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 191–260
[8] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 191–19, 261–264

1804 को दतिया के राजा परीक्षित ने अंग्रेजों के साथ एक मैत्रीपूर्ण सन्धि की।[9] 1839 ई0 में परीक्षित की मृत्यु हुई और उसका उत्तराधिकारी विजयबहादुर नियुक्त हुआ, लेकिन उसके उत्तराधिकारी विजयबहादुर नियुक्त हुआ, लेकिन उसके उत्तराधिकार की वैधता को वरौनी के मदनसिंह ने चुनौती दी। अंग्रेज सरकार ने मदनसिंह के दावे को अस्वीकार कर दिया तथा विजयबहादुर को मान्यता दे दी। 19 नवम्बर 1857 को विजयबहादुर की मृत्यु हो गई तथा उसका उत्तराधिकारी उसी का गोद लिया हुआ पुत्र भवानीसिंह को नियुक्त किया गया।

समथर :–

12 नवम्बर 1857 को समथर के राजा रणजीत सिंह से अंग्रेजों का एक समझौता हुआ।[10] 1827 में उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्र हिन्दुपत नियुक्त हुआ।

उपरोक्त रियासतों के अतिरिक्त अंग्रेजों ने कुछ जागीरदारों को सनदे प्रदान की। इनमें से अधिकांश छत्रसाल के वंशज थे। इन सनदों को देने के पीछे जो सिद्धान्त अपनाया गया उनके बारे में एचीन्सन ने लिखा है कि ''अलीबहादुर की सरकार के समय बुन्देलखण्ड के जो सामन्त ओर जागीरदार अपनी–2 जागीरों के मालिक थे उन्ही के अधिकार को मान्यता दी गई। यद्यपि उन्होनें ब्रिटिश सरकार का कभी विरोध नही किया था। भविष्य में भी उन्हें ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार

---

[9] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 192–193, 264–270

[10] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) जिल्द –5, पृष्ठ 193–194, 270–273

रहना होगा। ब्रिटिश सरकार का इन रियासतों पर केवल राजनीतिक नियन्त्रण होगा जबकि इसका शेष प्रबन्ध वहीं के राजा–महराजा करेंगे।[11]

बेसिन की सन्धि 1802 ई0 के पश्चात् बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश सत्ता का विस्तार :–

उल्लेखनीय है कि पेशवा बाजीराव द्वितीय ने 31.12.1802 को बेसिन की सन्धि द्वारा कम्पनी सरकार से छः बटालियन सेना लेकर बुन्देलखण्ड में मराठो के प्रभुत्व वाले क्षेत्र को ब्रिटिश सरकार को समर्पित कर दिया था।[12] इसी सन्धि से अंग्रेजो का बुन्देलखण्ड आगमन हुआ। परिस्थिति भी उनके अनुकूल थी इसका कारण यह था कि बुन्देलखण्ड में मराठे और बुन्देले एक दूसरे का गला दबाने में जुटे हुए थे इतना ही नही बल्कि यहाँ के मराठा सूबेदार भी एक दूसरे पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए संघर्षरत थे। सागर और जालौन के मराठा सूबेदार एक दूसरे से वैमनस्य रखते थे वहीं दूसरी ओर बाँदा के नवाब अलीबहादुर ने हिम्मत बहादुर से मिलकर पूर्वी बुन्देलखण्ड के बुन्देला राजाओं को भयभीत कर रखा था। पश्चिमी बुन्देलखण्ड में झाँसी के मराठा सूबेदारों ने ओरछा, दतिया तथा समथर के राजाओं को भी परेशान कर रखा था और इन रियासतों की भूमि में अंग्रेजों ने अपने ठिकाने स्थापित कर लिए थे।[13]

इस प्रकार 1761 के पानीपत के तृतीय युद्ध में पराजित होने के पश्चात् पतनोन्मुख मराठी सत्ता को बुन्देलखण्ड के बुन्देला तथा अन्य रियासतों के राजाओं

---

[11] सी.यू. एचिन्सन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटीज, इन्गेजमेण्टस एण्ड सनद (वही) पृष्ठ 185–407

[12] Report from select Committee on the affairs of east India Company – Political and foreign Vol – VI, Appendix 20 letter of B.S. Jones to Charls Grant, July 1830, Page 176-191. Secretariate Record, Bhopal.

[13] के0पी0 त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, (राजतन्त्र से जनतन्त्र तक) पृष्ठ 245

से चुनौती मिल रही थी।[14] बुन्देलखण्ड मे सर्वप्रथम अनूपगिरी उर्फ हिम्मतबहादुर गुँसाईं ने मराठों से बदला लेने तथा अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए अंग्रेजी सत्ता से 4 सितम्बर 1803 को सन्धि कर ली। यह सन्धि कम्पनी राजनीतिक प्रतिद्वन्दी जॉन बेली तथा हिम्मतबहादुर गुँसाईं के बीच 4 सितम्बर 1803 को हुई, जिसके द्वारा हिम्मतबहादुर ने बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों की सार्वभौमिक सत्ता स्थापित कराने का आश्वासन दिया।[15] इस सन्धि ने बुन्देलखण्ड के भाग्य का फैसला कर दिया। इसके बाद अंग्रेजों तथा बुन्देलाखण्ड के देशी रियासतों के बीच समझौतों का क्रम आरम्भ हो गया। धसान नदी के पश्चिमी ओर स्थित जो रियासतें थी उन्हे स्वतन्त्र, प्राचीन और सम्माननीय मानते हुए उनसे समानता के आधार पर मैत्री और परस्पर सुरक्षात्मक सन्धियाँ की।[16] ऐसे राज्यों मे ओरछा, दतिया तथा समथर प्रमुख थे किन्तु इसी क्षेत्र में स्थित मराठी रियासतों को पेशवा के अधीन मात्र सूबे मानते हुए परिवर्तित राजनीतिक अधिकारों के स्वरूप उन्हें अपने अधीन माना। अतः इन मराठी रियासतों से कुछ भू–खण्ड लेने के साथ–साथ पूर्व में पेशवा को दी जाने वाली वार्षिक धनराशि को अब कम्पनी के कोष में जमा कराने का आश्वासन प्राप्त किया। अंग्रेजी सत्ता ने इन मराठी रियासतों से सुरक्षात्मक सन्धियाँ तो की किन्तु उनके स्थायित्व की गारन्टी नही दी गई दूसरे शब्दों में इन मराठी रियासतों का स्थायित्व कम्पनी सरकार की कृपा तथा उनकी प्रशासनिक क्षमता पर निर्भर रखा गया था। बुन्देलखण्ड की पूर्वी सीमा पर जो राज्य स्थित थे उनको सनद् प्रदान की गई और उनकी सुरक्षा की गारण्टी इन सनदों में उल्लेखित प्राविधानों के पालन एवं

---

[14] ली वार्नर, प्रोटेक्टेड प्रिन्सेस ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 89

[15] ली वार्नर, प्रोटेक्टेड प्रिन्सेस ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 89 अध्याय चार मौदहा राज्य11 नवम्बर

[16] एचिन्सन सी.यू. (वही) जिल्द – 5 पृष्ठ 5

कम्पनी सरकार वफादारी करने तक दी गई थी। सनद् वाले राज्य वे राज्य थे जिनका उदय मराठों के सहयोग से हुआ था और मराठों द्वारा संरक्षित थे लेकिन कुछ सनद राज्यों का निर्माण कम्पनी की सत्ता के द्वारा किया गया था जो वस्तुतः जागीरें थीं और वहाँ के जागीरदार की वफादारी और अच्छे चाल–चलन की गारण्टी तक सुरक्षित थी।

1803 से 1823 के मध्य कम्पनी सरकार ने बुन्देलखण्ड के सभी छोटे–बड़े राज्यों से सुरक्षात्मक सन्धियाँ और समझौते किए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड के स्थानीय राज्य मराठों से त्रस्त थे और वे उनकी सर्वोच्चता से मुक्ति पाना चाहते थें वहीं दूसरी कम्पनी सरकार भारत के इस हृदय प्रदेश पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए बुन्देलखण्ड पर अधिपत्य स्थापित करने के लिए लालायित थी।[17] इस प्रकार कम्पनी ने जो भी शर्तें राजाओं के समक्ष प्रस्तुत की उसे उन राजाओं ने स्वीकार कर लिया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार ने बुन्देलखण्ड की जिन रियासतों से 1803 में समझौते किए थे वे निम्नलिखित थे।

तरौहा (कर्वी) एवं मौदहा सन् 1804 में बाँदा, झाँसी, दतिया और चरखारी सन् 1806 में छतरपुर, कांलिजर (चौबयाना) जालौन, अजयगढ़, कदौरा (बावनी) सन 1807 में सरीला, पन्ना, नैगुवांरिबई, बरौधा, आलीपुर, बीहट, खड्ड़ी एवं गौरिहार सन् 1808 में लुगासी, सन् 1809 में बेरी और सन् 1810 में जिगनी सन् 1811 में बिजावर 1812 में गरौली, जैतपुर, ओरछा, सन् 1816 में भैसुन्ड़ा, सन् 1817 में मकरी, समथर 1821 में चिरगाँव, टोढ़ी, घुरबई, बिजना एवं पहारी से अनुबन्ध कर

[17] के0पी0 त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, (राजतन्त्र से जनतन्त्र तक) पृष्ठ 246

उन्हें मराठों से सुरक्षा की गारण्टी प्रदान की गई थी।[18] कम्पनी सरकार की ओर से उसके राजनीतिक प्रतिद्वन्दियों में जॉन वेली (1803—1807), जॉन रिचर्डसन (1807—1812), जॉन वाकब (1812—1818) एवं लेफ्टिनेन्ट मूड़ी (1818—1821) प्रमुख थे। इन समझौतों की पुष्टि गर्वनर जनरल और उसकी काउन्सिल द्वारा की गई थी।

यहाँ यह उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है कि सागर और गुरसराँय ये दो मराठा रियासतें तथा शाहगढ़, बानपुर, खनियाधाता की तीन बुन्देला रियासतें कम्पनी सरकार से समझौता करने से अलग रही, इसका कारण यह था कि सागर का सूबेदार स्वयं को समप्रभु मानता था और केवल पेशवा के प्रति उत्तरदायी समझता था इसी प्रकार गुरसराँय के प्रबन्धक भी उन्ही के सम्बन्धी थे जो सागर के सूबेदार के निर्देश पर चलते थे। जहाँ तक खनियाधाता, बानपुर और सागर के बुन्देला राज्यों का प्रश्न है वास्तव में इनकी स्थिति झाँसी और सागर के मराठा राज्यों के बीच मे थी जिन्हें यह आभास नही हो पाया कि बुन्देलखण्ड में उभरती हुई ब्रिटिश प्रभुता रूपी सूर्य निरन्तर फैलने वाला है। इनके ब्रिटिश सरकार से समझौता न करने का एक कारण यह भी था कि ये पाँचों राज्य बुन्देलखण्ड के जंगली क्षेत्रों में दक्षिण—पश्चिम की ओर स्थित थे जहाँ पिण्डारी प्रायः लूट—पाट करते थे अतः ये रियासतें अपनी सुरक्षा में ही उलझी रही।

कम्पनी सरकार ने इन सन्धियों और समझौतों की धाराओं का सम्पादन बड़ी चतुरता और कूटनीतिक अनुभव के आधार पर किया जिसके पीछे उद्देश्य यह था कि इन समझौतों से बुन्देलखण्ड की रियासतों को इस प्रकार बाँध दिया जाए ताकि

[18] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, भूमिका (राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली)

यहाँ के राजाओं को इन समझौतों के विरूद्ध आचरण करने की गुंजाइश न रहे। ज्ञात है कि सर्वप्रथम 1778 में एक अंग्रेजी सेना कालपी के रास्ते बुन्देलखण्ड होते हुए पेशवाई के पद पर हो रहे विवाद में हस्ताक्षेप करने के लिए कर्नल लेस्ली के नेतृत्व में महारष्ट्र जा रही थी किन्तु ज़ालौन के मराठा सुबेदार ने अंग्रेजी सेना को अपने रेंज की सीमा से निकलने की अनुमति नही दी थी। इस प्रकार भविष्य में ऐसी कोई स्थिति न आ पाए इसलिए कम्पनी सरकार ने इन समझौतों में स्पष्ट उल्लेख कर दिया कि समझौता करने वाले राज्यों की सीमाओं से कम्पनी की सेना बेरोक–टोंक आ–जा सकेगी तथा वहाँ प्रवास कर सकेगी और समझौता करने वाला राजा इन अंग्रेजी सेनाओं को समुचित सुविधा और मार्गदर्शन दिया करेगें।[19]

उपरोक्त शर्तो के अलावा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने बुन्देलखण्ड की रियासतों और जागीरों से समझौते और इकरार नामे करते समय अपनी मनचाही शर्तें जोड़ते हुए यहाँ के राजाओं तथा जमींदारों को अपने रियासत और जागीर में आन्तरिक सुव्यवस्था बनाए रखने का भी इकरार करा लिया साथ ही इन राजाओं के लिये यह भी शर्त जोड़ दी की वे घाटों तथा मार्गो की सुरक्षा बनाये रखेंगे एवं चोर, डाकू एवं लुटेरों को न तो अपने राज्य में शरण देंगे और न ही उनसे सम्पर्क स्थापित करेंगे, इसके अलावा यह भी उनका दायित्व होगा कि यदि कम्पनी द्वारा शामिल क्षेत्रों से कोई भी अपराधी भागकर किसी रियासत में में चला जाता है तो उसे पकड़कर कम्पनी सरकार के सुपुर्द करना इन रियासतों के राजाओं का दायित्व होगा।[20] अपनी मनचाही शर्तों को थोपते हुये कम्पनी सरकार ने बुन्देलखण्ड के अराजक भावनाओं वाले राजाओं पर और अधिक दवाव बनाने के

[19] के0पी0 त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, (राजतन्त्र से जनतन्त्र तक) पृष्ठ 248
[20] के0पी0 त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, (राजतन्त्र से जनतन्त्र तक) पृष्ठ 248

लिये यह भी शर्त थोप दी कि यदि उनके राज्य के अन्तर्गत आने वाले किसी भी गाँव पर वहाँ के राजा का पैतृक अधिकार सिद्ध न हुआ तो वे ऐसे ग्रामों को बेहिचक त्याग देगें।[21] बुन्देलखण्ड के रियासतों को और अधिक कमजोर करने के लिए कम्पनी ने कालिंजर, गौरिहार, नैगुंवारिबई, गरौली और खड्डी रियासतो के राजा आराजक तत्व वाले डाकू तथा लुटेरे दलों के नेता थे इनका इतना अधिक आतंक था कि पूर्वी बुन्देलखण्ड के राजा ही भी उनसे इतना लोहा लेने मे भय खाते थे। कम्पनी इस स्थिति को भलीभाँति समझती थी अतः ब्रिटिश नियन्त्रण को और अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए ऐसे अराजक जागीरदारों का दमन आवश्यक था। अतः कम्पनी के इन जागीरों के राजाओं को जीवन यापन के लिए जागीरें तो प्रदान की किन्तु उनका पूर्णतः आत्मसमर्पण करवा लिया गया। ऐसे राजाओं से लूट–पाट न करने के साथ–2 यह भी वचन लिया गया कि वे अपनी जागीर की सीमा से बाहर बिना अनुमति के नही जाया करेगें।[22] इन रियासतों के राजाओं और जागीरदारों को और अधिक अप्रभावी बनाने के लिए कम्पनी सरकार ने इन पर यह भी दायित्व थोपा कि ये राजे अपने राज्य में होने वाले प्रत्येक प्रकार के उपद्रव लूट और अराजकता का दमन करेगें। भले ही लूट और अराजकता फैलाने वाले उस रियासत का घनिष्ठ सम्बन्धी या उस परिवार का सदस्य ही क्यों न हो।[23]

बुन्देलखण्ड में रियासतों में अराजकता और उपद्रव का दमन करने के लिए यदि किसी भी अराजकता और उपद्रव का दमन करने के लिए यदि किसी भी राजा पर सन्देह होता था तो कम्पनी की सरकार उसे और पंगु और कमजोर बना देती

---

[21] के0पी0 त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, (राजतन्त्र से जनतन्त्र तक) पृष्ठ 248

[22] गौरिहार, नैगुवारिबई, खड्डी के इकरार (के.पी. त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास) पृष्ठ 249

[23] पन्ना, जैतपुर, चरंखारी, राज्यों के इकरार, के.पी.त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड़ का बृहद इतिहास) अध्याय – 2

थी, ठीक इसी तरह तरौहा (कर्वी), बाँदा और मौदहा के प्रभावशाली राजाओं के राज्य छीनकर उन्हे कुछ भूमि, भवन और बगीचे व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में देकर और पेन्शन प्रदान कर कम्पनी सरकार ने इतना पंगु और कमजोर बना दिया ताकि वह भविष्य में अपने प्रभाव का प्रयोग जन असन्तोष को भड़काने में न कर सके और न ही वे स्वयं अराजक बन सकें। कम्पनी के अधिकारियों ने बुन्देलखण्ड में रियासतों की विदेश नीति एवं ग्रह नीति दोनों को सन्धियों और समझौतों से इस तरह जकड़ दिया कि वे किसी भी प्रकार ब्रिटिश कम्पनी के लिए खतरा न बन सके।[24] यदि बुन्देलखण्ड के शक्तिशाली स्थानीय बड़े राज्यों के राजाओं की सुरक्षा का भार कम्पनी सरकार ने अपने ऊपर लिया तो दूसरी ओर कम्पनी ने इन राजाओं से भी कम्पनी के सहयोगी के रूप में सहायता देने का आश्वासन प्राप्त कर लिया। यद्यपि सन्धि राज्यों से एक–दूसरे का मित्र मानते हुए समानता के आशय पर की गई थी किन्तु फिर भी कम्पनी सरकार ने इन्हे अपने अधीन माना तथा राजाओं ने भी इसे स्वीकार किया क्योंकि इन राजाओं को मराठों से आतंक की आशंका थी अतः राजाओ ने मजबूरीवश कम्पनी सरकार से सन्धियाँ की। इस प्रकार कम्पनी सरकार ने अवसर का लाभ उठाते हुए अपना एकाधिकार स्थापित करने वाली धाराओं या शर्तों को बुन्देलखण्ड के राजाओं पर थोप दिया। उन पर यह शर्त थोप दी गई कि वे कम्पनी सरकार के मित्र को मित्र एवं शत्रु को शत्रु मानेगें।[25]

---

[24] पन्ना, जैतपुर, चरखारी, राज्यों के इकरार, के.पी.त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास) अध्याय – 2

[25] Report from select committee, Vol – 6, Political and foreign-letter Col. Bailliei 27 Jan 1832 secretriate Record, Bhopal

लार्ड हेस्टिंग्स के समय से रियासतों के प्रतिनिधित्व में परिवर्तन :-

कम्पनी ने 1803 से 1812 के बीच बुन्देलखण्ड के रियासतों के राजाओं से जो सन्धियाँ समझौते और इकरार किए थे उसका उद्‌देश्य इन राजाओं को अपने जाल में घेर लेना था। जो अवसर के अनुसार मीठी कूटनीति के द्वारा किया गया किन्तु 1813 के पश्चात् लार्ड हेस्टिंग्स के समय कम्पनी के रियासतों के प्रतिनिधित्व मे परिवर्तन हुआ। अब कम्पनी मजबूत हो चुकी थी और अपने को सर्वोच्च एवं शक्तिशाली निरूपित करते हुए यह मान लिया कि रियासतों को कायम रखना या उनका कम्पनी के राज्यों में विलय करना उसकी इच्छा पर निर्भर है।[26] लार्ड हेस्टिंग्स कहा करता था ''**यह बहुत बड़ी कृपा मानी जाए कि देषी राजाओं में प्रारम्भ से ही बहुत सारे दोश एवं खामियां होते हुए भी कम्पनी सरकार ने उन्हें सुरक्षा प्रदान की है।**[27]''

लार्ड हेस्टिंग्स के राजनीतिक प्रतिनिधि वाकब ने सन् 1816 में भैसुण्डा (कालिंजर) एवं छतरपुर के राजाओं से तथा सन 1817 में मकरी (कालिंजर) एवं समथर के राजा से सन्धि सम्पन्न किए थे जिसमें समथर के राजा से वचन लिया था कि ''**राजा किसी अन्य राज्य से सीधे सम्पर्क नही रखेगा।**[28]'' पिण्डारियों के दमन के लिए बुन्देलखण्ड के राजाओं को इस कार्य में कम्पनी की सेना का साथ देने के लिए आदेश दिया गया था।[29] उसे यह भी इंगित किया गया था कि जो राजे पिण्डारियों के दमन में सहयोग नही देगें वे कम्पनी सरकार के शत्रु माने जाएगें इस

---

[26] Lee Warner, The Protective Princes of India, P-27.
[27] Lee Warner, The Protective Princes of India, P-11.
[28] Lee Warner, The Protective Princes of India, P-70
[29] हेनरी टी. प्रिन्सेप मार्किस ऑफ हेस्टिंग्स, जिल्द –2, पृष्ठ 21

प्रकार धीरे–धीरे कम्पनी सरकार ने इन रियासतों को अपनी प्रभुसत्ता के नीचे ला दिया।

बुन्देलखण्ड के रियासतों के राजाओं एवं जागीरदारों से किए गए सन्धि तथा समझौतो का प्रभाव :–

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक पूरे बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी साम्राज्य फेल गया था, यहाँ के सामन्तों एवं जागीरदारों से सन्धि और सनद् के आधार पर समझौते करके उन्हें बाहरी आक्रमण का न तो डर था और न ही आन्तरिक विद्रोह का। आराम की जिन्दगी का यह फल निकला कि इन जमीदारों का युद्ध–कौशल साहस तथा परिश्रमी स्वभाव आदि गुण स्वतः ही समाप्त हो गए, फलतः इनका पतन होने लगा। इसके अतिरिक्त विलासिता में डूबे रहने के कारण ये अपनी जागीरों का उचित प्रबन्ध भी नही कर पाए। अतः इनके किसानों के साथ सम्बन्ध भी खराब हो गए। धीरे–2 ये जागीरें भी घटती गयी, यह स्थिति केवल बुन्देला जमींदारों की ही नही थी, बल्कि मराठा जमींदार भी इस बुराई के शिकार हुए। इस प्रकार महाराजा छत्रसाल बुन्देला के समय से स्वाधीनता, देशभक्ति और साहस की जो परम्परा शुरू हुई थी और गोविन्द पन्त खेर जैसे मराठा सूबेदारों ने बढ़ाया था, वह अब नष्ट हुई। इन गुणों के स्थान पर धोखा, छलकपट आदि दुर्गुण इन जमींदारों के चरित्र में आ गए यहाँ तक कि इनमें से अधिकांश ने इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता के विरूद्ध 1857 के विद्रोह मे अंग्रेजी सरकार का खुलकर सहयोग भी दिया।

निःसन्देह उक्त परिस्थिति में कुछ ऐसे भी बहादुर थे जिन्होने स्वतन्त्रता आन्दोलन मे सक्रिय योगदान दिया तथा विदेशी साम्राज्य से डटकर संघर्ष किया।

उनका यह त्याग हमारे देशभक्तों के लिए हमेशा रोशनी दिखाने का कार्य करेगा। इस प्रकार 1804 से 1857 तक बुन्देलखण्ड का इतिहास राजाओं–महराजाओं के पतन तथा यहाँ की जनता की गरीबी तथा दयनीय स्थिति की एक दु:खद कहानी है।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी में प्रशासनिक तन्त्र का विकास

अध्याय - 3

बुन्देलखण्ड एजेन्सी में प्रशासनिक तन्त्र का विकास

बेसिन की सन्धि (1802) द्वारा सिद्धान्ततः बुन्देलखण्ड पर ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिपत्य स्वीकार किया गया था किन्तु यथार्थ में बुन्देलखण्ड का अधिग्रहण 16 दिसम्बर 1803 को हुआ।[1] इसके साथ ही कर्वी के पदच्युत पेशवा अमृतराव तथा शमशेर बहादुर नवाब बाँदा का प्रभाव समाप्त हुआ। कम्पनी के प्रशासको ने इन्हे स्वामी से सेवक बना दिया तथा उनके सारे अधिकार छीनकर उन्हे एक पेंशन भोगी सामान्य नागरिक की भाँति जीवन बिताने को मजबूर कर दिया। बुन्देलखण्ड में अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने के क्रम में अंग्रेजों ने सर्वप्रथम प्रभावशाली मराठा सरदारों पर चोट की थी और उन्हे पद से अलग कर महत्वहीन कर दिया गया था। मराठा सरदारों पर यह चोट एक सोची–समझी नीति के अन्तर्गत की गई थी, चूँकि मराठे ही बुन्देलखण्ड में प्रभावी थे इसलिए उन्हे पराजित करने का परिणाम यह हुआ कि इस क्षेत्र के अन्य छोटे–मोटे राजे एवं जमींदार स्वयमेव भयभीत हो गए और इनमें अधिकांश बुन्देला राजा अंग्रेजी शासन से समझौते करने के लिए आतुर हो गए। नवाब बाँदा को पराजित और पद से अलग होते देखकर इस क्षेत्र के बुन्देला राजाओं के हृदयों में कम्पनी सरकार के प्रति भयवश आदर का भाव प्रकट हुआ। तुलसीदास ने ठीक ही कहा है – **'भय बिन होय न प्रीति'**। निःसन्देह बुन्देलाओं का यह अनुराग भयवश ही था। बुन्देलखण्ड में हिम्मत बहादुर गुँसाईं ने अंग्रेजों को आश्रय प्रदान किया था किन्तु शमशेर बहादुर

[1] Report from select committee, Vol – VI, Political and foreign Appendix 20, Letter of B.S. Johns, july 1830 P-104, Secretariat Record, Bhopal .

की पराजय ने उन्हें बुन्देलखण्ड का संरक्षक और स्वामी बना दिया। बाद के वर्षों में यहाँ के रियासतों के राजाओं–महाराजाओं को कम्पनी सरकार ने सुरक्षा का आश्वासन दिया तथा उन्हे अपने प्रति वफादारी के लिए इकरार लिए जिनमें यह स्पष्ट उल्लेख था कि जब तक ये राजा अंग्रेजों के प्रति स्वामि–भक्ति और वफादारी बनाए रखेगें और निष्ठापूर्वक अपने समझौतों का पालन करते रहेंगें तब तक उनके अधिकार वाला राज्य उनके स्वयं के और तत्पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों से छीना नही जाएगा। संक्षेप में इन समझौतों से राजाओं को केवल दो काम निश्चित किए गए–

1. अंग्रेजों के प्रति वफादारी।
2. आन्तरिक क्षेत्र में सुशासन की स्थापना।

इस प्रकार पूर्वी बुन्देलखण्ड मे मराठा शक्ति के पतन के पश्चात् औपनिवेशिक शक्ति को अपने साम्राज्य विस्तार का सुअवसर प्राप्त हुआ। 1804 में कम्पनी सरकार ने झाँसी राज्य के मराठा सुबेदार शिवरावभाऊ की प्रभुसत्ता पर चोट की।[2] अभी तक शिवरावभाऊ अपने को स्वतन्त्र मान रहे थे लेकिन कम्पनी सरकार ने उनकी सन्धि में उल्लेख कर बाध्य किया था कि" **जो कर** वह पेशवा को देते है वह अब कम्पनी के कोष में जमा करेगें।" इस प्रकार झाँसी का राज्य वैधानिक रूप से कम्पनी सरकार की अधीनता में आ गया और अंग्रेजों ने अप्रत्यक्ष रूप से झाँसी राज्य पर अपना प्रशासन स्थापित किया। ब्रिटिश प्रशासन के क्रम का जो प्रारम्भ बेसिन की सन्धि से हुआ था अब वह निरन्तर विकसित होता गया।

---

[2] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 259

बुन्देलखण्ड में शान्ति व्यवस्था की स्थापना ब्रिटिश प्रशासन की प्रथम वरीयता :-

अपने प्रशासन के विस्तार का प्रभाव जनमानस पर डालने के लिए अंग्रेजी सत्ता ने यह आवश्यक समझा कि प्रथम वरीयता के रूप में यहाँ शान्ति व्यवस्था की स्थापना की जाए ताकि लोग यह समझ सकें कि रियासतों के राजाओं के समय जो जनमानस लुटेरों, ठगों और पिण्डारियों के आतंक से परेशान था वह क्षेत्र अंग्रेजी प्रशासन के अन्तर्गत पूर्णतः सुरक्षित है। कम्पनी प्रशासन के प्रारम्भिक काल में पूर्वोत्तर बुन्देलखण्ड में मराठों की सत्ता के पतन के कारण लुटेरों, डाकुओं एवं उपद्रवियों ने भारी अराजकता उत्पन्न कर दी थी जिसके दमन में राजा स्वयं को असमर्थ पा रहे थे।[3] यह अराजक तत्व यह समझ चुके थे कि उस समय कोई ऐसी सक्षम तथा प्रभावी सत्ता नही थी जो कानून और व्यवस्था बनाने में सक्षम होती। अराजकता इतनी बढ़ी हुई थी कि पन्ना के राजा किशोर सिंह के शासन काल में शाहनगर के बहादुर सिंह ने मिर्जापुर के व्यापारियों को लूटा था।[4] कोटरा एवं पबई क्षेत्र में भी उसने लूटमार की थी, परन्तु रिचर्ड्सन एवं जोन्स किंग के प्रयासों से शान्ति स्थापित हो गयी थी।[5]

---

[3] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 259
[4] Letter No. 1, Dated 25-11-1807, Letter No. 4 Dated 7-1-1808, Letter No. 5 Dated 18-1-1808, (Bundelkhand) Nagpur Residency record, Nagpur.
[5] Letter No. 1, Dated 25-11-1807, Letter No. 4 Dated 7-1-1808, Letter No. 5 Dated 18-1-1808, (Bundelkhand) Nagpur Residency record, Nagpur.

राजाओं के मध्य परस्पर विवादों का निपटारा तथा सुशासन की स्थापना हेतु प्रयासः–

बुन्देलखण्ड के रियासतों के राजाओं–महराजाओं के मध्य परस्पर विवाद हुआ करते थे इससे शान्ति व्यवस्था प्रभावित होती थी और जनजीवन भी असामान्य हो जाता था। यह विवाद सीमाओं के निर्धारण अथवा उत्तराधिकार सम्बन्धी मामलों को लेकर या राजा के पुत्रों में राज्य विभाजन को लेकर हुआ करता था। बुन्देलखण्ड के जनमानस पर ब्रिटिश प्रशासन की उपस्थिति का और अधिक आभास कराने के लिए कम्पनी के अधिकारी स्वयं व्यक्तिगत रूचि लेकर राजाओं–महराजाओं के मध्य परस्पर विवादों का निर्णय कराते थे। उल्लेखनीय है कि रियासतों के राजाओं के साथ पूर्व में किए गए समझौतों में यह धारा जोड़ दी गयी थी कि ''**राजा अपने विवाद कम्पनी सरकार के माध्यम से ही निर्णित कराएगा।**[6]'' अतः कम्पनी सरकार ने विवादों को हल कर अपने निर्णय मान्य कराए एवं राजाओं पर अपना प्रभाव स्थापित किया। 1812 में छतरपुर के राजा शोनेजु ने अपने पाँच पुत्रों में राज्य का विभाजन करना चाहा था किन्तु कम्पनी सरकार ने इसे स्वीकार नही किया। उसी वर्ष कांलिजर के भैसुन्डा एवं मकरी के शासकों के आन्तरिक विवाद को कम्पनी ने पृथक–पृथक सनद देकर निपटाया। 1813 में कोटरा जागीर को लेकर अजयगढ़ तथा जासों के राजाओं को शान्ति से रहने में अपने प्रशासनिक प्रभाव का प्रयोग किया। 1816 में ओरछा और दतिया के मध्य सीमावर्ती उत्तरी खेरा ग्राम को लेकर सैनिक संघर्ष होने ही वाला था किन्तु कम्पनी सरकार ने इस ग्राम को ओरछा राज्य

[6] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 259

का मानते हुए दोनो रियासतों के राजाओं को शान्ति व्यवस्था बनाने का आदेश दिया।[7] इस प्रकार इन विवादों का निपटारा कर कम्पनी सरकार ने बुन्देलखण्ड के निवासियों को यह संकेत दिया कि नई औपनिवेशिक शक्ति ने न्यायपूर्ण धर्म से बर्ताव करते हुए उपरोक्त विवादों का निपटारा किया है। ऐसा करके कम्पनी सरकार ने जनता में तथा बुन्देलखण्ड रियासतों के राजाओं के दिमाग में अपने न्यायप्रिय होने की छवि को स्थापित किया।

बुन्देलखण्ड में पिण्डारियों का दमन कर जनता की वफादारी प्राप्त करने का प्रयासः–

जहाँ एक ओर कम्पनी सरकार राजाओं–महराजाओं के मध्य व्याप्त पारस्परिक विवादों का न्यायपूर्ण हल कर रही थी वही दूसरी ओर उसने बुन्देलखण्ड की जनता की शक्ति और सुरक्षा के लिए लुटेरों पिण्डारियों के दमन में अधिक रूचि दिखाई। 1817 में लार्ड हेस्टिंग्स ने पिण्डारी डकैतों के दमन का निश्चय किया। ये पिण्डारी लूट–पाट कर न केवल व्यापारिक काफिलों पर आक्रमण किया करते थे बल्कि अन्य धनाढ्य लोगों को भी बर्बरता पूर्वक लूटते थे। उनके इस कार्य से बुन्देलखण्ड की जनता अशान्ति और असुरक्षा महसूस करती थी। बुन्देलखण्ड स्थित मराठा ठिकानों में पिण्डारियों को शरण मिलता था क्योंकि वे अपनी लूट का कुछ हिस्सा मराठा सरदारों को भी देते थे। हेस्टिंग्स ने शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के लिए मराठा ठिकानों पर सैनिक कार्यवाहियां की और उनके राज्य समाप्त किए। पिण्डारियों के दमन में उसने स्थानीय राजाओं का सहयोग लिया। झाँसी के

[7] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 260

सूबेदार रामचन्द्र राव से मोठ परगना[8] इसलिए छीन लिया गया था क्योंकि वह इन अराजक तत्वों का दमन नही कर पा रहा था। इसी प्रकार खुदेह, चुर्की एवं महोबा के 48 गाँव[9] जो जालौन के मराठा रियासत में थे उन्हे भी छीन लिया गया था। ये सारे कार्य मराठी रियासतों को दण्डित करने के उद्देश्य के लिए किए गए क्योंकि ये मराठे पिण्डारियों के अत्याचार को बढ़ावा देते थे।

1820 में लार्ड हेस्टिंग्स ने शाहगढ़ के राजा से गढ़कोटा छीनकर सागर नर्मदा टेरिटरी में शामिल कर लिया। 1824 में कानपुर मे लार्ड एर्म्हस्ट तथा 1829 में कैथा (हमीरपुर) में लार्ड हेस्टिंग्स ने दरबार आयोजित किए।[10] कैथा के दरबार में बुन्देलखण्ड के सभी राजाओं को आमंत्रित किया जिसमें ठगों और पिण्डारियों के अत्याचार पर उत्पन्न आन्तरिक अव्यवस्था एवं उनके निराकरण के उपायों पर विचार किया गया था।

1832 में जब पन्ना के राजा ने अपनी प्रजा पर भारी अत्याचार किए उस समय लार्ड विलियम बैंटिक ने राजा को पन्ना से निष्कासित कर दिया तथा छतरपुर के राजा प्रतापसिंह को वहाँ का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया।[11] इसी प्रकार 1835 में अलीपुर के राजा पंचमसिंह ने जब अपने चार भाइयों में राज्य का विभाजन करना चाहा तो कम्पनी ने राज्य की एकता बनाए रखने के लिए इस पर रोक लगा दी।[12] 1830 में दतिया के राजा परीक्षित ने जब एक अवैध पुत्र को गोद लेना चाहा तब

---

[8] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 260
[9] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 259
[10] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 259
[11] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 261
[12] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 261

जन्म विरोध के कारण कम्पनी सरकार ने यहाँ हस्तक्षेप किया और इसमें जनता का पक्ष लिया।

इस प्रकार कम्पनी सरकार ने उपरोक्त कार्यों से जनमानस के समक्ष अपनी न्यायप्रियता, ईमानदारी तथा कम्पनी सरकार की जनता के कल्याण के लिए कार्य करने की प्रतिबद्धता को प्रमाणित किया और कम्पनी ने स्वयं को इन उदाहरणों द्वारा बुन्देलखण्ड का एक कुशल प्रशासक साबित किया।

तुलनात्मक पद्धति द्वारा प्रशासनिक सूझ–बूझ का प्रदर्शन और राजाओं के कुशासन का प्रस्तुतीकरण :–

कम्पनी सरकार ने बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता को मजबूत बनाने के उद्देश्य से प्रशासनिक दृष्टि से जो दो कार्य किए उसका प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश प्रशासन तंत्र को अच्छा साबित करते हुए इसे जनतांत्रिक और जनहितैषी निरूपित करना था। **मेटकॉफ** ने[13] 1837 में यह तर्क दिया था कि **''स्थानीय राज्यों में उत्तराधिकारी नियम के अभाव के कारण इन राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्ताक्षेप करना वैध एवं न्यायसंगत तो नहीं है लेकिन उस रियासत के उत्तराधिकारी की अल्पावस्था या कुशासन के कारण जनहित को ध्यान में रखकर हस्ताक्षेप वैध है।''** इस कथन के साथ ही सन् 1837 में कम्पनी ने राज्यों का शासन प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर वहाँ के प्रजा के समक्ष तुलनात्मक प्रशासन पद्धति की विभेदक परम्परा को प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया।[14] इस पद्धति द्वारा रियासतों के राजाओं–महाराजाओं को

[13] Parliamentry Papers – Mintue of Sir Charles Mentcalf, 28 Oct 1837, Letter No. 442 Secretariat Record, Bhopal
[14] Parliamentry Papers – Mintue of Sir Charles Mentcalf, 28 Oct 1837, Letter No. 442 Secretariat Record, Bhopal

अलोकप्रिय और अत्याचारी चिन्हित करते हुए कई उदाहरण प्रस्तुत किए और इनके विकल्प के रूप में कम्पनी प्रशासन का प्रस्तुतीकरण किया। ऐसा करके कम्पनी के अधिकारियों ने यह साबित किया कि वे इंग्लैण्ड के लोकतांत्रिक शासन के मूल्यों को समझते हुए जनता के हित में शासन कर रहे हैं। इंग्लैण्ड एक प्रजातन्त्र देश रहा है जहाँ संसदीय शासन की काफी पुरानी परम्पराएं रही हैं। वहाँ का लोकतन्त्र अत्यन्त जागरूक है इसलिए कम्पनी जो इस प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के वातावरण में रही है उसके अधिकारी रियासतों के राजाओं की तुलना में जनहितैषी नियमों का पालन करते हुए जनता के हित में शासन करेंगे। पिण्डारियों का दमन, बुन्देलखण्ड में ठगों का उन्मूलन तथा स्थायी शान्ति व्यवस्था स्थापित कर कम्पनी के प्रशासकों ने जनता के समक्ष बखूबी रखा। यह एक ऐसी मिली–जुली व छद्म नीति थी जिसका सीधा मन्तव्य यह था कि राजाओं के कुशासन को बताकर उनके राज्य को कम्पनी में विलय कर लिया जाए। यह विलय कम्पनी के हित में न होकर जनता के हित में अधिक है।

इस प्रकार तुलनात्मक शासन पद्धति का प्रस्तुतिकरण राजाओं को बदनाम करने की दृष्टि से ब्रिटिश शासन को मजबूत आधार देने के लिए संचालित की गयी फलतः 1837 में अजयगढ़ के राजा बख्तसिंह की मृत्यु के बाद उनके नाबालिक पुत्र माधवसिंह की ओर से कम्पनी सरकार ने शासन संचालित किया था।[15] इस प्रकार 1838 में झाँसी के रघुनाथ राव निवालकर के मृत्यु के बाद झाँसी का प्रशासन कम्पनी सरकार ने अपनी प्रबन्ध समिति द्वारा संचालित कराया था। यह संचालन इसलिए कराया गया ताकि तुलनात्मक पद्धति द्वारा बुन्देलखण्ड के राजाओं का

[15] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 262

अकर्मण्यता प्रमाणित हो सके। कम्पनी ने अपनी प्रबन्ध समिति द्वारा संचालित शासन में झाँसी राज्य में पंचशाला भूमि प्रबन्ध, कर्मचारी पेन्शन योजना लागू करते हुए अपराधियों का दमन किया। इस उदाहरण से बुन्देलखण्ड की जनता प्रभावित होकर राजाओं को उदासीन मानने लगी और अंग्रेजी प्रशासन को अच्छा समझा जाने लगा। निःसन्देह ब्रिटिश शासन को ठोस और मजबूत आधार देने के लिए तुलनात्मक शासन पद्धति द्वारा कम्पनी अधिकारियों ने अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने की कोशिश की।

अधिग्रहण के पूर्व की राजस्व दरों में कटौती कर जनता की सद्भावना प्राप्त करने का प्रयास :-

बुन्देलखण्ड अधिग्रहण का जो कार्य अंग्रेजी अधिकारियों द्वारा बेसिन तथा पूना की सन्धियों के बाद किया जा रहा था वह 1805 में पूरा हुआ।[16] इसी वर्ष कैप्टन बेली ने अपनी रिपोर्ट उच्च अधिकारियों को प्रस्तुत करते हुए ब्रिटिश शासन के अधीन आए हुए बुन्देलखण्ड के जिलों की सूची संलग्न की। इसमें हिम्मतबहादुर को दी गई जागीर का उल्लेख नही किया गया। बेली ने जिन जिलों की सूची प्रस्तुत की थी उसके राजस्व की धनराशि भी अलीबहादुर के समय की तुलना करते हुए प्रस्तुत किया था। 1803–04 में राजस्व की जो धनराशि निर्धारित की गयी वह अलीबहादुर द्वारा निर्धारित दरों पर ही निश्चित किया गया था।[17] इनका विवरण

[16] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 39
[17] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 39

निम्न लिखित चार्ट से स्पष्ट हो जाएगा। इन क्षेत्रों का राजस्व निर्धारण अमीन द्वारा किया गया था जिसका विवरण निम्नवत् है।[18]

केन नदी के पूर्वी क्षेत्र :–

जिले का नाम	अमील का नाम	अंग्रेजी शासन में सम्मिलित किए जाने की तिथि	1802–03 का राजस्व (1210 फसली)	1803–04 का राजस्व (1211 फसली)
बाँदा	साधु सिंह एवं खेत सिंह	180–09–1803	रू0 386675	रू0 387112/–
औगासी	उम्मेद राय	13–09–1803	रू0 203130	रू0 189783/–
कोरी	जवाहर सिंह	6–02–1804	रू0 57775	रू0 47300/–
परसेंटा	जवाहर सिंह	6–02–1804	रू0 44064	रू0 40053/–
			रू0 691644	रू0 664248/–

केन नदी के पश्चिमी क्षेत्र :–

जिले का नाम	अमील का नाम	अंग्रेजी शासन में सम्मिलित किए जाने की तिथि	1802–03 का राजस्व (1210 फसली)	1803–04 का राजस्व (1211 फसली)
कालपी	मीर आबिद अली,	8–12–1803	रू0 197733	रू0 135758/–
कोटरा	हरीमन पण्डित	16–12–1803	रू0 56531	रू0 45983/–
सैयदनगर	मीरइकराम अली	16–12–1803	रू0 14508	रू0 12566/–
कोंच	सैफुद्दीन खान	28–12–1803	रू0 204748	रू0 204748/–
राठ	मोहम्मद जामन खान	16–12–1803	रू0 225222	रू0 225222/–
जलालपुर	मनीलाल	29–12–1803	रू0 222505	रू0 226965/–
खारका	मोहम्मद यूसुफ	16–1–1804	रू0 73921	रू0 73921/–
पनवारी	मीरजा इनायत अली	07–2–1804	रू0 202941	रू0 202941/–
सूपा	मीरजा इनायत अली	18–5–1804	रू0 18080	रू0 18080/–
रायपुर के ग्यारह गाँव जो जमुना के किनारे स्थित है।	मीर अब्दाली	18–3–1804	रू0 11501	रू0 11501/–

केन के पश्चिमी तट पर स्थित क्षेत्रों का कुल राजस्व	–	1227690	1157686
केन के पूर्वी किनारे के क्षेत्रों का कुल राजस्व	–	691644	664248
कुल योग	–	रू0 1919334	रू0 1821934

[18] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 40

उपरोक्त चार्ट से यह स्पष्ट होता प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों का अधिग्रहण करने के पश्चात् कम्पनी सरकार ने राजस्व की वह धनराशि जो राजाओं–महाराजाओं के अधीन वसूल की जाती थी वह अंग्रेजी कम्पनी द्वारा अधिग्रहण के पश्चात कम कर दी गयी। केन नदी के पूर्वी क्षेत्रों का राजस्व नवाब के समय रु0 691644 था जिसे इन क्षेत्रों के अधिग्रहण के तुरन्त बाद 1803–04 में अंग्रेजी कम्पनी ने घटाकर रु0 664248 कर दिया। यही स्थिति केन नदी के पश्चिमी तट वाले क्षेत्रों के राजस्व की थी। उदाहरण के लिए केन के पश्चिमी क्षेत्रों का राजस्व अधिग्रहण से पूर्व 1802–03 ई0 में रु0 1227690.00 था। जिसे 1803–04 में कम्पनी द्वारा नियन्त्रण हाथ में लेने के बाद रु0 1157686.00* कर दिया गया।

वास्तव मे राजस्व में की गयी कटौती के पीछे कम्पनी सरकार की बुन्देलखण्ड के स्थानीय निवासियों तथा जमींदारों को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से की गयी थी। कम्पनी सरकार यह जानती थी कि राजस्व की कटौती से यह अनुभूति होगी कि कम्पनी सरकार का शासन देशी रियासतों के शासन से अच्छा है। इसके पूर्व भी हम देख चुके है कि इस क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने, पिण्डारियों, ठगों आदि का दमन करने के पीछे सरकार ज़नता को यह बताना चाहती थी कि स्थानीय लोगों की सुरक्षा की चिन्ता देशी रियासतों के राजाओं–महाराजाओं से कहीं अधिक है। कम्पनी सरकार ने राजाओं तथा महाराजाओं को भी न्यायपूर्ण तरीके से शासन करने के लिए इन पर समय–समय

---

*एटकिन्सन ने अपने बुन्देलखण्ड गजेटियर पृष्ठ 40 पर जो चार्ट अंकित किया है उसमें 1211 फसली अर्थात 1803–04 वर्ष की केन नदी के पश्चिमी क्षेत्रों का राजस्व 115762.00 दिया है वास्तव में यह संख्या गलत है जो कि 1157686.00 रु0 होना चाहिए।

पर अंकुश लगाए थे। ऐसे मराठी राजे जो पिण्डारियों के प्रति हमदर्दी रखते थे उन्हें भी कम्पनी सरकार ने दबाने का कार्य कर जनता की सहनुभूति प्राप्त की। इस प्रकार तुलनात्मक शासन का जो नमूना कम्पनी सरकार ने प्रस्तुत किया उसके पीछे जनता की सहानुभूति प्राप्त करना मुख्यउद्देश्य था।

उपर्युक्त चार्ट से केन नदी के पश्चिमी क्षेत्रों का आंखो से देखने पर यह प्रतीत होता है कि कालपी का राजस्व 1803 में ब्रिटिश अधिग्रहण के पहले रु0 197733 था जिसे घटाकर रु0 135758 कर दिया गया अर्थात् लगभग रु0 62000 की रियायत ब्रिटिश सरकार ने 1803–04 में इन क्षेत्रों के अधिग्रहण के समय प्रदान किया। ठीक इसी तरह कोटरा में भी लगभग रु0 21000 की रियायत दी गयी। सैयद नगर मे यह रियायत लगभग रु0 2000 की गयी। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कालपी का क्षेत्र जिनसे कोटरा और सैयदनगर के क्षेत्र भी लगभग जुड़े हुए है, यह बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार है। अतः कम्पनी सरकार इन क्षेत्रों के सामरिक महत्व को समझते हुए यहाँ के लोगों को रियायते देकर बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक चरण में सन्तुष्ट रखना चाहती थी ताकि जब तक अंग्रेजी शासन को सुदृढ़ आधार न मिल जाए तब तक उसे किसी भी प्रकार का खतरा न पहुँच सके। इस प्रकार संतुष्टिकरण करते हुए ब्रिटिश सरकार ने बुन्देलखण्ड में अपना अधिपत्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

बुन्देलखण्ड में सैनिक छावनियों की स्थापना :–

अब आवश्यकता इस बात की थी कि अधिग्रहीत क्षेत्रों को स्थायी रूप से सुरक्षा प्रदान की जाए और मराठे बुन्देले तथा अन्य ऐसे तत्व जो उस समय परिस्थिति वश शान्त हो गए था वे भविष्य में ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध विद्रोह आदि

न कर सके इसलिए यह आवश्यक था कि बुन्देलखण्ड में सैनिक छावनियों की स्थापना कर वहाँ पर्याप्त मात्रा मे सैनिक नियुक्त किए जाए। अपनी भौगोलिक केन्द्रीय स्थिति तथा सामरिक महत्व के कारण भी इस क्षेत्र में सैनिक छावनियों की स्थापना कर ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने तथा उसे अन्य क्षेत्रों में विस्तार के उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती थी। बुन्देलखण्ड का पहाड़ी, जंगली तथा ऊबड़–खाबड़ क्षेत्र सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिए उपयुक्त था। अतः कम्पनी को प्रशिक्षण देने के लिए उपयुक्त था। अतः कम्पनी सरकार ने यह उचित समझा कि इस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में सैनिक उपलब्ध रहें जो आवश्यकता पड़ने पर कम्पनी सरकार के हितों की रक्षा करने के लिए तत्पर रहें। औपनिवेशिक शासन को बुन्देलखण्ड के लोगों को स्वतन्त्राप्रिय स्वभाव तथा उनके पूर्व गौरवमयी इतिहास की अच्छी जानकारी थी और ये शासक अन्दर ही अन्दर भयभीत थे कि अवसर पाकर कहीं ब्रिटिश आतंक के अभाव में यहाँ के लोग अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश शासन को झकझोर न दे इसलिए बुन्देलखण्ड में कम्पनी सरकार ने सैनिक छावनियों की स्थापना की।

यहाँ यह भी उल्लेख कर देना उचित है कि समय–समय पर डकैत तथा अराजक तत्व अपनी ताकत के बल पर किसानों तथा जमींदारों को लूटते थे और जनता से वसूल किया जाने वाला राजस्व स्वयं ले लिया करते थे इससे कम्पनी सरकार को विशेष चिन्ता थी। दिसम्बर 1805 में बुन्देलखण्ड के कलेक्टर[19] ने यह लिखा था कि "**पिछले वर्ष के अन्त में राजाराम तथा पारसराम जैसे डकैतों तथा उनके वंशजों ने कम्पनी सरकार के अधिग्रहीत क्षेत्रों पर अपना अधिपत्य स्थापित कर**

[19] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 42

लिया है और इन क्षेत्रों से बलपूर्वक राजस्व की वसूली कर रहे हैं। पनवाड़ी, मटौंध और सूपा के आसपास के जंगल तथा ऊबड़–खाबड़ क्षेत्रों में इन डकैतों ने शरण ले रखी है। कृषकों द्वारा राजस्व भुगतान अस्वीकार करने पर यह डकैत उनके खेतों तथा गाँवों में आग लगा देते हैं।'' उल्लेखनीय यह भी है कि राजस्व वसूल करते समय भू–स्वामियों को यह लोग राजस्व की रसीदें भी निर्गत करते हैं।[20] इन डकैतों के आतंक को समाप्त करने के लिए पर्याप्त सैनिकों की आवश्यकता भी जो स्थायी रूप से इस क्षेत्र में बने रहे अन्यथा कम्पनी सरकार का अस्तित्व खतरे मे पड़ सकता है। इसलिए कैथा (हमीरपुर), सूपा, कालपी, तरौंहा, करताल, कोंच, और बाँदा में अंग्रेजी सैनिक छावनियों की स्थापना कर दी गयी। कुछ समय पश्चात् कोंच और तरौंहा से छावनियाँ हटा दी गयी। इसका कारण यह था कि इस समय तक कम्पनी का बुन्देलखण्ड में शासन टिकाऊ बन चुका था और अब उसके स्थायित्व का खतरा नही था इसलिए इन छावनियों में कटौती की गयी।

यहाँ कम्पनी सरकार की इस कूटनीति पर प्रकाश डालना उचित होगा कि बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता के अधिग्रहण के समय कम्पनी सरकार के अधिकारियों ने डकैतों तथा अराजक तत्वों को सन्तुष्ट करने का पूरा–पूरा प्रयास किया। पारसराम डकैत जो पनवाड़ी तथा आस–पास के क्षेत्रों में आंतक फैलाए था और कम्पनी सरकार के क्षेत्रों से राजस्व वसूल करता था उससे निपटने के लिए उसे सन्तुष्ट करने का निश्चय किया गया। फलतः पारसराम को राजस्वमुक्त भूमि प्रदान की गयी यह राजस्व मुक्त भूमि खड्डी और जयब्रम्ह क्षेत्रों में दी गयी जिसका

[20] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 42

राजस्व 15000 प्रतिवर्ष था यह क्षेत्र मटौंध परगना में स्थित थे।[21] इसी प्रकार दूसरा डकैत राजाराम को भी इसी प्रकार की राजस्वमुक्त जागीर गौरिहार में दी गयी। ठीक इसी तरह एक अन्य डकैत गोपाल सिंह को गरौली में राजस्व मुक्त जागीर प्रदान की गयी। निःसन्देह बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता की स्थापना के लिए कम्पनी सरकार ने निकृष्ट प्रकार की कूटनीति का प्रयोग करने में हिचक नही दिखाई। डकैत और अराजक तत्वों को सन्तुष्टि प्रदान करना किसी भी प्रकार से उचित कार्य की परिधि में नही आता है। औपनिवेशिक शासक को किसी न किसी प्रकार इस क्षेत्र पर अधिकार स्थापित करना ही था चाहे इसके लिए कोई भी तरीका अपनाना पड़े। इस प्रकार सैनिक छावनियों की स्थापना तथा सन्तुष्टिकरण की नीति, दोनो रास्तों द्वारा बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन को स्थिर बनाने का प्रयास किया गया।

नौगाँव सैनिक छावनी के रूप में स्थापित :–

बुन्देलखण्ड में कम्पनी राज्य का शासन स्थापित हो जाने के कारण प्रशासनिक नियन्त्रण एवं आराजक तत्वों के दमन हेतु त्वरित कार्यवाही की आवश्यकता थी। कैथा (हमीरपुर) में जो छावनी पहले स्थापित की गयी थी उसे अनुकूल न मानते हुए कम्पनी सरकार ने इस छावनी को नौगाँव में स्थानान्तरित कर दिया। नौगाँव बुन्देलखण्ड के मध्य में स्थित होने के कारण सेनाओं को आसानी से किसी भी दिशा में भेजा जा सकता था इसके साथ ही नौगाँव में ही पॉलिटिकल एजेण्ट का कार्यालय स्थापित कर दिया गया था। जिससे सभी स्थानीय राज्यों एवं अंग्रेजी क्षेत्रों पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जा सके। इसके अलावा नौगाँव को सैनिक छावनी के रूप में चयन करने के पीछे कुछ और भी कारण थे –

---

[21] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 42

1. यह बुन्देलखण्ड के मध्य में स्थित है अतः यहाँ सैनिक छावनी होने से डकैत एवं अराजक तत्व भयभीत होने लगे।
2. यहाँ से कम्पनी की सेना कम समय में सभी क्षेत्रों मे भेजी जा सकती थी।
3. नौगाँव छावनी सागर, बाँदा, झाँसी और जालौन की बुन्देलखण्ड लीजियन छावनियों से शीघ्र सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हो गयी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नौगाँव छावनी की स्थापना के बहुत पहले ही बुन्देलखण्ड में अंगेजी प्रभुत्व स्थापित करने तथा यहाँ के राजाओं–महाराजाओं को नियन्त्रित करने के लिए बुन्देलखण्ड लीजियन सेना का गठन किया गया, जिसके लिए भूमि और सुविधाएं तथा खर्च का कुछ भाग यहाँ के रियासतों को देना था। जबकि यह सेना अंग्रेजी नियन्त्रण में रखी गयी थी। जैसे ही नौगाँव में सैनिक छावनी स्थापित हुयी वैसे ही बुन्देलखण्ड लीजियन को भी इसी से जोड़ दिया गया। लार्ड ऐलन बरों ने इन दोनों छावनियों में सम्बन्ध स्थापित करने में विशेष बल दिया था।[22]
4. नौगाँव में स्थित छावनी से पॉलिटकल एजेण्ट सरलतापूर्वक कम समय में बुन्देलखण्ड के राज्यों का अचानक निरीक्षण कर सकता था।
5. नौगाँव की जलवायु कैथा से उत्तम एवं स्वास्थ्यवर्धक थी जिससे सैनिकों की कार्यक्षमता मे वृद्धि होने की सम्भावना थी।[23]

इस प्रकार सैनिक प्रभाव द्वारा कम्पनी सरकार ने बुन्देलखण्ड में अपने क्षेत्रों को संगठित करते हुए उसे विस्तारित किया। पहले मराठा राजाओं को विभेदक

[22] Mintue by Governer General Lord Elien borough, 10 August 1843
[23] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 282

नीति द्वारा बुन्देला राजाओं से पृथक कर दिया। इसके पश्चात् बुन्देला राज्यों को अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा का शिकार बनाया और उन पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए चिरगाँव और जैतपुर के राजाओं को सत्ता से अलग भी कर दिया गया था।[24] इस प्रकार 1843 में नौगाँव में सैनिक छावनी स्थापित कर कम्पनी ने बुन्देलखण्ड में अपने प्रशासन को मजबूत आधार दिया।

सैनिक छावनियों की स्थापना से बुन्देलखण्ड के लोगों में उत्पन्न प्रतिक्रियाः—

सन् 1843 ई0 में नौगाँव में स्थापित सैनिक छावनी जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कैथा (हमीरपुर) से स्थानान्तरित कर लायी गयी थीं यह बंगाल रेजीमेण्ट का ही एक भाग भी उसी की घुड़सवार सेना का एक भाग नौगाँव छावनी के साथ रख दिया गया था[25] इसके अलावा सागर में 31 और 42 नम्बर की देशी पलटन और 3 नम्बर की घुड़सवार सेना के एक हिस्से को ही नौगाँव में तैनात किया गया था। इसके अतिरिक्त जबलपुर में 52 नम्बर को देशी पलटन और दमोह में सागर की 42 नम्बर की दो टुकड़ियाँ भी रखी गयी थी। बाँदा में कानपुर सैनिक छावनी की दो टुकड़ियाँ स्थापित की गयी थी जबकि कालपी में बुन्देलखण्ड लीजियन को 1846 में समाप्त कर उसे नियमित अंग्रेजी देशी सेना के रूप प्रतिस्थापित कर दिया गया था।[26] हमीरपुर में 53 नम्बर की देशी पलटन रखी गयी थी बुन्देलखण्ड के अधिकांश क्षेत्रों में जो सैनिक छावनी स्थापित हुई उसमें बंगाल नेटिव आर्मी के ही सैनिक तैनात थे।[27]

---

[24] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 282
[25] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 288
[26] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 288
[27] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 288

अंग्रेजी कम्पनी ने बुन्देलखण्ड में छावनियों की स्थापना के समय इस बात को ध्यान रखा था कि प्रत्येक दशा में इन सैनिकों के माध्यम से ब्रिटिश कम्पनी को सुरक्षित रखते हुए मजबूती प्रदान की जाए। यदि इन कम्पनियों का हम विश्लेषण करें तो स्पष्ट होगा कि उत्तरी–पूर्वी हिस्से मे चार छावनियाँ दतिया–पश्चिमी भाग में तीन छावनियाँ तथा बुन्देलखण्ड के मध्य नौगाँव में एक छावनी स्थापित कर अंग्रेजों ने अपनी स्थिति को शसक्त बना लिया था। इस तरह कम्पनी किसी भी अराजक स्थिति सें निपटने में पूर्ण सक्षम थी लेकिन इन छावनियों की स्थापना से इस क्षेत्र में जो प्रतिक्रिया हुई उसकी अवहेलना करना कम्पनी सरकार के लिए हितकर नही थी। कम्पनी सरकार की सैनिक नीति ऐसी थी कि इन सैनिकों को अपने घरों से दूर रहना पड़ रहा था जबकि उनके वेतन और सुविधाओं में वृद्धि नही की गयी थी। भेदभाव पूर्ण नीति के कारण देशी सैनिकों की तुलना में अंग्रेज सैनिकों को कई गुना अधिक वेतन और भारी सुख–सुविधाएं प्रदान की जाती थी। इस तरह इस भेदभाव से देशी सैनिक असन्तुष्ट थे।

जहाँ एक ओर देशी सैनिक कम्पनी सरकार से असन्तुष्ट हो रहे थे वहीं दूसरी ओर बुन्देलखण्ड के लोग इन छावनियों में तैनात सैनिकों से असन्तुष्ट हो रहे थे। सिपाहियों का व्यवहार प्रायः निष्ठुर और दमनात्मक प्रवृत्ति का होता था जो स्थानीय लोगों को नाराज करता था। छावनियों में सिपाही अधिकांश मांसाहारी थे जिसे बुन्देलखण्ड की धर्म–भीरू और अधिकांश शाकाहारी जनता पसन्द नही करती थी। प्रायः यह सैनिक निरंकुश रवैया अपनाते हुए अनैतिक कार्य करते थे जिसके

कारण स्थानीय लोग उनसे भयभीत रहते हुए उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे।[28] इस प्रकार बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी छावनियों की स्थापना से जनमानस में जो प्रतिक्रिया हुई वह ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष को बढ़ाने में सफल रही।

कम्पनी प्रशासन द्वारा स्थानीय लोगों से सम्बन्ध :-

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों के आगमन तथा सैनिक छावनियों की स्थापना और प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्तियों से ऐसे वातावरण का निर्माण हुआ जिससे सहमिलन एवं सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन दिखाई पड़ा। सागर परिक्षेत्र, झाँसी, महोबा और जैतपुर विशेष रूप से ऐसे क्षेत्र थे जहाँ कम्पनी सरकार और उसके कर्मचारियों के सम्बन्धों की छाप बुन्देलखण्ड के समाज और प्रशासन पर पड़ी।[29] अंग्रेज अधिकारियों और कर्मचारियों तथा कम्पनी प्रशासन में नियुक्त कर्मचारियों को अपने बच्चों की आधुनिक शिक्षा के लिए नवीन अंग्रेजी विद्यालय खोलने की आवश्यकता पड़ी। इन अंग्रेजी स्कूलों के प्रभाव से बुन्देलखण्ड का रूढ़िवादी अज्ञान नष्ट होने लगा और नई पाश्चात्य विचारधारा लोगों को प्रभावित करने लगी। इस परिवर्तन को पुरातनपंथी सामन्ती विचारधारा में पले लोगों ने इसे अपनी रूढ़िवादी व्यवस्था पर आघात समझा। यह कहना अनुचित नही होगा कि इस प्राचीन और नवीन व्यवस्था के परस्पर संघर्ष की अभिव्यक्ति बुन्देला विपलव के रूप में हुई।[30]

कम्पनी सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था सैनिक आवागमन और रियासतों में पॉलिटिकल ऐजेण्टस के भ्रमण कार्यक्रमों से बुन्देलखण्ड मे नई धारणाओं का उदय

---

[28] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 289
[29] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 289
[30] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 289

हुआ। अंग्रेजो के साथ राजाओं, मालगुजारों एवं जागीरदारों के सम्बन्ध स्थापित होने से उन्होने भी पाश्चात्य भाषा, पहनावा, भोजन व्यवस्था, रहन–सहन के तरीके आवास व्यवस्था और कार्यालयीन पद्धति का अनुकरण किया जिससे रूढ़िगत परम्परा यथा स्थितवादिता और अन्धविश्वास के विनाश का प्रारम्भ हो चला था। अंग्रेजों की व्यवस्था और कार्य पद्धति देशी राजाओं ने भी अपनाई और राज्यों में लागू की, उससे प्रजा को लाभ हुआ। उन्ही की प्रेरणा के द्वारा देशी राज्यों में भी शिक्षा का प्रारम्भ इसी समय से हुआ।

अंग्रेजी सैनिक छावनियाँ निरन्तर बढ़ती रही। नौगाँव स्थित पॉलिटिकल एजेण्ट द्वारा समय–समय पर प्रशासनिक भ्रमण से रियासती राजाओं के अत्याचारों और स्वेच्छाचारियों में कुछ कमी अवश्य आयी। इसी तरह कम्पनी सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था, शैक्षणिक व्यवस्था, सैनिक विकेन्द्रीकरण की नीति से क्रमशः बुन्देलखण्ड का समाज लाभान्वित होने लगा।[31] यह सामन्ती प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों पर करारी चोट थी। इस प्रकार आन्तरिक सुरक्षा और सामाजिक सुधारों के माध्यम से कम्पनी शासकों ने स्वयं को जनहित में कल्याणकारी निरूपित किया जिससे सहमिलन के साथ सामाजिक सम्बन्ध पुष्ट हुए।

बुन्देलखण्ड में सत्ता अधिग्रहण के पश्चात् किए गए प्रारम्भिक राजस्व प्रबन्ध :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रमुख उद्देश्य हिन्दुस्तान से अधिक से अधिक धन कमाकर उसे अपने देश इंग्लैण्ड भेजना था इसी उद्देश्य को केन्द्र में रखते हुए औपनिवेशिक सत्ता ने अपनी नीतियों का गठन और विस्तार किया। बुन्देलखण्ड मूलतः कृषि प्रधान था जहाँ 90 फीसदी से अधिक जनता अपनी जीविका के लिए

[31] Report from select Committee, 16 August 1832, Appendix –V, P-241.

कृषि पर आधारित थी। अतः यह स्वाभाविक था कि विदेशी शासन यहाँ के कृषकों से अधिक से अधिक राजव वसूल कर उसे अपने देश भेजें। बेसिन की सन्धि (1802) के पश्चात् कम्पनी सरकार ने राजस्व वसूली के जो तरीके अपनाए उनका उद्देश्य पूर्व निर्धारित दरों के ही आधार पर राजस्व की वसूली करना था इतना ही नही बल्कि उन दरों में प्रारम्भिक वर्षों में कुछ कमी भी की गई इसका कारण यह नही था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी हमारे शुभचिन्तक और कल्याणकारी भावना से चिन्तित थे बल्कि वह तो बड़ी चालाकी से इस नए भू–भाग का अधिग्रहण के पश्चात् धीरे–धीरे अपने प्रशासन को मजबूत बना रहे थे। उन्हें ज्ञात था कि कम्पनी सरकार ने अभी कुछ दिनों पूर्व मराठा ठिकानों पर अधिपत्य स्थापित किया है। इसके फलस्वरूप सत्ता से वंचित राजा और जमींदार विदेशी शासन से रुष्ट थे। पिण्डारी तथा अराजक तत्वों ने कुछ समय के लिए कम्पनी सरकार द्वारा दमन के कारण चुप हो गए थे किन्तु वे भी अपने अराजक स्वभाव के कारण नई सत्ता के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए उचित अवसर की तलाश में रहेगें। निःसन्देह पारसराम जैसे डकैतों और लुटेरों को सूपा और मटौंध के पास जागीर देकर सन्तुष्ट कर दिया गया था किन्तु कम्पनी के अधिकारी इस क्षेत्र के लोगों के स्वभाव के प्रति आशंकित थे। उपरोक्त वातावरण में अंग्रेजी शासन के पूर्व में निर्धारित राजस्व दरों को यथावत बनाए रखने अथवा उसमें कुछ कटौती का निर्णय लिया गया, ताकि बुन्देलखण्ड के लोगों को रियायतें देकर कम्पनी सरकार के प्रति वफादार बनाया जा सके। इस तरह राजस्व की यह कटौती कम्पनी सरकार की कूटनीति का अंग थी। जिसका उद्देश्य इस क्षेत्र में अंग्रेजी प्रशासन को सुदृढ़ करना था।

1802–03 में बेसिन की सन्धि के पश्चात् अधिग्रहीत क्षेत्रों का राजस्व प्रबन्ध और 1803–04 की राजस्व दरों की तुलना करते हुए पूर्व में यह देखा जा चुका है कि कम्पनी सरकार ने सत्ता हाथ में लेते ही राजस्व में कटौती का ढोंग रचा था। लेकिन वास्तविक इरादा तो अधिक से अधिक राजस्व वसूल करना ही था। तीसरा राजस्व प्रबन्ध 1809–1810 और 1811–1812 तीन वर्षों के लिए किया गया था। फसली (1217–1219) यह बन्दोबस्त वान्चूप जो आर्स्किन के बाद कलेक्टर नियुक्त होकर दिसम्बर 1808 में आए थे, उनके द्वारा किया गया।[32] इस समय तक बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति व्यवस्थित हो चुकी थी और कम्पनी सरकार अपना प्रशासन प्रभावपूर्ण तरीके से लागू कर चुकी थी। पूर्वनिहित स्वार्थ की पूर्ति का समय आ गया था और वान्चूप ने राजस्व की दरों में वृद्धि करके अपने इरादे स्पष्ट कर दिए थे।[33] राजस्व की दरो में यह वृद्धि अप्रत्याशित रूप में पश्चिमी परगनों के लिए रु0 40 प्रतिशत की गयी। इस वृद्धि के समर्थन में तर्क देते हुए वान्चूप ने कहा था कि "**पूर्व के वर्षों में इन परगनों में कृषि तबाह हो चुकी थी। इसलिए प्रारम्भिक वर्षों में इनके लिए राजस्व दरों की कमी करना उचित था। अर्थात् जिस समय वान्चूप ने (1809–10) राजस्व की दरों के निर्धारण का कार्य प्रारम्भ किया तब इन परगनों की कृषि व्यवस्था अच्छी हो चुकी थी और खेती में पर्याप्त वृद्धि दर्ज की गयी थीं।**[34] **पूर्वी परगनों में जो राजस्व की दरें निर्धारित की गयी थी। वे भी उचित थी और जिससे किसान अनुकूल मौसम में आसानी से भुगतान कर रहे थे।**

---

[32] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 49
[33] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 49
[34] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 50

नई दरों के राजस्व के निर्धारण के पश्चात् उनकी स्वीकृति बोर्ड ऑफ रेवेन्यू से प्राप्त की गयी।''

तृतीय राजस्व प्रबन्ध जो वान्चूप ने तीन वर्षों के लिए किया था उसे कुछ संशोधनों के साथ आगामी तीन वर्षों के लिए अर्थात् 1815–16 तक विस्तारित किया गया था। वान्चूप के बाद उसका उत्तराधिकारी मरजोरी बैंकर्स हुआ जिसने मई 1811 में कार्यभार ग्रहण किया किन्तु एक ही वर्ष पश्चात् उसके स्थान पर मूरे ने अप्रैल 1812 में इस दायित्व को ग्रहण किया, मूरे भी अधिक दिनों तक इस दायित्व का निर्वहन नही कर सका।[35] अतः उसी वर्ष अक्टूबर में **स्कार्टवारेन** ने राजस्व प्रबन्ध का चार्ज अपने हाथ में लिया। वान्चूप के लगभग छः वर्षों के कार्यकाल में पूर्वी परगनों की स्थिति विकसित थी जहाँ कृषि में वृद्धि अंकित की गयी और मौसम ने भी अनुकूल रहते हुए किसानों का साथ दिया, लेकिन अपवाद स्वरूप पनवाड़ी परगनें की स्थिति खराब होती गयी, इसका कारण राजस्व दरों के निर्धारण में असमानता थी। इन असमान दरों के कारण किसान अधिक राजस्व होने के कारण नष्ट होते जा रहे थे और प्रतिवर्ष कृषकों की स्थिति में गिरावट आती जा रही थी। यह गिरावट इस सीमा तक भी थी कि लोगों के पास राजस्व भुगतान करने का पैसा नही था और 1814–15 में लोग भूख के मारे मरने लगे। निःसन्देह पनवाड़ी परगनें की स्थिति राजस्व की कठोर दरों के कारण खराब हुई जहाँ तक छीबों, भसिण्डा और कल्याणगढ़ की स्थिति थी इन परगनों में भी आर्थिक स्थिति अत्यन्त

---

[35] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 50

खराब होती गयी फलतः किसानों को बाध्य होकर अपनी भूमि को बेचना पड़ा।[36] शेष परगनों मे स्थिति लगभग सामान्य बनी रही।

राजस्व का पाँचवां बन्दोबस्त **वारेन** ने किया और उसने भी राजस्व दरों में वृद्धि करने हुए कम्पनी सरकार को आर्थिक लाभ पहुँचाने का प्रयास किया। जनवरी 1818 में वारेन का स्थानान्तरण हुआ और उसके स्थान पर **लिटिल डेल** उत्तराधिकारी हुआ किन्तु कुछ ही महीनों में फोर्ड ने राजस्व प्रशासन अपने हाथ में ले लिया।

बुन्देलखण्ड का दो जिलों में विभाजन :

नवम्बर 1818 में कम्पनी सरकार ने पूरे बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों का दो भागों में विभाजित करने का निर्णय लिया और कुछ विचार–विमर्श के बाद जलालपुर या कालपी को उत्तरी हिस्से का मुख्यालय रखने का निर्णय लिया। इस सम्बन्ध में अंग्रेज अधिकारियों ने जलालपुर के स्थान पर कालपी को ही मुख्यालय के रूप में चुना और इसे उत्तरी बुन्देलखण्ड के जिले का नाम दिया,[37] जिसमें हमीरपुर और कालपी शामिल थे। दूसरे भाग को दक्षिणी बुन्देलखण्ड के जिले का रूप दिया गया जिसका मुख्यालय बाँदा बनाया गया। खानदेह का परगना जिसे 1817 में जालौन के राजा से ले लिया गया था उसे भी बाँदा जिले में शामिल कर लिया गया। दक्षिणी जिले के कलेक्टर के रूप में बाँदा में रीडे की नियुक्ति की गयी। जिसका उत्तराधिकारी 1822 में **विलकिन्सन** हुआ।[38]

1807–1822 तक बुन्देलखण्ड को कमिश्नर्स के पश्चिमी बोर्ड के अधीन रखा गया। 1822 में बुन्देलखण्ड का नियन्त्रण सेन्ट्रल बोर्ड के हाँथ में दे दिया गया जिसके

---

[36] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 50

[37] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 50

[38] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 51

क्षेत्राधिकार में बनारस तथा गोरखपुर के क्षेत्र शामिल थे और इस सेन्ट्रल बोर्ड का मुख्यालय पटना में स्थित था लेकिन कुछ दिनों पश्चात् इसे इलाहाबाद स्थानान्तरित कर दिया था।

सन् 1820–1824–25 तक राजस्व प्रबन्ध :

बुन्देलखण्ड का दो जिलों में विभाजन के पश्चात् कालपी जिले का राजस्व प्रबन्ध **वालपी** ने किया।[39] यह राजस्व व्यवस्था 1820–1824–25 तक की अवधि के लिए की गयी थी। वहीं दूसरे जिले का प्रबन्ध **रीडे** ने किया जिसे बाँदा जिले के नाम से पुकारते हैं इस राजस्व व्यवस्था के समय कालपी जो जिले का मुख्यालय था, उसके स्थान पर हमीरपुर को नया मुख्यालय बना दिया गया था जो क्रमशः हमीरपुर जिले के नाम से प्रसिद्ध हुआ इसके साथ ही कालपी के लिए एक डिप्टी कलेक्टर नियुक्त कर दिया गया। इस राजस्व प्रबन्ध के समय बोर्ड ऑफ रेवेन्यू ने यह आवश्यक समझा कि राजस्व का पिछड़ा बकाया जल्दी से जल्दी जमा कराया जाए। **वालपी** ने इस सम्बन्ध में अपना विचार रखते हुए कहा कि **''मेरे विचार से राजस्व दरों में कटौती की आवश्यकता नहीं है बल्कि यह उचित होगा कि कुछ परगनों में राजस्व में वृद्धि किया जाना चाहिए।''**

उपर्युक्त दोनों जिलों के राजस्व प्रबन्ध के पश्चात् 1825–26 से लेकर 1830 तक की अवधि के लिए राजस्व दरों के पुर्ननिरीक्षण एवं निर्धारण का कार्य प्रारम्भ हुआ जो पहले में राजस्व प्रबन्ध के त्रुटिपूर्ण सिद्धान्तों पर ही आधारित था और

[39] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 51

राजस्व दरों में पूर्व की भाँति ही वृद्धि जारी रखी गयी।[40] उल्लेखनीय है कि यह बन्दोबस्त 5 वर्ष के लिए हुआ था और इसकी अवधि समाप्त होते ही 1830–31 से 1834–35 की अवधि के लिए अगला राजस्व बन्दोबस्त किया गया जिसमें यह आवश्यक समझा गया कि पूर्व में जो राजस्व की ऊँची दरें निर्धारित की गयी थीं उनमें अब कटौती की जानी चाहिए। इस निर्णय के लागू करते समय भी कटौती का यह फारमूला सभी परगनों में समान रूप से लागू नही हुआ। बुन्देलखण्ड के जिलों की गिरती हुई कृषि व्यवस्था तथा लोगों की आर्थिक स्थिति में व्याप्त गिरावट से ब्रिटिश प्रशासन पर यह दबाव पड़ा कि अब समय आ गया है कि राजस्व की उचित दरों का निर्धारण किया जाए और उनमें कटौती की जाए। अतः 1833 का रेगुलेशन IX पास किया गया।

परवर्ती राजस्व प्रबन्ध :

सन् 1834–35 में पूर्व राजस्व प्रबन्ध की अवधि की समाप्ति के पश्चात् बुन्देलखण्ड की सीमाओं तथा क्षेत्रों में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए 1849 में जैतपुर रियासत ब्रिटिश शासन में सम्मिलित कर ली गयी। कम्पनी सरकार ने जैतपुर अधिग्रहण के पश्चात् 1853 में इसे हमीरपुर जिले में शामिल कर लिया।[41] जैतपुर अधिग्रहण के एक वर्ष पश्चात् 1850 में पारसराम की खड्डी नामक जागीर भी ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त कर ली गयी और इस जागीर को बाँदा जिले में मिला लिया गया।[42] ठीक इसी तरह 1858 में तरौहा के जागीरदार के विद्रोही कार्यकलापों के कारण तरौहा की जागीर भी जब्त कर ली गयी और इसे भी बाँदा जिले में मिला

---

[40] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 51

[41] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 51

[42] Achinintion, C.U., A Collection of Treaties Engagement and Sanads Vol-3, P-142

लिया गया।[43] उल्लेखनीय है कि जालौन के मराठा सूबेदार राव गोविन्द राव की मृत्यु के पश्चात् 1840 में इस रियासत को भी ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया गया। बुन्देलखण्ड में अपने क्षेत्रों के विस्तार क्रम में 1844 मे चन्देरी रियासत में ग्वालियर के सिंधिया के क्षेत्रों के अलावा माधवगढ़, इन्दूरिकि के परगने और दबोह का क्षेत्र भी कम्पनी के शासन के अधीन शामिल कर लिया गया।[44] विस्तार का यह क्रम यही समाप्त नही हुआ बल्कि डलहौजी की अपहरण नीति ने झाँसी रियासत के राजा गंगाधर राव की मृत्यु, नवम्बर 1853 के पश्चात् इस रियासत के क्षेत्रों को भी ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया गया।[45]

झाँसी सुप्रीटेंडेंसी का गठन :

कम्पनी के क्षेत्रों को विस्तारित करते हुए उपरोक्त अधिग्रहीत रियासतों तथा क्षेत्रों को प्रशासन की दृष्टि से एक इकाई के रूप में गठित किया जाना आवश्यक समझा गया ताकि इनका प्रशासन प्रभाव पूर्ण ढंग से क्रियान्वित हो सके। इसी उद्देश्य से झाँसी सुप्रीटेंडेंसी का गठन किया गया जिसका मुख्यालय झाँसी को बनाया गया और इनमें शामिल क्षेत्रों और परगनों की देखरेख कमिश्नर के हाँथों सौंप दिया गया। उन दिनों कमिश्नर का मुख्यालय सागर पर स्थित था अतः यह सभी क्षेत्र सागर कमिश्नर की देख–रेख के अन्तर्गत थे।

महोबा जो 1839 तक जालौन के अन्तर्गत था उसे इसी वर्ष हमीरपुर जिले में स्थानान्तरित कर दिया गया। 1853 के पश्चात् विद्रोह 1857 के प्रारम्भ होने तक बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में कोई परिवर्तन नही किया गया। किन्तु 1858 में शान्ति

[43] Achinintion, C.U., A Collection of Treaties Engagement and Sanads Vol-3, P-142
[44] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 52
[45] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 52

व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद प्रशासनिक परिवर्तन तथा सीमाओं का क्रम पुनः प्रारम्भ किया गया और हमीरपुर को झाँसी मण्डल में शामिल कर दिया गया और क्षेत्रों को मिलाकर 1858 में एक कमिश्नरी की स्थापना की गयी।[46] विद्रोह की समाप्ति के बाद विद्रोहियों तथा क्रान्तिकारियों को दण्डित करने के लिए कम्पनी सरकार ने मर्दन सिंह की जागीर वानपुर तथा उसके गाँव को वहाँ के राजा के विद्रोही हो जाने के कारण ललितपुर जिले में शामिल कर लिया गया। इसी तरह सागर के राजा ने भी 1857 के विद्रोह में अंग्रेजी शासन का डटकर विद्रोह किया था फलतः उसके द्वारा शासित क्षेत्र और जागीर मड़ोर, नारहट तथा अन्य क्षेत्रों को भी ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। 1861 में ब्रिटिश क्षेत्रों तथा सिंधिया शासित आस–पास के क्षेत्रों में कुछ गाँवों की अदला–बदली हुई। फलतः इसी वर्ष पहुँज नदी के पश्चिमी किनारे स्थित गाँव को ग्वालियर के सिंधिया को सौंप दिया गया और इसके बदले पहुँज नदी की पूर्वी ओर स्थित गाँव को ब्रिटिश शासन के अधीन कर लिया गया। इनका पूरा प्रशासन अब अंग्रेजी शासन द्वारा किया जाने लगा। 1861 के बाद क्षेत्रों के परिवर्तन में कोई महत्वपूर्ण संशोधन नही हुआ। प्रशासनिक दृष्टि से 1863 में हमीरपुर को झाँसी डिवीजन से लेकर इलाहाबाद डिवीजन में शामिल कर दिया गया।

झाँसी डिवीजन का प्रशासन :

झाँसी डिवीजन के प्रशासन का गठन का प्रारम्भिक विवरण यह स्पष्ट करता है कि इसमें शामिल क्षेत्र 1853 तक सुप्रीटेंडेंट की देख–रेख में थे यह सुप्रीटेंडेंट

---

[46] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 52

गर्वनर जनरल के बुन्देलखण्ड स्थित एजेण्ट के अधीन होते थे।[47] 1852 में सागर और नर्मदा के क्षेत्रों को उत्तर–पश्चिम प्रान्त के शासन में स्थानान्तरित कर दिया गया। 1853–1858 के बीच इनके प्रशासन के लिए कुछ निश्चित व्यवस्था प्रारम्भ की गई जिसके अन्तर्गत इस डिवीजन के अधीन जिलों का प्रशासन डिप्टी सुप्रीटेंडेंट को दिया गया जिन्हें कलेक्टर की शक्तियाँ प्रदान की गयी थी और वे सुप्रीटेंडेंट के अधिनस्थ होते थे। सुप्रीटेंडेंट को कमिश्नर की शक्तियाँ प्राप्त थी।[48] प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से इन डिप्टी सुप्रीटेंडेंट को छोटे–मोटे मुकदमों के निर्णय करने का अधिकार था और इस मामले में उसका निर्णय अन्तिम होता था किन्तु बड़े स्तर के मुकदमों के मामलों में डिप्टी सुप्रीटेंडेंट के दिए गए निर्णयों की अपील सागर डिवीजन के कमीश्नर के न्यायालय में की जा सकती थी। यहाँ से निर्णित होने के पश्चात् पुनः अपील राजस्व बोर्ड में की जा सकती थी।[49] झाँसी के सुप्रीटेंडेंट को सिविल जज के भी अधिकार प्राप्त थे किन्तु यह अधिकार शासन के और सेशन जज जो कि आगरा स्थित निजामत अदालत के अधीन झाँसी का सुप्रीटेंडेंट सिविल जज के शक्तियों का प्रयोग कर सकता था।[50] ललितपुर जो कि चन्देरी से पृथक करके अलग बनाया गया था उसका प्रशासन भी डिप्टी सुप्रीटेंडेंट के हाथ में था और उसे मुख्य सदर अमीन की शक्तियाँ प्राप्त थी। ललितपुर के सुप्रीटेंडेंट के द्वारा निर्णित मामलों की अपील झाँसी सुप्रीटेंडेंट के न्यायालय में की जा सकती थी। 1858 में इन सुप्रीटेंडेंटसीज को जिलों में विभाजित किया गया और इसी वर्ष झाँसी डिवीजन भी गठित किया गया। इसके साथ ही स्थानीय नियम और

[47] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 52
[48] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 53
[49] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 53
[50] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 53

प्रक्रिया समाप्त कर दी गयी 1862 में इस पूरी व्यवस्था को पुनः संशोधित किया गया और राजस्व सिविल तथा फौजदारी प्रशासन से सम्बन्धित मामलों के लिए नए नियम दिए गए। ये नियम उसी प्रकार के थे जिस प्रकार के नियम पंजाब तथा अवध मे प्रभावित थे।[51] 1868 के झाँसी कोर्स एक्ट नं0 18 द्वारा दीवानी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार परिभाषित किए गए और 1867 के एक्ट नं0 17 द्वारा झाँसी मण्डल के प्रत्येक जिले के डिप्टी कमिश्नर्स को यह शक्ति प्रदान की गयी कि वे अपने अधिनस्थ न्यायालयों में कार्यो का बँटवारा कर सके। इस प्रकार ब्रिटिश प्रशासन द्वारा निर्मित व्यवस्था आज भी कार्यरत है।

[51] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ 53

पॉलिटिकल एजेण्ट की नियुक्ति एवं ब्रिटिश राजस्व व्यवस्था

अध्याय 4

पॉलिटिकल एजेण्ट की नियुक्ति एवं ब्रिटिश राजस्व व्यवस्था

अंग्रेजी प्रभुसत्ता के प्रारम्भ से **कैप्टन बेली** को बुन्देलखण्ड में अधिग्रहीत क्षेत्रों का पॉलिटिकल एजेण्ट नियुक्त किया गया।[1] **बेली** ने कालपी से बाँदा का भू–भाग छीनकर ''**अपर प्राविन्सेज**'' नामक सर्वप्रथम अंग्रेजी क्षेत्र निर्मित कर लिया था। 1807 में **जॉन रिचर्डसन** और 1812 में **जॉन बाकू** इस क्षेत्र के राजनीतिक प्रतिनिधि नियुक्त हुये। उस समय बाँदा ही राजनीतिक प्रतिनिधि का मुख्यालय था। 1818–1819 में **थॉमस मैडवक** राजनीतिक प्रतिनिधि नियुक्त हुआ जिसने बुन्देलखण्ड को दो भागों में विभाजित किया था। 1820 में पुनः **रिचर्डसन**, **मैडवक** का उत्तराधिकारी बना। इसके बाद 1821 में मूड़ी और 1824 से 1830 तक **ओझली** बुन्देलखण्ड के राजनीतिक प्रतिनिधि रहे। इस समय हमीरपुर इनके कार्यालय का मुख्यालय था। 1832 में **बैगवी** ने पुनः बाँदा में यह कार्यालय स्थानान्तरित किया। 1835 में इस क्षेत्र का शासन उत्तर पश्चिमी प्रान्त के लेफ्टिनेंट गर्वनर को सौंपा गया जिसका मुख्य केन्द्र आगरा में था।

प्रशासनिक परिवर्तन के क्रम में 1835 में **विलियम बैंटिक** ने शान्ति बनाने हेतु पुलिस की व्यवस्था प्रारम्भ की और प्रत्येक जिले के लिए डिप्टी कमिश्नर नियुक्त किया जिसको कार्यपालकीय एवं न्यायिक शक्तियाँ प्रदान की गयी।[2] 1836 से 1842 तक बुन्देलखण्ड एजेन्सी के राजनीतिक प्रतिनिधि साइमन फ्रेजर और 1842 से

---

[1] बुन्देलखण्ड पॉलिटिकल एजेन्सी रिकार्ड्स की भूमिका (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली)

[2] Report – 16 August, 1832 Appendix – 2, Page – 104-112, (Court of Director, London),K.P. Tripathi (Same) P-324

1849 तक **कर्नल स्लीमैन** कार्यरत रहे। इसी समय बुन्देला विद्रोह हो गया जिस कारण प्रभावी प्रशासनिक और सैनिक व्यवस्था के गठन हेतु पॉलिटिकल एजेण्ट का कार्यालय नौगाँव स्थानान्तरित कर दिया गया और उसी समय वहाँ एक छावनी स्थापित कर दी गयी। नौगाँव एजेन्सी में 1849 से 1855 तक **बुश बी0** पॉलिटिकल एजेण्ट के रूप में नियुक्त रहे। इसी समय **लार्ड डलहौजी** ने प्रशासनिक व्यवस्था को और प्रभावी बनाने के उद्देश्य से बुन्देलखण्ड में सैनिक विकेन्द्रीकृत किया तथा 1854 में मध्य भारत एजेन्सी स्थापित की और इसके लिए एक अलग अधिकारी Agent to the Governor general (A.G.G.) की नियुक्ति की।[3] इस अधिकारी का दायित्व राजनीतिक प्रतिनिधियों (P.A.) की व्यवस्थाओं का निरीक्षण करना था। इस प्रकार (P.A.) अब A.G.G. के प्रति उत्तरदायी बनाए गए तथा A.G.G. का सीधा सम्बन्ध गर्वनर जनरल से रहता था।[4] इस व्यवस्था के अन्तर्गत सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी के A.G.G. के पद पर 1855 में हेमिल्टन की नियुक्ति की गयी तथा नौगाँव स्थित बुन्देलखण्ड एजेन्सी के पॉलिटिकल (P.A.) एजेण्ट **मेजर एलिस** बनाए गए।[5] बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड दोनों एजेन्सियों को मिलाकर उनका प्रशासन एक में मिला लिया गया और यह आदेश 1 दिसम्बर 1931 से लागू हुआ[6] दोनो एजेन्सियों को मिलाने के बाद नौगाँव ही इसका मुख्यालय बना रहा।

बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड को मिलाने से 1931 में इस क्षेत्र में 33 रियासतें और जागीरें सम्मिलित थी। इनमें अजयगढ़, अलीपुरा, बंकापहाड़ी, बावनी, बरेण्डा,

---

[3] के0पी0 त्रिपाठी (वही), पृष्ठ 324
[4] के0पी0 त्रिपाठी (वही), पृष्ठ 324
[5] के0पी0 त्रिपाठी (वही), पृष्ठ 324
[6] बुन्देलखण्ड पॉलिटिकल एजेन्सी रिकार्ड्स की भूमिका (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली)

पेरी, भसिण्डा, बीहर, बिजावर, बिजना, चरखारी, छतरपुर, दतिया, घरवई, गरौली, गौरिहार, जासो, जिगनी, कामतारिजौला, कोठी, लुगासी, मैहर, मगौठ, मेगाँव, रिवाई, ओरछा, पहरी, पालदेव, पन्ना, समथर, सरीला, सुहावल और टोड़ी फतेहपुर आदि सम्मिलित थे।[7]

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के उपरोक्त रियासतों और जागीरों के राजाओं और जागीरदारों से कम्पनी सरकार ने उनकी स्थिति के अनुसार समझौतें और संधियाँ की थी जिसके अनुसार वे अपने अपने क्षेत्रों का प्रशासन निर्धारित शर्तो पर किया करते थे। इन रियासतों, जागीरों के अलावा बुन्देलखण्ड के वे जिले जो कम्पनी सरकार के प्रत्यक्ष शासन के आधीन थे उन्हे हम ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारते है जिसमें झाँसी ललितपुर, बाँदा, हमीरपुर तथा जालौन के जिले सम्मिलित थे। समय–समय पर इन जिलों के क्षेत्रों पर तथा प्रशासनिक व्यवस्था में अंग्रेजी सरकार द्वारा परिवर्तन किए जाते रहे। उदाहरण के लिए बाँदा और हमीरपुर, इलाहाबाद राजस्व क्षेत्र के अन्तर्गत आते थे और इस प्रकार वे इलाहाबाद कमिश्नरी के अंग थे।[8] इनके अतिरिक्त जालौन, झाँसी एवं ललितपुर के जिले झाँसी कमिश्नरी के अन्तर्गत थे जिनका मुख्यालय झाँसी था कुछ वर्षों पश्चात् बाँदा और हमीरपुर को भी झाँसी मुख्यालय में मिला लिया गया। 1909 में ब्रिटिश बुन्देलखण्ड का कुल क्षेत्रफल 11600 वर्ग मील था जो यमुना के उत्तर–पश्चिम से लेकर चम्बल तक फैला हुआ था[9]

---

[7] बुन्देलखण्ड पॉलिटिकल एजेन्सी रिकार्ड्स की भूमिका (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली)
[8] एटकिन्सन, ई.टी. (वही) पृष्ठ – 53
[9] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, कलकत्ता 1909, पृष्ठ – 212

1858 के पश्चात् ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के जिलों की राजस्व व्यवस्था :

ब्रिटिश शासन के अधीन बुन्देलखण्ड के जो जिले थे उनमें झाँसी के आधे क्षेत्र का राजस्व बन्दोबस्त 1857 के विंद्रोह के पूर्व ही **कैप्टन जॉर्डन** द्वारा किया जा चुका था। इसी बीच विद्रोह प्रारम्भ हो जाने के कारण शेष आधे क्षेत्र के राजस्व दरों का निर्धारण 1858 में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद भी किया जा सका था। कैप्टन जॉर्डन ने मोठ, भाण्डेर और गरौठा के परगनों की राजस्व दरें निर्धारित की थी।[10] झाँसी जनपद के राजस्व प्रबन्ध की विवेचना से पूर्व अंग्रेजी शासन से पूर्व बुन्देला और मराठा समय में की गई इस क्षेत्र की राजस्व व्यवस्था का उल्लेख उचित प्रतीत होता है। बुन्देला और मराठों के समय राजस्व की दरों का निर्धारण निश्चित अवधि तक के लिए नही किया जाता था जैसा कि अंग्रेजी शासन में होता था[11] ये शासक अपने वफादारों और रिश्तेदारों को गाँव जागीर के रूप में दे देते थे और इसके बदले जागीरदार समय पर विशेषतः युद्ध के समय अपने लड़ाकू सैनिक मराठों और बुन्देलाओं को उपलब्ध कराते थे।[12]

ऐसे गाँव जो जमींदारों को दिए जाते थे उनकी भूमि का लगान माफ होता था और उन्हे **उबारीदार** के नाम से पुकारा जाता था[13] जो गाँव इस व्यवस्था से अलग रहते थे वहाँ राजस्व वसूल करने के लिए मेहती और मुखिया के माध्यम से

---

[10] पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 92

[11] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81

[12] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81

[13] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81

वहाँ का राजस्व वसूल किया जाता थां मेहती और मुखिया को इस सेवा के बदले कुछ धनराशि दे दी जाती थी।[14]

ब्रिटिश शासन के पूर्व मराठा काल में बुन्देलखण्ड में राजस्व दरों के निर्धारण की जो प्रथा प्रचलित थी उसे 'देखा–पारखी' प्रथा कहा जाता है इस पद्धति के अन्तर्गत वर्ष के प्रारम्भ में भूमि का राजस्व निर्धारित कर दिया जाता था जिसमें गाँव के मुखिया को गाँव की वसूली का पट्टा दे दिया जाता था। इस पट्टे मे भूमि की किस्मों के आधार पर भू राजस्व की दरें लिखी होती थी।[15] मराठा काल में राजस्व निर्धारण की एकप्रथा भी बुन्देलखण्ड में प्रचलित थी जिसे **'थक्का'** या **'थंशा'** के नाम से पुकारा जाता था इस प्रथा के अनुसार भूमि का राजस्व निर्धारित करके इकट्ठा लिख दिया जाता था। दूसरे शब्दों में इसे हम राजस्व की थोक वसूली कह सकते हैं।[16] अतः यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी शासन से पूर्व बुन्देलखण्ड में निश्चित अवधि के लिए बन्दोबस्त नही होते थे। अंग्रेजी सरकार ने अब किसानों को भूमि का स्वामित्व प्रदान किया इससे उन्हे मालिकाना हक प्राप्त हुआ।[17]

जॉर्डन से पूर्व 1839 में मोठ, भाण्डेर और गरौठा के परगनों में (1854 तक ये परगने जालौन जिले में थे) कुछ समय के लिए बन्दोबस्त किया गया था जिसे जालौन के सुप्रीटेंडेंट ने किया था तत्पश्चात् **आर्स्किन** ने इन परगनों का संक्षिप्त बन्दोबस्त किया। **आर्स्किन** द्वारा किया गया बन्दोबस्त भूमि के ठीक प्रकार से नाप–तोल पर आधारित नही था। अतः राजस्व की दरें काफी ऊँची निर्धारित की

---

[14] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81
[15] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81
[16] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81
[17] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 81

गयी। फलतः यहाँ के किसानों और जागीरदारों को अत्यधिक कठिनाई उठानी पड़ी[18] इसके पश्चात् **जॉर्डन** ने इन परगनों का बन्दोबस्त किया जो 1857 के पूर्व पूर्ण हो चुका था लेकिन इससे सम्बन्धित सम्पूर्ण रिंकार्ड 1857 के विद्रोह के समय नष्ट हो गए थे।

झाँसी के अतिरिक्त ललितपुर जिले में भी राजस्व व्यवस्था कई चरणों में बनाई गयी। ललितपुर में पहला स्थायी बन्दोबस्त 1869 मे हुआ, इससे पूर्व 1844 एवं 1860 के बीच राजस्व की संक्षिप्त व्यवस्था की गई थी।[19] ये बन्दोबस्त मुख्यतः सैनिक अधिकारियों द्वारा किए गए थे। ललितपुर, तालबेहट, महरौनी सबसे पहले राज़स्व के लिए व्यवस्थित किए गए। **कैप्टन विलेक** ने यहाँ जो बन्दोबस्त 1844 में किया। वह 1848 तक चलता रहा। इस जिले का दूसरा संक्षिप्त राजस्व प्रबन्ध **कैप्टन हैरिश** ने किया[20] जो 1853 तक कार्यरत रहा। 1854 में **कैप्टन जॉर्डन** ने ललितपुर के संक्षिप्त राजस्व को पूरा किया।[21] निःसन्देह बन्दोबस्त की स्थायी व्यवस्था ललितपुर मे भी 1858 में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद ही सम्भव हो सकी।

झाँसी तथा ललितपुर के स्थायी राजस्व प्रबन्ध :-

झाँसी और ललितपुर के दोनो जिलों में राजस्व निर्धारण की प्रक्रिया 1857 के विद्रोह से प्रभावित रही किन्तु जैसे ही शान्ति स्थापित हुई, वैसे ही डिप्टी

[18] जेनकिन्सन ई0जी0, (रिव्यू ऑफ द सेटेलमेण्ट), पृष्ठ 1

[19] ड्रेकब्रॉकमैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद, 1909 पृष्ठ – 144

[20] ड्रेकब्रॉकमैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद, 1909 तथा एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ – 336

[21] ड्रेकब्रॉकमैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद, 1909 तथा एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ – 336

कमिश्नर **कैप्टन मैवलीन** ने अगस्त 1858 में यह कार्य प्रारम्भ किया।[22] इसने पटवारियों से राजस्व अभिलेखों को जहाँ तक सम्भव हुआ, इकट्ठा किया और मऊ और पंडवाहा परगनों के भी बन्दोबस्त का कार्य प्रारम्भ किया। 1859 में **कैप्टन क्लार्क ने मैवलीन** के स्थान पर कार्य अपने हाथ में लिया तथा उसने गरौठा परगनों के 15 गाँवों में बन्दोबस्त कार्य प्रारम्भ किया। उल्लेखनीय है कि यह परगना पहले जॉर्डन द्वारा राजस्व के लिए व्यवस्थित किया गया था।

1861 में **डेनियल** ने **क्लार्क** से कार्यभार ग्रहण करके दूसरे ही वर्ष पंडवाहा और मऊ परगनों मे बन्दोबस्त कार्य शुरू किया। 1864 में डेनियल के स्थान पर मेजर डेविडसन नियुक्त हुआ[23] जिसने मार्च 1864 तक झाँसी के 119 गाँवों का बन्दोबस्त कर दिया। 1864 में मेजर **जेनकिन्सन** ने झाँसी जिले का कार्य अपने हाथ में लिया तथा इस बन्दोबस्त को पूरा किया। यह बन्दोबस्त 20 साल के लिए किया गया जो सरकारी नोटीफिकेशन के अनुसार 30 सितम्बर 1864 तक वैध था।

झाँसी का दूसरा और तीसरा बन्दोबस्त :

झाँसी जिले का दूसरा बन्दोबस्त **इम्पे और मेस्टन** नामक राजस्व अधिकारियों ने किया। अक्टूबर 1881 में इस बन्दोबस्त की घोषणा की गयी।[24] **इम्पे** ने बन्दोबस्त अधिकारी के रूप में अक्टूबर 1889 में चार्ज अपने हाँथ मे लिया तथा **मेस्टन** की सहायता से 1892 के जाड़े–2 के समय तक बन्दोबस्त का कार्य पूरा किया।[25] यद्यपि ललितपुर जिला 1891 में झाँसी में मिला लिया गया था, लेकिन इस

[22] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 83–85
[23] पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 96
[24] सरकारी आदेश संख्या 1479/1–505, 11 अक्टूबर 1888, देखिए झाँसी का दूसरा बन्दोबस्त, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ – 1
[25] फारवर्ड नोट नम्बर 75/1262, देखिए झाँसी का दूसरा बन्दोबस्त, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ – 1

बन्दोबस्त में ललितपुर को झाँसी मे सम्मिलित नही किया गया था।[26] इसी प्रकार गुरसराँय और ककरबई की जागीरों को भी इस बन्दोबस्त की कार्यपद्धति से दूर रखा गया। 1892 से पूर्व झाँसी और ग्वालियर के बीच क्षेत्रों का आदान–प्रदान हुआ और इस समय तक झाँसी में तहसीलों की संख्या केवल 4 थी।

तीसरा बन्दोबस्त **पिम** ने 1903 में किया जिसे हम अन्तिम बन्दोबस्त के नाम से पुकारते हैं। इस समय ललितपुर भी झाँसी जिले में सम्मिलित कर लिया गया था।[27] इस प्रकार झाँसी और ललितपुर सब डिवीजन का बन्दोबस्त 1906 में पूरा किया गया।

ललितपुर जिले में स्थायी बन्दोबस्त का कार्य 1858 के बाद प्रारम्भ हुआ, किन्तु **कैप्टन टीलर** के 1860 में यूरोप चले जाने से बन्दोबस्त का कार्य **कैप्टन कार्वेट** को दिया गया[28] लेकिन 1862 में **कार्वेट** का भी जालौन के लिए स्थानान्तरण हो गया। उसी वर्ष **कैप्टन टीलर** यूरोप से वापस लौटकर पुनः ललितपुर आया और उसने पुनः यह कार्य प्रारम्भ किया। सबसे पहले उसने तालबेहट और ललितपुर के गाँवों का राजस्व निर्धारण किया। यद्यपि बाँसी का सर्वे कैप्टन पहले कर चुका था, किन्तु न ही उसने और न ही **कैप्टन टीलर** ने उसकी कोई रिपोर्ट प्रकाशित की। कर्नल डेविडसन ने फरवरी 1866 में यह कार्य प्रारम्भ किया जो तीन वर्षों तक चलता रहा और 1869 में पूरा हुआ। यह बन्दोबस्त 16 वर्षों तक के लिए किया गया।[29] पूर्व निश्चित अवधि के अनुसार ललितपुर पहले बन्दोबस्त की अवधि 1889

---

[26] फारवर्ड नोट नम्बर 75/1262, देखिए झाँसी का दूसरा बन्दोबस्त, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ – 1
[27] पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 97–98
[28] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–336
[29] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–336

में समाप्त होनी थी, लेकिन अकाल इत्यादि के कारण इसकी अवधि 10 वर्ष तक बढ़ा दी गयीं। इस जिले का दूसरा बन्दोबस्त **होरे** ने 1899 में किया। इसकी अवधि 30 वर्ष तक रखी गई। अन्त में ललितपुर जिले को झाँसी में मिलाकर 1903 में पिम ने दोनों भागों का एक साथ बन्दोबस्त किया।

1857 के विद्रोह की समाप्ति के बाद जैसे ही 1858 में शान्ति स्थापित हुई वैसे ही राजस्व कर की दरों में संशोधन करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।[30]

सन् 1874 का बन्दोबस्त :

बाँदा जिले में बन्दोबस्त अधिकारी **कैडिल** ने 10 दिसम्बर 1874 को सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ किया[31] उसने इस कार्य मे राजस्व अधिकारी फिनले की सहायता ली। **कैडिल** और **फिनले** ने मिलकर बाँदा जिले के पश्चिमी 5 तहसीलों का राजस्व निर्धारण किया जबकि कर्वी सब डिवीजन में इस कार्य को करने का दायित्व **पीटरसन** को दिया गया।[32]

हमीरपुर की राजस्व व्यवस्था :

हमीरपुर जिले का राजस्व प्रबन्ध सबसे पहले 1805–06 में गर्वनर जनरल के एजेण्ट कैप्टन **बेली** ने किया। इस जिले के कलेक्टर आर्स्किन ने यहाँ के विद्रोही नेता पारसराम, गोपालसिंह और दउआ का दमन करने मे काफी कठिनाई का अनुभव किया था। अन्ततः सैनिकों की सहायता से इस क्षेत्र का प्रबन्ध किया गया।[33] आर्स्किन ने इस जिले का दूसरा राजस्व प्रबन्ध 1807 में किया, लेकिन उस

---

[30] 1857 के पूर्व राजस्व प्रबन्ध हेतु देखिए अध्याय –3
[31] कैडिल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, इलाहाबाद 1881 , पृष्ठ 98
[32] हम्फ्रीज, ई0डी0, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, 1909, पृष्ठ 16 और 18
[33] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–173

समय तक गोपाल सिंह तथा अन्य विद्रोही जिले के पश्चिमी क्षेत्रों में अपना प्रभाव जमाए हुए थे। तीसरा राजस्व प्रबन्ध 1811–12 में **वान्चूप** ने किया।[34] इसके पश्चात् **स्कार्टबारिंग** ने 1815 में इस जिले के लिए राजस्व व्यवस्था का निर्माण किया। **स्कार्ट** तथा **बारिंग** ने हमीरपुर जिले का पाँचवा राजस्व प्रबन्ध 1815–1820 की बीच की अवधि में पूरा किया।[35] 1825 में कालपी के राजस्व की दरों के पुर्नव्यवस्था का कार्य इन्हें सौपा गया। 1842 में ऐलन नें परगना सुमेरपुर, मौदहा, राठ, पनवाड़ी और खरका आदि क्षेत्रों का बन्दोबस्त किया जबकि **डब्ल्यू म्यूर** ने हमीरपुर, कालपी, जलालपुर, खरेला और कोंच का प्रबन्ध (जो इन दिनों हमीरपुर जिले में था) तथा **फ्रीलिंग** ने महोबा का बन्दोबस्त 1855–56 में किया।[36] **ऐलन** तथा **म्यूर** द्वारा किए गए बन्दोबस्त की अवधि 1872 मे समाप्त हुई।[37]

जालौन जिले का राजस्व प्रबन्ध :

जालौन जिले में मुख्यतः तीन राजस्व प्रबन्ध हुए। पहला प्रबन्ध 1863–64 मे हुआ जिसमें इस जिले के 675 गाँवों का सर्वेक्षण करते हुए राजस्व की दरें निर्धारित की गयी।[38] इस समय कुल 709282 एकड़ भूमि की पैमाइश की गई तथा उनकी दरों का निर्धारण किया गया। दूसरा बन्दोबस्त 1873 में कोंच व कालपी का किया गया जिसमे कुल 203 गाँव शामिल थे तथा कुल 214044 एकड़ भूमि का सर्वेक्षण हुआ। तीसरा बन्दोबस्त दबोह बन्दोबस्त के नाम से प्रसिद्ध है, यह 1876–77 में समाप्त हुआ। इसमें कुल 18 गाँव शामिल थे तथा 16487 एकड़ भूमि की पैमाइस

[34] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–173
[35] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–173
[36] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–173
[37] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –335–173
[38] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –212

करते हुए इनकी दरों का निर्धारण किया गया।[39] बन्दोबस्त की उपरोक्त व्यवस्था में जालौन जिले के जागीरदार विशेषतः जगम्मनपुर, रामपुरा और गोपालपुर के क्षेत्रफल शामिल नही थे, क्योंकि यहाँ जमींदारों की जागीरदारी चली आ रही थी।[40]

विभिन्न परगनों के क्षेत्रफल तथा गाँवों के आदान–प्रदान के कारण कुछ गाँव जागीरदारों की सीमा में शामिल हो गए इसके बदले कुछ गाँव इन परगनों को स्थानान्तरण किए जाते रहे किन्तु इन सभी क्षेत्रों का विस्तृत आर्थिक विवरण देना कठिन है[41] फिर भी राजस्व प्रबन्ध की दृष्टि से निम्न तथ्य उल्लेखनीय है–

1838 में जालौन रियासतों में शामिल परगनों को **लेफ्टिनेण्ट दूलन** की देखरेख में रखा गया।[42] इन परगनों में जालौन, कनार, मुहम्मदाबाद, इटौरा, रामपुरा, महोबा तथा मोंठ शामिल थे। 1839 में अल्प अवधि के लिए इनका बन्दोबस्त किया गया। 1840 में दूसरा बन्दोबस्त भी केवल एक वर्ष के लिए ही किया गया।[43]

1841 से 1845 के बीच इस जिले का तीसरा राजस्व प्रबन्ध हुआ जिसकी अवधि 5 वर्ष की थी। 1841 में चिरगाँव के जमींदार के विद्रोही हो जाने के कारण उसे अंग्रेजी शासन में मिला लिया गया। 1843 में गरौठा और दबोह को झाँसी में इस उद्देश्य से शामिल किया गया, ताकि अंग्रेजी सेना के खर्चे के लिए आय की व्यवस्था की जा सके। 1844 में परगना कछवागढ़ तथा भाण्डेर जो पहले ग्वालियर रियासत में थे उन्हे **कैप्टन रोश** की देख–रेख में दे दिया गया।[44] अंग्रेज सरकार तथा ग्वालियर रियासत के बीच में एक सन्धि द्वारा इन परगनों को अंग्रेजी शासन

---

[39] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –212
[40] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –212
[41] कर्नल टर्नन, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट 1869, और कर्नल टर्नन स्टेटिस्कल मेमायर्स 1870
[42] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –212
[43] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –212
[44] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –213–214

को दे दिया गया, जिन्हे जालौन जिले में शामिल कर लिया गया।[45] 1847 तथा 1850 के बीच राजस्व प्रबन्ध की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसमें ग्वालियर रियासत से हस्तान्तरित परगने शामिल नही किए गए थे।[46]

अप्रैल 1849 मे **कैप्टन रोश** के उत्तराधिकारी के रूप में **कैप्टन आर्स्किन** ने कार्यभार ग्रहण किया। उसी वर्ष ज़ैतपुर भी आर्स्किन की देख–रेख में रख दिया गया। मार्च 1853 में परगना महोबा तथा जैतपुर को हमीरपुर जिले को दे दिया गया, इसके बदले कालपी तथा कोंच के क्षेत्र जालौन को प्राप्त हुए, कालपी और कोंच का बन्दोबस्त **विलियम म्यूर** ने 1840–41 में तथा 1870–71 में किया। 1860–61 में कोंच की राजस्व दरें पुनः निर्धारित हुई। 1854 में जालौन जिले के क्षेत्रफल में पुनः परिवर्तन हुआ, क्योंकि मोठ तथा चिरगाँव और गरौठा के परगनें झाँसी को दे दिए गए थे। 1856 में भाण्डेर भी झाँसी को दे दिया गया। इससे पहले 1850 में **कैप्टन आर्स्किन** ने जालौन के गाँवों के आदान–प्रदान के कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन अवश्य किए थे। **कैप्टन आर्स्किन** ने इस जिले का जो राजस्व प्रबन्ध किया वह 1863 तक चलता रहा।[47]

सन् 1860 में जालौन जिले के पहुँज नदी के पश्चिम में स्थित 255 गाँवों को ग्वालियर रियासत को हस्तान्तरित कर दिया गया।[48] शेष 676 गाँवों का राजस्व प्रबन्ध 1863 में **मेजर टर्नन** ने पूर्ण किया जो 20 वर्ष तक की अवधि के लिए था।[49]

---

[45] देखिए सन्धि दिनांक 13 जनवरी 1844
[46] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –213–214
[47] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –213–214
[48] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –213–214
[49] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –213–214

कालपी और पूँछ की राजस्व व्यवस्था का निर्धारण 1873 में **ह्वाइट** ने किया जो 30 वर्षों तक के लिए था अर्थात इसे 1903 में समाप्त होना था।[50]

राजस्व व्यवस्था का मूल्यांकन :

अंग्रेजी शासन बुन्देलखण्ड में एक विदेशी शासन था, प्रायः सभी अधिकारी सैनिक अधिकारी थे। राजस्व जैसी दरों के निर्धारण के लिए बुन्देलखण्ड के जिलों में एक जैसी नीति नही अपनाई गयी। इसके साथ ही सभी अधिकारियों द्वारा निर्धारित राजस्व की दरें अत्यन्त ही कठोर थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ये अधिकारी इस क्षेत्र से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त कर अपने उच्च अधिकारियों को प्रसन्न करना चाहते थे। राजस्व निर्धारण के जो तरीके अपनाए गए उनमें एकरूपता का निरन्तर अभाव दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए बाँदा जिले में 1874 के बन्दोबस्त में बन्दोबस्त अधिकारी कैडिल ने कई गाँवों को अनेकों भागों में विभाजित कर विभिन्न वर्ग बनाए थे।[51] वहीं दूसरी ओर इस जिले के कर्वी सब डिवीजन के बन्दोबस्त अधिकारी **पीटरसन** ने 1881 के बन्दोबस्त के समय दरों का निर्धारण विभिन्न किस्म की भूमि पर आधारित किया।[52]

राजस्व की दरें अत्यन्त ही कठोर थीं। 1804 में **कैप्टन बेली** ने जैसे ही इस क्षेत्र में पर्दापण किया उसने सर्वप्रथम बाँदा के लिए राजस्व की ऊँची से ऊँची दरों का निर्धारण किया। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि एक वर्ष पश्चात् ही 1805 में आर्स्किन को इन दरों में कमी करनी पड़ी[53]। आर्स्किन के बाद बाँदा जिले के

---

[50] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –213–214
[51] कैडिल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ 14
[52] ड्रेकब्रॉकमैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद, 1909, पृष्ठ–132
[53] ड्रेकब्रॉकमैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद, 1909, पृष्ठ–132

बन्दोबस्त का कार्य वान्चूप को मिला था जिसने दरों में पुनः वृद्धि कर दी थी।[54] परिणामस्वरूप कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय होती गयी, लगातार पड़ रहे अकालों तथा अन्य आपदाओं के कारण किसान पहले से ही परेशान थे, किन्तु राजस्व की बढ़ी हुई दरों ने उनके कन्धों पर और अधिक बोझ डाल दिया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उपरोक्त विपत्तियों में राहत तथा सुविधा पहुँचाने के स्थान पर सरकार ने राजस्व की बढ़ी हुई दरों को तीव्रता से वसूलने का आदेश दे दिया।[55] इस स्थिति में असन्तोष की लहर और बढ़ी। बन्दोबस्त अधिकारी तथा बाँदा के **कलेक्टर कैडिल** ने स्वयं ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा राजस्व की दरों के उच्च निर्धारण की तीखी आलोचना करते हुए कहा कि ''**ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा प्रशासन राजस्व वसूली के तरीकों में उन अमानुषिक परम्पराओं का पालन कर रहा है जो किसी काल में अत्याचारी शासकों द्वारा किए जाते रहे।**[56]'' राजस्व की उच्च दरें इसके साथ ही साथ उनकी तेजी से वसूली के कारण इस ज़िले के अधिकांश लोगों को सरकारी करों की पूर्ति के लिए अपनी भूमि मारवाड़ियों, जैनियों तथा अनेक ऋणदाताओं के हाथों में बेचनी पड़ी। बाँदा तथा कर्वी सब डिवीजन दोनो क्षेत्रों में राजस्व प्रबन्ध अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण प्रभावित होते रहे। सम्भवतः किसी भी बन्दोबस्त ने अपनी अवधि पूरी नही की होगी। इस प्रकार की राजस्व नीति इस जिले के सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी रही। झाँसी तथा ललितपुर जिलों की भी लगभग यही स्थिति रही। इन जिलों में बन्दोबस्त अधिकारियों का प्रायः स्थानान्तरण होता रहा। अतः राजस्व निर्धारण की

[54] कैडिल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ 14
[55] कैडिल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ 14
[56] कैडिल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ 14

एक समान नीति का पालन नही किया गया।[57] उल्लेखनीय है कि **कैप्टन जॉर्डन** ने जहाँ झाँसी जिले में भूमि के उत्पादन के आधार पर कर का निर्धारण किया था, वही **डेनियल** और **डेविडसन** ने विभिन्न किस्म की भूमि का सर्वेक्षण कर उनकी किस्म के आधार पर लगान की दरें निर्धारित की। 1864 में अपने बन्दोबस्त के समय झाँसी के बन्दोबस्त अधिकारी जेनकिन्सन ने यह दावा किया था कि इस जिले की राजस्व दरें उचित है और ये दरें इतनी हल्की है[58] कि जिन्हें जमींदार आसानी से अदा कर सकता है। जेनकिन्सन ने उचित कर नीति का जो दावा पेश किया है इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि नई दरें पूरे जिले में एक समान नही थी। कुछ परगनों मे तो यह हलकी थी जबकि अन्य परगनों पर यह दरें कठोर थीं। जेनकिन्सन के शब्दों में0 ''**भाण्डेर परगना में राजस्व की दरें कम थी जबकि अन्य परगनों में ये काफी ऊँची थी, इसके अतिरिक्त मऊ तथा पण्डवाहा परगनों के राजस्व की दरें भी भिन्न–भिन्न थीं।**'' संक्षेप में इन परगनों में कुछ गाँवों में राजस्व की दरें कम थी तथा कुछ अन्य गाँवों में ये अत्यन्त ही ऊँची थी।[59] डेनियल जिसने इन परगनों का बन्दोबस्त किया था उसने इस ओर उचित ध्यान नही दिया अथवा उसे इस सम्बन्ध मे पर्याप्त सूचना प्राप्त नही हुई। निःसन्देह राजस्व के बोझ से इन परगनों की स्थिति दयनीय थी। बाद में जब मऊ परगनें की जाँच की गयी तब जाँच अधिकारी **पोर्टर** ने इसे स्वीकार किया कि राजस्व की ऊँची दरें इन परगनों की गरीबी के लिए उत्तरदायी हैं।[60]

---

[57] पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 111
[58] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 105
[59] जेनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद, 1871, पृष्ठ 83–85
[60] इम्पे डब्ल्यू एच0एल0 तथा मेस्टन जे0एस0, झाँसी सेटेलमेण्ट, इलाहाबाद 1892 पृष्ठ 55–56

बाँदा की भाँति झाँसी व ललितपुर में भी बन्दोबस्त अपना पूरा समय पूर्ण नही कर सके। इसका मुख्य कारण समय–समय पर अकालों तथा प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव रहा। जैसे ही नया बन्दोबस्त लागू हुआ, झाँसी में 1868 में भंयकर अकाल पड़ा।[61] 1872 में इसी जिले की खेती योग्य भूमि का अधिकांश भू–भाग काँशा के प्रकोप में आ गया एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार **''1872 में इस जिले की 40000 एकड़ जमीन[62] में काँश उग गई थीं। निःसन्देह इससे कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय हुई और वे गरीबी के कारण अपनी जमीने जैनियों, मारवाड़ियों तथा अन्य ऋणदाताओं को बेंचने लगे।''**

झाँसी जिले का दूसरा बन्दोबस्त उस समय हुआ (1890–91) जब जिले की स्थिति अत्यन्त ही खराब थी। इसके बावजूद भी यहाँ के किसानों ने कठिन परिश्रम से लगभग 18.81 प्रतिशत खेती का विस्तार किया। यही कारण था कि इस प्रगति को देखते हुए अंग्रेजी सरकार के पहले से ही चली आ रही राजस्व की दरों में 12 प्रतिशत की वृद्धि कर दी गई। यह वृद्धि भी आर्थिक पिछड़ेपन का कारण बन गई। ललितपुर जिले में हुए बन्दोबस्त भी असमान तथा कठोर दरों की पुष्टि इसी बात से होती है कि परवर्ती बन्दोबस्त में राजस्व की पूर्व निर्धारित दरों को कम करना पड़ा[63] 1903 में यहाँ के बन्दोबस्त अधिकारी **पिम** ने लिखा था – **''इस जिले में पहले बन्दोबस्त से राजस्व की जो दरें निर्धारित की गयी थी वे दरें उन गाँवों में जहाँ पर कि परिश्रमी किसान थे, वहाँ काफी ऊँची रखी गई, किन्तु ऐसे गाँव जहाँ बुन्देला ठाकुरों**

---

[61] इम्पे डब्ल्यू एच0एल0 तथा मेस्टन जे0एस0, झाँसी सेटेलमेण्ट, इलाहाबाद 1892 पृष्ठ 55–56
[62] ड्रेकब्रॉकमैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद, 1909, पृष्ठ–140
[63] पिम ए0डब्ल्यू, फाइनल सेटेलमेण्ट, झाँसी डिस्ट्रिक्ट (ललितपुर सहित), इलाहाबाद 1907, पृष्ठ 14

का बोलबाला था उनके लिए राजस्व की दरें कम रखी गयीं।[64]" ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार ने बुन्देला ठाकुरों को खुश करने का प्रयास किया ताकि वे सरकार का सहयोग कर सकें। निःसन्देह इस प्रणाली से परिश्रमी किसानों को नुकसान हुआ जिनसे राजस्व की उंच्च दरें वसूल की जाती थी। इन परिश्रमी किसानों का उत्साहवर्धन तथा प्रोत्साहन के स्थान पर सरकार ने राजस्व की दरें बढ़ाकर उन्हें हतोत्सहित करने का प्रयास किया।

ललितपुर में दूसरा बन्दोबस्त जिसे **होरे** ने 30 वर्ष के लिए बनाया था, वह अपनी अवधि पूरा नही कर सका।[65] लगातार पड़ रहे अकालों, काँशें की वृद्धि तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने किसानों की आर्थिक रीढ़ तोड़ दी थी और वे इस स्थिति में नही थे कि राजस्व का भुगतान कर सकें। अतः बाध्य होकर सरकार को 1903 को ही इस बन्दोबस्त का पुनः निरीक्षण करना पड़ा जिसमें पुनः राजस्व की दरें कम करनी पड़ी। राजस्व की इस छूट ने भी किसानों को कोई राहत नही पहुँचाई क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं से लोग इतने परेशान थे जिससे उनकी स्थिति निरन्तर दयनीय होती चली जा रही थी। इस प्रकार झाँसी, ललितपुर, बाँदा आदि सभी जिलों में बन्दोबस्त न तो ठीक प्रकार से चल सके और न ही जनता को इससे सन्तोष हुआ।

जालौन जिले का राजस्व प्रबन्ध भी लगातार गाँवों के परिवर्तन तथा इनके क्षेत्रफल के परिवर्तन के साथ – साथ प्रभावित होता रहा। ग्वालियर रियासत से

64 पिम ए0डब्ल्यू, फाइनल सेटेलमेण्ट, झाँसी डिस्ट्रिक्ट (ललितपुर सहित), इलाहाबाद 1907, पृष्ठ 14
65 पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 114

मिलने वाली सीमा पर बसे गाँवों को हमेशा यह चिन्ता बनी रहती थी कि वे जालौन जिले में रहेगें अथवा ग्वालियर जिले को दे दिए जाएगें।

ठीक यही अनिश्चय की स्थिति जालौन तथा झाँसी की सीमा पर बसे गाँवों की थी किसी भी समय पूरे जिले का एक साथ बन्दोबस्त नही किया गया। कछवागढ़ परगना का जो बन्दोबस्त हुआ था उसकी दरें इतनी ऊँची थी कि 1848–49 में इसमे संशोधन करना पड़ा।[66] ठीक यही स्थिति अन्य परगनों की भी थी। इसके साथ ही मार्च 1853 में परगना महोबा और जैतपुर जो जालौन जिले के अंग थे उन्हे हमीरपुर को हस्तान्तरित कर दिया गया। इसके बदले जालौन को कालपी और पूँछ के परगने मिले। 1854 में मोठ, चिरगाँव और गरौठा तथा 1856 में भाण्डेर के परगनें जालौन से झाँसी जिले को दे दिए गए।[67] 1850 में भी **आर्स्किन** ने इसी प्रकार के परिवर्तन किए। निःसन्देह इन परगनों में बसे हुए गाँवों को हमेशा अनिश्चिय की स्थिति का सामना करना पड़ा जिससे वे हमेशा मनोवैज्ञानिक दबाव में बने रहे। जालौन के भी राजस्व प्रबन्ध अपना पूर्ण समय पूरा नही कर सके। इनकी दरें भी बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की तरह असमान तथा कठोर थी। प्राकृतिक आपदाओं ने भी इनको ठीक प्रकार से चलने नही दिया। 1851 में **आर्स्किन** ने जो बन्दोबस्त किया था उसका जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा। लोग अपनी भूमि को बेचने लगे। 1855 में बालमेन ने यह अच्छी तरह स्पष्ट किया था कि "गाँव में भूमि की बिक्री तेजी से हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि खेती से उन्हे लाभ नही हो रहा थां फलतः सरकार को कुछ गाँवों को अपने नियन्त्रण मे लेना पड़ा।

[66] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –219

[67] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –219

अधिकांश जमींदार परेशान तथा ऋण से ग्रस्त थे। यदि उनके ऋणदाता उनको सहायता न करें तो वे अपनी भूमि के लिए बीज ही नही खरीद सकते थे। केवल जानवरों के अलावा अन्य कोई उनके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति नही है।[68]'' **बालमेन** ने 1855 मे जालौन जिले की स्थिति का वर्णन करते हुए पुनः लिखा है कि ''**इस जिले का 1/6 भाग खेती की परिधि से बाहर हो गया है। अकाल तथा प्राकृतिक आपदाओं से लोग खेती करना छोड़ रहे हैं। राजस्व की दरों से भी लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।**'' कैप्टन स्कीने जो 1855 में जालौन का सुप्रीटेंडेंट था[69] उसने भी इसी मत की पुष्टि की है तथा लिखा है – ''**इस समय इन जिलों में जो बन्दोबस्त चल रहा है उनकी दरें इतनी ऊँची है जिसका कुपरिणाम जमींदारों पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है।**'' यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि कठोर राजस्व नीति बुन्देलखण्ड में 1857 के विद्रोह का प्रमुख कारण रही। निःसन्देह इस क्षेत्र के आर्थिक पिछड़ापन के लिए राजस्व की कठोर दरें उत्तरदायी थी।

हमीरपुर जिले की राजस्व स्थिति बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की भाँति ही दुखद रही। राजस्व की असमान तथा कठोर दरें इस व्यवस्था की मुख्य विशेषता को स्पष्ट करती है। इसके अतिरिक्त हमीरपुर जिले में डकैतों तथा लूटपाट करने वाले गिरोह नेता पारसराम, गोपालसिंह तथा दउआ इतने सक्रिय थे कि ये डकैत ब्रिटिश गाँवों से किसानों से जबरन कर वसूल कर लेते थे। इस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में असुरक्षा की भावना के कारण भी लोग बाध्य होकर इन डकैतों को

---

[68] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –219
[69] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –219

कर दे देते थे।[70] आर्स्किन ने जब इस जिले का बन्दोबस्त प्रारम्भ किया तब उस समय 1807 में यह पता चला कि इस जिले के बागी गोपालसिंह तथा उसके समर्थकों में पश्चिमी परगनों में अपना पूर्ण नियन्त्रण कर रखा है।[71] 1803 में वान्चूप ने इन पश्चिमी परगनों की राजस्व की दरों को बढ़ा दिया। **ऐलन** का मत है कि ''**पनवाड़ी परगनें में राजस्व वृद्धि का कारण यह था कि वहाँ के दो कानूनगो आपस में शत्रुता रखते थे। और उनके षड़यन्त्र से यह वृद्धि हो गयी।**[72]'' लेकिन इतना सारा दोष इन निम्न अधिकारियों को नही दिया जा सकता। राजस्व जैसी दरों के निर्धारण के महत्वपूर्ण कार्य के लिए अन्य उच्च अधिकारी भी अपने कर्तव्यों का उचित निर्वाह नही कर सके जिसके परिणाम स्वरूप हमीरपुर जिले के पश्चिमी परगनों में राजस्व की दरें ऊँची हो गयी। पनवाड़ी परगनें में स्थिति इतनी खराब हुई कि लोग राजस्व का भुगतान नही कर सके और 1815 मे भुखमरी के शिकार हुए।[73] 1815 में जब **स्कार्ट-बारिंग** ने पनवाड़ी का बन्दोबस्त प्रारम्भ किया तो उसने यह देखा कि पनवाड़ी की स्थिति अन्य परगनों से दयनीय है। स्कार्टबारिंग ने पूर्वी परगनों के राजस्व में 46 प्रतिशत वृद्धि कर दी और पश्चिमी परगनों में 21 प्रतिशत की वृद्धि कर दी। यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमी परगनों में पहले से ही राजस्व की दरे अत्यन्त ही ऊँची थी। अधिकतम वृद्धि ने लोगों को भुखमरी की कगार पर ला दिया। राजस्व बोर्ड के कमिश्नर ने इस अनियमितता की ओर इशारा किया था, लेकिन बंदोबस्त अधिकारी बारिंग नें इन ऊँची दरो का समर्थन किया। बारिंग के

---

[70] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –169
[71] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –169
[72] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –170
[73] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –170

बाद बंदोबस्त का कार्य वालपी को सौंपा गया जिसने राजस्व बोर्ड के **कमिश्नर फोर्ड** के इन सुझावों का कि **'राजस्व दरो में कमी कर दी जाय'** का प्रतिरोध किया तथा कमी के स्थान पर इन दरो की बढ़ोत्तरी की ओर संकेत किया।[74] राजस्व की बढ़ोत्तरी का यह परिणाम निकला कि किसान ऋणग्रस्त हो गये और उन्हे राजस्व की अदायगी के लिए अपनी जमीन बेचनी पडी। यहाँ तक कि 1825–26 में जब **वालपी** ने दूसरी बार बन्दोबस्त अधिकारी का कार्यभार ग्रहण किया तो उसने पुन अपनी पुरानी राजस्व की दरो का ही समर्थन किया। परिणाम स्वरूप किसानो को जब भुगतान करने में कठिनाई हुई तो उसनें तहसीलदार तथा राजस्व विभाग के क्लर्कों के वेतन इसलिये बंद कर दिये[75] क्योंकि वे राजस्व की बकाया धनराशि की वसूली नही करा सके थे। निःसन्देह **वालपी** के बन्दोबस्त ने इस जिले की आर्थिक स्थिति को और खराब किया। संक्षेप में 'राजस्व की कठोर दरों के कारण लोगो को अपनी भूमि मारवाडियो तथा ऋणदाताओ के हाथ बेचनी पडी। 1815 से लेकर 1819 के बीच इस जिले के 815 जागीरो की इसलिये नीलामी करनी पडी क्योकि इनके भू–स्वामी राजस्व की दरो का भुगतान नही कर सके थे।[76] 1842 में इस जिले की गरीबी का वर्णन **ऐलन** की रिपोर्ट में देंखने को मिलता है[77] जो उसी के शब्दो में 'राजस्व की ऊँची दरो का नतीजा था।' उसने लिखा है ''**1818 से लेकर 1824 के बीच में लखनऊ के एक व्यापारी कुतुबुद्दीन हुसैन खान ने हमीरपुर जिले की 8000 रुपये राजस्व के मूल्य के कई गाँवो को इसलिए खरीद लिया था क्योकि वहाँ के**

---

[74] एटकिन्सन, ई.टी.; बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –170
[75] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –175–76
[76] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –175
[77] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ –175

भू-स्वामी राजस्व की पिछली धनराशि का भुगतान नही कर सके थे।[78] उसी समय जलाउद्दीन खान ने भी 7000 रूपये की मालगुजारी की भूमि खरीद ली थीं। लेकिन आगामी वर्षो में उसकी भी आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गई कि उसे भिखारी के रूप में जिला छोड़ देना पड़ा।'' ऐलन ने भूमि स्थानान्तरण के अनेक उदाहरण दिये हैं। वह पुनः लिखता है कि "हमीरपुर के एक ऋणदाता दयाराम ने ऋण लेन-देन का व्यापार करके लगभग 12000 रूपये की मालगुजारी की जमीन खरीद ली थी जो उन किसानो की थी जो आर्थिक तंगी के कारण राजस्व का भुगतान नही कर सके थे, और बाध्य होकर अपनी जमीन ऋणदाताओ को बेंच रहे थें लेकिन दयाराम को भी सारी जमीन बाद में इसलिये बेच देनी पड़ी क्योकि वह स्वयं भी राजस्व का भुगतान नही कर सका था।" इसी समय इलाहाबाद के मिर्जा मुहम्मद खान ने हमीरपुर के दो गाँव की जमींदारी खरीद ली थी जिसकी वार्षिक मालगुजारी 4000 रुपये थी।[79] भूमि की खरीद करने वालो मे हमीरपुर के सरकारी वकील नुनायत राय भी थे, लेकिन बाद में चलकर राजस्व की अदायगी न कर सकने के कारण उन्हे भी अपनी भूमि दूसरों को बेंचनी पड़ी। यही स्थिति दीवान मदनसिंह की भी हुई जिन्होने गरीब किसानों की भूमि खरीदी थी किन्तु बाद में मदन सिंह की आर्थिक स्थिति स्वयं खराब हुई और उन्हे अपनी सारी जमीन स्वयं बेच देनी पड़ी।[80]

मजे की बात तो यह थी कि एक यूरोपीय जमींदार गुरूस ने भी हमीरपुर जिले में कृषि के लिए कुछ फार्म खरीदे थे, लेकिन उसकी भी आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक हो गयी थी। भूमि हस्तान्तरण की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रही अतः

---

[78] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ -175
[79] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ -175-176
[80] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ -175-176

इससे इस क्षेत्र में गरीबी, भुखमरी तथा बेरोजगारी का बोलबाला हुआ और सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन बढ़ता गया।

जागीरों और रियासतों में दोषपूर्ण राजस्व प्रबन्ध :-

देशी राज्यों एवं रियासतों के अन्तर्गत भूमि एवं राजस्व प्रबन्ध दोषपूर्ण था। वैज्ञानिक ढंग से न तो भूमि का मापन किया जाता था और न ही राजस्व निर्धारण हेतु पैमाइश की जाती थी। मराठा रियासतो में जल्दबाजी में देखा-पारखी व्यवस्था द्वारा कर निर्धारित कर दिया जाता था। रियासतां में जागीरदार, मैमारदार, मराठों के मालगुजार, जमींदार एंव भूमि के ठेकेदार भूमि के स्वामी होते थे। ग्रामों में मन्दिरों तथा मठो की भी जागीर लगा दी जाती थी। भूमि स्वामी बिचौलिए की तरह कार्य करते थे और कृषकों मे जमीन वितरित कर खेती करवाया करते थे। जब इच्छा हुई तो एक किसान को हटाकर दूसरे को खेती दे दी जाती थी।[81]

उपर्युक्त व्यवस्था में अनेकों दोष थे, उदाहरण के लिए – भूमि जोतने वाले का भूमि का स्वामित्व न होने के कारण कृषक प्रायः उदासीन रहता था और उत्पादन बढ़ाने में या भूमि के सुधार में कोई रुचि नही लेता था। दूसरा प्रमुख दोष यह था कि बिचौलिए अपनी मनमानी तरीके अपनाते हुए कृषको को प्रताड़ित करते थे और अकाल इत्यादि पड़ जाने पर भी उनसे राजस्व की धनराशि वसूलने में कठोरता अपनाते थे। प्रायः अमानुषिक तरीके अपना कर शारीरिक यातनाए देते हुए किसानो को राजस्व देने के लिए बाध्य किया जाता था। इस प्रकार यह जागीरदार और बिचौलिए बुन्देलखण्ड एजेन्सी के किसानों की गरीबी और परेशानी के लिए काफी मात्रा में उत्तरदायी थे।

---

[81] के0पी0 त्रिपाठी (वही), पृष्ठ 303

कृषकों के शोषण और उनकी आर्थिक विपन्नता का महत्वपूर्ण कारण लगान वसूली था। यह लगान राज्यो की आय का मूल स्रोत होता था किन्तु उसका कोई निश्चित आधार नही था। बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत छोटे–बड़े जितने राज्य, जागीरें एवं जमींदारियाँ थी उन सब का अपना–अपना भूमि व्यवस्थापन और लगान निर्धारित करने का तरीका था। लगान निर्धारण में कृषक के हितों एवं आर्थिक लगान के सिद्धान्तो का पालन न करते हुए ठेका लगान और कुल लगान के तरीकों से पूरी वसूली की जाती थी। अधि–सीमान्त भूमि और सीमान्त भूमि में अन्तर नही माना जाता था। कृषक जहाँ भी हल चलाता था वहां लगान निर्धारित हो जाता था। उल्लेखनीय है कि मध्य बुन्देलखण्ड की अधिकांश भूमि अनउपजाऊ, राखड़ आदि सीमान्त भूमि के अन्दर आती थी और उसका पूरा लगान वसूल कर जागीरदार और लगान के ठेकेदार, कृषको पर सीधा डाका डालने जैसा कार्य करते थे। लागत व्यय इत्यादि को कृषि उपज से अलग नही किया जाता था। आए दिन अकालों तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों के कारण कृषि नष्ट हो जाती थी और किसान लगान भुगतान की स्थिति में नही होता था लेकिन उनके साथ किसी भी प्रकार की नर्मी नही अपनाई जाती थी बल्कि लगान के ठेकेदार जमीन की कुर्की कराकर अपमानित करते हुए कृषको को भूमि से बेदखल कर देते थे।

इस प्रकार रियासतो तथा जागीरों के अन्तर्गत रहने वाली प्रजा भी भारी शोषण का शिकार हुई। जो स्थिति ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के जिलों में थी लगभग वही आर्थिक स्थिति देशी रियासतों में निवास करने वाली प्रजा की थी।

प्रमुख जागीरदारों का इतिहास

अध्याय - 5

प्रमुख जागीरदारों का इतिहास

बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश प्रभुसत्ता के उदय के प्रारम्भिक चरण में कम्पनी के अधिकारियों को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कम्पनी ने बेसिन और पूना की सन्धियों के आधार पर मराठा के बुन्देलखण्ड स्थित क्षेत्रों का प्रशासन प्राप्त किया था। इन समझौतों के कारण कई मराठा सरदार नाराज थे। ग्वालियर का सिंधिया तथा इन्दौर के होल्कर इस बात का प्रयास कर रहे थे कि बुन्देलखण्ड में मराठों की खोई सत्ता को पुनः प्राप्त किया जाए। मराठा सरदारों को यह प्रयास अंग्रेजो की चिन्ता का मुख्य कारण था। इस समस्या के हल के लिए कम्पनी प्रशासन ने यह आवश्यक समझा कि बुन्देलखण्ड में पिण्डारियो द्वारा उन दिनों जो लूटपाट और अराजकता फैलायी जा रही थी उसका दमन किया जाए। साथ ही साथ बुन्देला जमीदारों और सरदारों से समझौता करके उन्हे सन्तुष्ट किया जाए इस प्रकार की नीति अपना कर कम्पनी सरकार ने उनकी भूमि अथवा जमीदारी पर अधिकार बनाए रखा। इन अराजक तत्वों को शान्त करके मराठों द्वारा अंगेजों के विरूद्ध जो अभियान प्रारम्भ किया जा रहा था उसे रोका जा सकता था।[1]

उल्लेखनीय है कि पिण्डारियों के माध्यम से मराठे रियासतों के राजे–महराजे अन्य राजाओं और जागीरदारो को डराया–धमकाया करते थे तथा पिण्डारियों द्वारा लूट के धन में हिस्सा भी लिया करते थे। अतः पिण्डारियों का दमन कर अंग्रेजी सरकार मराठों की शक्ति के स्रोत को नष्ट करना चाहती थी। मराठों द्वारा इस क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता के विरोध का जो उपक्रम किया जा रहा था उसका प्रतिरोध करने

के लिए ही अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड के जमींदारों को सन्तुष्ट करते हुए उनकी वफादारी प्राप्त की। इसीलिए इन जमींदारों को तथा उनके विशेषाधिकारों को पूर्ववत बनाए रखा गया।

बाँदा जिसे जॉन बेली ने ब्रिटिश सत्ता के प्रारम्भ का केन्द्र बनाया था। यहाँ अधिकांश भूमि पर खेती करने वाले किसानों का ही नियन्त्रण था जो अपनी भूमि पर स्वयं कास्तकारी किया करते थे।[2] अतः बड़े–बड़े जमींदारों का इस जिले में अधिकांशतः नियन्त्रण नही था। ड्रेक–ब्राकमैन[3] ने इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि "**बाँदा के नवाब की मृत्यु के पश्चात् इस जिले में मात्र एक जमींदार परिवार था जिसे हम पारसराम बहादुर के नाम से जानते हैं और वह खड्डी जागीर का जागीरदार था। 1850 में उसकी मृत्यु हो जाने के साथ ही खड्डी की जागीर भी अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल कर ली गयी।**[4]" उल्लेखनीय है कि पारसराम एक खूँखार डकैत था जो ब्रिटिश प्रशासन के प्रारम्भिक चरण में आस–पास के क्षेत्रों में आतंक मचाये था और किसानों से राजस्व वसूल करता था चूँकि उन दिनों तक ब्रिटिश शासन अधिक सशक्त नही हो पाया था और मराठे इस क्षेत्र में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए प्रयासरत थे अतः कम्पनी प्रशासन ने उस खूँखार डकैत को सन्तुष्ट करने के लिए खड्डी की जागीर दे दी जो उसके जीवनकाल के लिए थी। 1850 में उसकी मृत्यु होते ही यह जागीर भी ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर ली गयी।[5]

---

[1] एचीन्सन सी.यू., भाग – 3, पृष्ठ – 140
[2] एटकिन्सन, ई.टी (वही), पृष्ठ – 57
[3] ड्रेक–ब्राकमैन डी.एल. बाँदा गजेटियर 1909, पृष्ठ 108
[4] ड्रेक–ब्राकमैन डी.एल. बाँदा गजेटियर 1909, पृष्ठ 108
[5] ड्रेक–ब्राकमैन डी.एल. बाँदा गजेटियर 1909, पृष्ठ 108

गुँसाई जमींदार :

ब्रिटिश अधिकारियों ने इस बात को सदैव ध्यान रखा कि ऐसे तत्व जो ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक हो सके उनको सन्तुष्ट करने के लिए उनसे समझौतों द्वारा उनको विशेषाधिकारों से सम्पन्न करते हुए जागीरें प्रदान की। इस कार्यपद्धति से ब्रिटिश शासन ने बुन्देलखण्ड में कम्पनी साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया और खूँखार डकैतों अथवा पिण्डारियों से भी तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समझौते किए।

गुँसाई राज्य – मौदहा :

मौदहा के गुँसाई भाग का अविर्भाव 1803 ई. में हिम्मत बहादुर गुँसाई और ब्रिटिश सरकार के समझौते द्वारा हुआ। यह राज्य यमुना तथा केन नदियों के बीच चरखारी से उत्तर पूर्व में हमीरपुर परिक्षेत्र में था।[6] हिम्मत बहादुर गुँसाई का प्रारम्भिक नाम अनूप गिरि था जो एक साहसिक अभिलक्षण बुद्धि का व्यक्ति था। 1750–1804 के बीच वह बुन्देलखण्ड की राजनीति, कूटनीति एवं सैन्यनीति की धुरी था। अपने 54 वर्षों के काल में हिम्मत बहादुर ने बुन्देलखण्ड के राज्यों का कभी निर्माता, कभी वहाँ के राजाओं का मानमर्दन कर्ता बना रहा। साहसी होने के साथ–साथ वह कूटनीतिज्ञ भेदिया भी था।[7] वह राजा बनाने वाला तथा एक असफल चरित्र था। बुन्देलखण्ड में मराठी सत्ता के पतन और अंग्रेजी सत्ता के उदय का मध्यकाल हिम्मत बहादुर का काल था। वह एक गुँसाई साधु वृत्ति का व्यवसायी था जो राज्य स्थापना के स्वप्नों में लिप्त महत्वाकांक्षी था जिसके लिए उसने जीवन

[6] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 206–07
[7] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 206–07

भर संघर्ष किया किन्तु सफलता आते–आते उससे दूर भागती रही इसके बावजूद भी उसने हिम्मत नही हारी। अन्ततः राजा बनने की अभिलाषा उसकी मृत्यु (1803) के एक वर्ष पूर्व पूरी हुई।[8] गुँसाइयों की उत्पत्ती के बारे में परस्पर विरोधी जानकारी प्राप्त होती है। इस जानकारी के अनुसार गुँसाई सेनानायक राजेन्द्रगिरि गुँसाई, कुलपहाड़[9] से एक विधवा ब्राम्हणी के दो बालक अपने साथ ले आया था। उस समय पड़े अकालों से त्रस्त उस विधवा ब्राम्हणी ने इन दोनो बालकों को राजेन्द्र गिरी को दे दिया था।[10] राजेन्द्र गिरी ने उनका पालन–पोषण किया तथा उन्हे धार्मिक शिक्षा के साथ सैन्य शिक्षा भी प्रदान की।.इनमें से एक का नाम उमराव गिरी तथा दूसरे का अनूपगिरी रखा। अनूप गिरी को उसकी वीरता के कारण अवध के नवाब शिराजुद्दौला ने हिम्मतबहादुर की उपाधि दी।[11]

हिम्मतबहादुर बुन्देलखण्ड का निवासी होने के कारण यहाँ के भौगोलिक स्थिति और राजनीतिक परिवेश से पूर्ण परिचित था। प्रारम्भ में उसने अलीबहादुर से मैत्री कर बाँदा, चरखारी, अजयगढ़, जयपुर, पन्ना, छतरपुर आदि छोटे–बड़े राज्यों को अपने आक्रमणों से भयभीत कर रखा था किन्तु 1802 में अलीबहादुर[12] की मृत्यु हो गई और 31 दिसम्बर 1802 को पेशवा बाजीराव द्वितीय द्वारा समूचा मराठी बुन्देलखण्ड क्षेत्र कम्पनी सरकार को दे दिया गया था और इस क्षेत्र के प्रबन्ध के लिए गर्वनर जनरल बेलेजली ने जॉनवेली को अपना राजनीतिक प्रतिनिधि नियुक्त कर बुन्देलखण्ड भेजा। इसी बीच हिम्मतबहादुर ने मराठों के विरूद्ध अंग्रेजों से

[8] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 206–07
[9] झाँसी– मानिकपुर रेलवे लाइन पर महोबा से पहले स्थित है।
[10] पद्माकर. " हिम्मत बहादुर विरदावली" (सम्पादक भगवानदीन) पृष्ठ 18
[11] सरकार, जे.एन., मुगल साम्राज्य का पतन ,भाग 3 पृष्ठ 211
[12] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 209

मित्रता कर ली।[13] इस मैत्री का अंग्रेजों ने खूब लाभ उठाया और हिम्मतबहादुर के सहयोग से बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी। इस सेवा के बदले बाँदा राज्य पर कम्पनी का अधिकार होते ही हिम्मतबहादुर को मौदहा का क्षेत्र जागीर के रूप में मिला। इस जागीर में हमीरपुर और दौना क्षेत्र शामिल थे। इस प्रकार यमुना के दक्षिणी ओर हमीरपुर से इलाहाबाद तक हिम्मतबहादुर का नियन्त्रण स्थापित हो गया। सन् 1804 में उसकी मृत्यु हो गयी।

हिम्मतबहादुर के निधन के पश्चात् उसका अल्पवयस्क पुत्र नरेन्द्र गिरि[14] उत्तराधिकारी हुआ। अल्पवयस्क काल में उसका संरक्षक उसका चाचा उमराव गिरि बना। नरेन्द्र गिरी अपने पिता के समान प्रभावशाली नही था अतः उसकी जागीर के परगने उसके हाथ से निकलने लगें और कम्पनी सरकार ने मौदहा का क्षेत्र जो हिम्मतबहादुर को जागीर के रूप में मिला था उसे अपने अधिकार में ले लिया केवल 12 गाँवों की जमीदारी हिम्मतबहादुर की विधवा पत्नी को दी गयी।[15]

उल्लेखनीय यह है कि कम्पनी की साम्राज्यलिप्सा नही समाप्त नहीं हुई और कुछ समय पश्चात् उनके दस गाँव भी हिम्मतबहादुर की विधवा पत्नी से छीन लिए गए और उसके जीवन निर्वाह के लिए केवल दो गाँव किशवाही एवं बिजनौर ही छोडे गए। सन 1830 में हिम्मतबहादुर की विधवा पत्नी तथा 1842 में उसका पुत्र नरेन्द्र गिरी भी निःसन्तान स्वर्गवासी हो गए।[16] सरकार ने मौदहा की जागीर बिन्दकी एवं सिकन्दरा सहित कम्पनी राज्य में विलीन कर लिया। उमराव गिरी को 12000 रु0 और उसके छोटे भाई कन्चनगिरी को रु0 24000 वार्षिक पेन्शन दी

[13] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 210
[14] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 211
[15] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 211

जाने लगी।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हिम्मतबहादुर की धोखाधड़ी एवं गद्दारी जिसके कारण अंग्रेजो को इस क्षेत्र पर नियन्त्रण स्थापित करने मे सफलता मिली थी उसके बदले ईनाम स्वरूप मौदहा राज्य की जागीर गुँसाइयों के हाथ में स्थायी न रह सकी।

बुन्देलखण्ड सम्भाग के जिलों में अधिकांशतः खेती से जीविका अर्जित करने वाले सीमित जमीन वाले किसान थे जो अपनी भूमि पर स्वयं कृषि कार्य किया करते थे[17]। बाँदा जिले के बारे में ड्रेक ब्रोकमैन[18] ने भी इसी विचार का समर्थन किया है। उसके अनुसार **''बाँदा के नवाब की मृत्यु के पश्चात् इस जिले में केवल एक मात्र जमींदार परिवार था जिसे हम पारसराम बहादुर के नाम से जानते हैं जो खड्डी का जागीरदार था किन्तु 1850 में उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसकी जागीर भी ब्रिटिश साम्राज्य में मिला ली गयी।**[19]'' इस सम्भाग मे ब्रिटिश शासनकाल में बाद के वर्षो में कुछ जमीदार परिवार अवश्य अस्तित्व में आए। इनमें से अधिकांश ऐसे लोग थे जिनको ब्रिटिश शासन को प्रेषित उनकी अमूल्य सेवाए एवं वफादारी जो उन्होने 1857 के विद्रोह के समय प्रदर्शित की थी, उसके बदले ईनाम रूप में दी गयी थी। इसके अलावा कुछ ऐसे भी जमींदार थे जो अपने पुराने विशेषाधिकारों के आधार पर जमींदारी प्राप्त किए हुए थे। एक तीसरी श्रेणी और थी इसमें ऐसे लोग थे जिन्होने अंग्रेजी शासन के समय लोगों की सामाजिक, आर्थिक

---

[16] त्रिपाठी के.पी. (बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास) पृष्ठ 212
[17] एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 57
[18] ड्रेक–ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर 1909 पृष्ठ 108
[19] ड्रेक–ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर 1909 पृष्ठ 108

तंगी के कारण उन्हे ऋण देकर अधिक से अधिक ब्याज का अर्जन किया था। ऐसे ऋणदाता ऋण देते समय कर्ज लेने वाले व्यक्ति की भूमि गिरवी रखवा लेता था और निर्धारित अवधि में ऋण की अदायगी न करने के कारण वह भूमि ऋणदाता के हाँथ में चली जाती थी।[20]

खेमीराव चौधरी जो बाँदा जिले के मवई का जागीरदार था उसे मराठा शासन के समय से ही चौधरी की पदवी प्रदान की गयी थी। खेमीराव चौधरी को जालौन के मराठा शासक बालाराव ने 84 गाँव की जमींदारी प्रदान की थी लेकिन अंग्रेजी शासनकाल में इस जमींदार की भी सामाजिक, आर्थिक अवनति के कारण उसका काफी सीमा तक पतन हो गया था।[21]

गन्नू लाल जमींदार :

बाँदा जिले के पुराने जमींदार परिवारों में छतरपुर के गन्नूलाल जमींदार का उल्लेखनीय स्थान है। गन्नूलाल के बारे में यह कहा जाता है कि 1793 ई. में वह छतरपुर से बाँदा आया और तभी से इस जिले में निवास करने लगा। इनका तथा इनके परिवार के लोगों का मुख्य व्यवसाय ऋण का लेन–देन तथा बैंकिग था। इस प्रकार अपने इस व्यवसाय से गन्नूलाल ने रुपया 100000.00 से अधिक की सम्पत्ति अर्जित कर ली थी।[22] गन्नूलाल के बैंकिग व्यवसाय से उसे काफी अधिक लाभ हो रहा था। आश्चर्य यह है कि अंग्रेजी शासन अवधि में गन्नूलाल का बैंकिंग व्यवसाय का भी पूरी तरह पतन हो गया। 1813 मे उसकी आर्थिक स्थिति को और अधिक आघात उस समय लगा जब डकैतों ने उसके घर पर डकैती डाली और रुपया

---

[20] हमफ्रीज, ई.डी. (सेलेटमेण्ट रिपोर्ट, 1909) पृष्ठ 11
[21] ड्रेक–ब्राकमैन डी.एल. ,बाँदा गजेटियर 1909, पृष्ठ 108

42000 लूट लिए।[23] बाँदा जिले से अपने व्यवसाय को नष्ट होता देखकर इस डकैती के दो वर्षों के पश्चात् वह बनारस चला गया जहाँ उसका बैंकिग व्यवसाय चलता रहा। कुछ वर्षों पश्चात् यह जमींदार भी आर्थिक रूप से नष्ट हो गया और दीवालिया घोषित हो गया जिस पर लोगों का रु0 80000 देय था। चूँकि इस जमींदार परिवार की आर्थिक स्थिति नष्ट हो चुकी थी अतः उसके परिवार के अन्य सदस्यों ने ज्योतिष व्यवसाय अपनाकर जीविकोपार्जन किया।[24] इस प्रकार इस भू–भाग में अंग्रेजी शासन का बुरा प्रभाव, पुरानी जमींदारी परिवारों के पतन के रूप में दिखाई पड़ता है।

बाँदा जिले के नए जमींदार परिवार –

1803 में ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में जॉन वेली ने बाँदा पहुँचकर मराठों से कम्पनी सरकार को हस्तान्तरित क्षेत्रों का प्रशासन अपने हाँथ में लिया। अंग्रेजी शासन 1947 तक बुन्देलखण्ड में छाया रहा। इस अवधि में बाँदा जिले में अनेकों ऐसे जमींदार जो मराठों के समय से विशेषाधिकारों का उपयोग करते थे उनका सामाजिक, आर्थिक पतन हो गया किन्तु दूसरी ओर इस अवधि में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण जमींदार परिवार अस्तित्व में आए जिनका अंग्रेजी शासन के पूर्व कोई अस्तित्व नही था। इन्हें हम नए जमींदार परिवार के नाम से पुकारते हैं। इन जमींदारो पर अंग्रेजों की विशेष कृपा थी क्योंकि इन्होने बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन में कम्पनी सरकार को भरपूर सहायता प्रदान की थी। 1857 के विद्रोह के समय जबकि अंग्रेजी हुकूमत डगमगा गयी थी ऐसी नाजुक परिस्थिति में

---

[22]एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 113
[23]एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 113

उन जमींदारों ने अंग्रेज अधिकारियों को गोपनीय सूचनाएँ देकर तथा उन्हें अन्य सहायता देकर इस क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता को बनाए रखने में पूर्ण सहयोग दिया था अतः ऐसे जागीरदारों को ईनाम के तौर पर जागीरें प्रदान की गयी थी। इसके अलावा कुछ ऐसे भी जमींदार परिवार थे जो वंशानुगत आधार पर जमींदार परिवार के होने के नाते विशेषाधिकारों का पूर्ववत उपभोग करते चले आ रहे थे चूँकि इन परिवारों ने अंग्रेजी सत्ता का कोई विरोध नही किया था अतः इनके विशेषाधिकार पूर्ववत चले आ रहे थे।

कर्वी के राव :

कर्वी के प्रशासक राव लोग थे जिन्होने 1857 के विद्रोह में अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध खुलेआम भाग लिया था।[25] वंशानुगत दृष्टि से कर्वी के राव पूना के पेशवाओं से सम्बन्धित थे। 14 अगस्त 1803 के एक समझौते के अनुसार[26] कर्वी के जागीरदार अमृतराव (अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय का भाई) ने सात लाख रुपये की वार्षिक पेन्शन तथा बाँदा जिले में जमींदारी अंग्रेजी सरकार से मिली हुई थी। अमृतराव का निवास स्थान कर्वी ही था। उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्र विनायक राव हुआ जो पूर्ववत पेन्शन प्राप्त करता रहा किन्तु 1853 में उसकी मृत्यु हो जाने के बाद यह पेन्शन भी जब्त कर ली गयी। यद्यपि उसके दो जीवित पुत्र नारायणराव और माधवराव थे जिन्हे मृत जमींदार द्वारा गोद लिया गया था किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य ने इसे मान्यता नही दी और साम्राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला

[24] एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 113
[25] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1909, पृष्ठ 399
[26] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1909, पृष्ठ 399

लिया गया।[27]

नारायण राव और माधवराव ने इन्ही कारणों से 1857 के विद्रोह में सक्रिय हिस्सा लिया। नारायण राव को इस विद्रोह में भाग लेने के कारण आजीवन कारावास की सजा दी गयी थी किन्तु बाद में गर्वनर ने इस सजा को कम करते हुए उसे ब्रिटिश प्रशासन की निगरानी मे रखते हुए हजारीबाग भेज दिया गया जहाँ 1860 में उसकी मृत्यु हो गयी।[28] माधवराव की कम उम्र होने के कारण उसकी सजा को माफ कर दिया गया अतः ब्रिटिश सरकार ने माधवराव तथा उसके दोनो पुत्रों को शिक्षा देने के लिए बरेली भेज दिया और बाद में इनको रु0 25000 की वार्षिक पेन्शन अनुबन्ध कर दी गयी।[29]

बाँदा के कलेक्टर मैन ने अपने सद्प्रयासों से कर्वी जागीर तथा वहाँ के राजा का पदनाम श्रीमन्त, राव बलवन्त राव हरी जोग को प्रदान किया। जोग, विनायकराव की एक मात्र पुत्री का पुत्र था जिसे विनायकराव ने गोद ले लिया था। उसने ब्रिटिश शासन के प्रति वफ़ादार रहते हुए कर्वी क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने में अंग्रेजी शासन की सहायता की। 1902 में इसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका गोद लिया हुआ पुत्र उत्तराधिकारी बना जिसे पूर्ववत जमींदार की पदवी तथा कर्वी की जागीर प्रदान की गयी।[30] अंग्रेजी शासनकाल तक कर्वी जागीर में छीबों परगने का आधा तथा कर्वी का पूरा क्षेत्र शामिल था।

---

[27] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1909, पृष्ठ 399
[28] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1909, पृष्ठ 350
[29] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1909, पृष्ठ 350
[30] इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1909, पृष्ठ 108 तथा ड्रैकब्रॉक मैन 0.2

खानदेह के दुबे जमींदार –

बाँदा जिले का अन्य महत्वपूर्ण जमींदार परिवार खानदेह से आए हुए दुबे लोगों का था। परम्परा के अनुसार बाँदा जिले में दुबे का परिवार लगभग 1718 ई0 में आया।[31] इस परिवार की बढ़ती हुयी आय तथा प्रभाव के कारण बाँदा परगनें का नाम ही खानदेह के परगने के नाम से रख दिया। इस परिवार के सबसे बड़े उद्यमी हत्ते दुबे थे जिन्होने ऋण के लेन–देन का कारोबार कर बहुत बड़ी सम्पत्ति अर्जित कर रखी थी। तत्कालीन परिस्थिति मे जबकि जिले के किसान राजस्व की बढ़ी हुयी दरो तथा प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित होने के कारण आर्थिक तंगी में थे तब हत्ते दुबे ने लोगों को ऋण देकर अधिक से अधिक ब्याज ही नही वसूल नही किया बल्कि जमीन गिरवी रखने के बाद जब किसान समय से उसे छुड़ा नही सके तब यह भूमि दुबे जमींदारों के हाथ आ गयी और यह नया धनाड्य वर्ग इस जिले में महत्वपूर्ण जागीरदार के रूप मे उभरा।[32] 1881 के बन्दोबस्त के समय यह पता चला कि दुबे जमींदारों की भूमि सम्बन्धी जायदाद लगभग 37452 एकड़ में फैली थी। इस प्रकार दुबे इस जिले के महत्वपूर्ण जमींदार के रूप में विकसित हुए लेकिन अंग्रेजी शासन के दुष्प्रभावों से इतना बड़ा जमींदार परिवार भी अप्रभावी नही रहा और दुबे लोगों की सम्पत्ति भी निरन्तर नष्ट होती गयी। उन्नसीवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनका आर्थिक पतन तेजी से होने लगा। आगामी वर्षो में परिवार बढ़ने से पैतृक वंशानुगत सम्पत्ती का विभाजन होने लगा तथा भूमि सम्बन्धी पारिवारिक झगड़े होने लगे फलतः दुबे जमींदारों की वह स्थिति नही रही जो होनी चाहिए थी।

---

[31] Cadall A., Settlement Report, Banda, 1881, P-25

[32] Cadall A., Settlement Report, Banda, 1881, P-25-26

गिरवाँ के चौबे तथा नरैनी के ठाकुर दीन दयाल पाठक :

गिरवाँ के चौबे परिवार की जमींदारी गढ़ाकलाँ में स्थित थी। यह जमींदारी 1857 के विद्रोह के समय ब्रिटिश शासकों को पहुँचाई गयी सहायता के कारण प्राप्त हुई थी। इसके साथ ही साथ चौबे जागीरदारों ने क्रमशः अपनी जागीर का विस्तार कर लिया था जो 1878 तक आते–आते 26030 एकड़ के दायरे मे फैली हुई थी लेकिन अंग्रेजी शासनकाल में इस क्षेत्र में पड़े अकालों तथा प्राकृतिक दुष्प्रभावों के कारण अन्य जमींदारों की भाँति गिरवाँ के चौबे जमींदार परिवार के लिए भी कष्टदायी साबित हुई। प्राकृतिक आपदाओं के कारण और पारिवारिक झगड़ों के परिणााम स्परूप इस जागीर का भी पतन होने लगा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जमींदारों की शानो–शौकत, फिजूलखर्ची तथा बुरी आदतों के कारण भी उनका आर्थिक रूप से पतन हुआ।

उपरोक्त के अलावा कुछ ऐसे भी लोग थे जिनको 1857 के विद्रोह में सरकार को दी गई सेवाओं के आधार पर इनाम स्वरूप जागीर प्रदान की गई थी। इनमें नरैनी के ठाकुर दीनदयाल पाठक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्हें गिरवां में जागीरदारी प्रदान की गयी थी। इसके अतिरिक्त बाद वाले वर्षो में दूसरों की जमीन खरीदकर 11254 एकड़ तक अपनी जमींदारी का विस्तार कर लिया था। ठीक इसी तरह बदौसा तहसील के रक्शी गाँव के तिवारियों ने 11245 एकड़ भूमि अर्जित कर ली थी जो निःसन्देह ऋण के लेन–देन के फलस्वरूप अर्जित किया गया था।[33]

बाँदा के सेठ किशनचन्द्र –

इस जिले में सबसे महत्वपूर्ण जमींदार सेठ किशनचन्द्र थे जो 1857 के पहले बाँदा के सबसे बड़े बैंकची थे।[34] सेठ किशनचन्द्र ने ब्रिटिश राज के प्रति वफादारी का प्रदर्शन करते हुए 1857 के विद्रोह के समय सरकार की भरपूर सहायता की थी। इनके प्रारम्भिक इतिहास के बारे में यह ज्ञात होता है कि 1857 के विद्रोह के अनेकों वर्षों पूर्व किशनचन्द्र सेठ का परिवार गुजरात से आकर बाँदा जिले में रहने लगा था। विद्रोह के समय वफादारी के लिए पारितोषिक के रूप में पैलानी परगनें में किशनचन्द्र को एक गाँव प्रदान किया गया था।[35] इसके बाद के वर्षों में किशनचन्द्र ने ऋण के लेन–देन का व्यवसाय चालू करते हुए अपनी जमींदारी का तेजी से विस्तार किया। 1878 तक आते–आते इस परगने की 26422 एकड़ जमींन इसके हँाथ में आ चुकी थी। इनमें से अधिकांश भूमि बदौसा और गिरवाँ परगने में स्थित थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऋण के लेन–देन का व्यापार इतना विकसित हुआ कि इस जमींदार ने इस जिले के काफी क्षेत्रफल पर अपना अधिकार कर लिया लेकिन प्राकृतिक आपदाओं के दुष्परिणाम से सेठ किशनचन्द्र भी नष्ट होने लगे फलतः उनका व्यवसाय सिमटता गया और उनकी अधिकांश भूमि नीलाम हो गई।[36] परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ जाने के कारण भूमि में बँटवारे के कारण विवाद बढ़ने लगे और इस प्रकार बुन्देलखण्ड का यह गुजराती परिवार भी आर्थिक रूप से पतन की ओर आ गया।

---

[33] एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 113 तथा इम्पीरियल गजेटियर (वही) पृष्ठ 114
[34] ड्रेक ब्रॉक मैन डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 25
[35] एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 113 तथा इम्पीरियल गजेटियर (वही) पृष्ठ 114
[36] ड्रेक ब्रॉक मैन डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 109

अन्य जमींदार –

बाँदा जिले मे सेठ किशनचन्द्र के अलावा अन्य जमींदार भी थे जिन्हे विद्रोह के समय सरकार के प्रति वफादार होने के कारण जागीरें प्रदान की गई थीं इनमें कुछ ऐसे भी परिवार थे जिन्होने ऋण का लेन–देन करते हुए, जमीन गिरवी रखते हुए बाद में उसे अपने नियन्त्रण में ले लिया था। इसी तरह बाँदा के उत्तमराम (जिनके पिता 1857 में बाँदा के कोषाधिकारी थे) जमींदार के रूप में उल्लेखनीय स्थान बना लिया था। उत्तमराम को भी वफादारी के कारण एक गाँव की ज़मींदारी प्राप्त हो गयी थी। इसके अतिरिक्त सरकार से अनुमति लेकर पचनेही कस्बा खरीद लिया था।[37] 1857 के पश्चात् उत्तमराम ने ऋण के लेन–देन का व्यवसाय चलाकर काफी भूमि क्रय कर ली थी यह भूमि पैलानी को छोड़कर अन्य परगनों में फैली हुई थी।

इसी तरह बबेरू के रस्तौगी जिले के उल्लेखनीय जमींदार थे। इस परिवार के मुखिया जगन्नाथ प्रसाद रस्तोगी थे जो फतेहपुर से बाँदा आ गए थे यहाँ के मूल निवासी न होने के बावजूद भी रस्तौगी परिवार ने 1857 के विद्रोह के समय जब क्रान्तिकारी बबेरू तहसील कार्यालय को जला रहे थे और उसे लूट रहे थे उस समय इन क्रान्तिकारियों को लूटने से रोकने का महत्वपूर्ण कार्य रस्तौगी परिवार ने किया। इस वफादारी के कारण ब्रिटिश सरकार ने जगन्नाथ परिवार की सराहना करते हुए बबेरू में एक बड़ा गाँव ईनाम के रूप मे दे दिया। बाद में इसमें वृद्धि करते हुए रस्तौगी परिवार ने 13559 एकड़ तक इसका विस्तार कर लिया।[38]

[37] ड्रेक ब्रॉक मैन डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 25
[38] ड्रेक ब्रॉक मैन डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110–111

उपरोक्त के अतिरिक्त बाँदा जिले मे कुछ ऐसे कायस्थ परिवार भी थे जिन्हे अंग्रेजी शासन में जमींदारी दी गयी थी। वास्तव में इन कायस्थ जमींदारो ने 1857 के विद्रोह के नाजुक समय में अंग्रेजी प्रशासन का साथ दिया था अतः ईनाम के रूप में इन्हे जागीरें दी गयी। इस श्रेणी में जादवराम कायस्थ प्रमुख थे। उन्हे जो जागीर मिली थी उसे 1858 के बाद वाले समय में विस्तृत किया गया। यह स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध आर्थिक तंगी और प्राकृतिक आपदाओं से भरा पड़ा था जिनसे बाध्य होकर रैयत (किसान) ने अपनी भूमि ऋण के बदले गिरवी रखना प्रारम्भ कर दिया था। ब्याज अधिक हो जाने के कारण जब यह भूमि रैयत द्वारा नही छुड़ायी गयी तो ऋणदाता स्वतः इसका मालिक बन बैठा। ऋण के इस व्यवसाय से जादवराम कायस्थ ने अपनी जमींदारी का पर्याप्त विस्तार कर लिया था और 1881 के बन्दोबस्त के समय इस परिवार की जमींदारी 24891 एकड़ तक फैली हुयी थी। इनमें से अधिकांश भूमि गिरवाँ और बदौसा तहसील में थी।[39] 1909 तक आते–आते इस जागीर का उत्तराधिकारी बाबू गनेश प्रसाद बन चुके थे किन्तु उनके नियन्त्रण में इस जागीर का विघटन होने लगा और आपसी विवादों के कारण यहाँ कोर्ट द्वारा नियन्त्रक नियुक्त कर दिए गए।[40] ठीक इसी तरह एक अन्य कायस्थ परिवार जो लगभग इसी श्रेणी में था। वह तिरछी का कायस्थ परिवार था जिसके पास 1878 में 12446 एकड़ भूमि की जमींदारी थी यह भूमि पैलानी तहसील में स्थित थी। अन्य जमींदार परिवार की ही भाँति अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय ऋण के व्यवसाय से तिरछी के कायस्थ परिवार ने अनेको एकड़

[39] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110
[40] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110

भूमि खरीद ली। वास्तव में इस परिवार के पूर्वज कानूनगो थे।[41] जिनके पास नवाबों के समय से ही जागीरदारी थी लेकिन अन्य जागीरदारों की भाँति कृषि के पतनोन्मुख होने के कारण तथा व्याप्त आपदाओं के परिणामस्वरूप कायस्थों की जमींदारी का भी पतन हो गया। 1909 में ड्रेक ब्रॉक मैन[42] ने यह लिखा था कि **''इस कायस्थ जमींदार के अधीन जो गाँव थे उन्हें इसलिए नीलाम करना पड़ा क्योंकि इसकी भूमि का राजस्व अदा नही किया गया था, यहाँ तक कि दो ऐसे गाँव जो उन्हे राजस्व माफी मे दिए गए थे उसका भी एक तिहाई भाग इस परिवार द्वारा बेंच दिया गया।**[43]'' इस तरह कायस्थ जमींदारों की भी वही दुर्गति हुई।

मुस्लिम जमींदार –

बाँदा जिले में नवाबों के समय से ही कुछ मुस्लिमों को जागीरे प्रदान की गयी थी। शेख युसुफ उज्जमा और फहीम उज्जमा इसी श्रेणी के प्रारम्भिक दीवानों के वंशज थे जो बुन्देलखण्ड एजेन्सी के महत्वपूर्ण जमींदार थे।[44] नवाबों के शासन के समय इस परिवार ने प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लिया था। इनकी समृद्धि के कारण ही आम बोलचाल की भाषा में इन शेख जमींदारों को 'नोटवाला' कहकर पुकारा जाता था। इनकी अधिकांश जमीन बाँदा, पैलानी, बबेरू और कमासिन में स्थित थी। 1881 में राजस्व प्रबन्ध के समय बन्दोबस्त अधिकारी कैडेल ने लिखा था[45] कि **''केवल पैलानी तहसील में हीं इस परिवार के पास 25929 एकड़ जमीन थीं। 1857 के विद्रोह के पश्चात् भूमि के इस क्षेत्र में और विस्तार किया गया। शेख**

---

[41] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110
[42] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110
[43] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110–111
[44] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 110–111

उज्जमा आनरेरी मजिस्ट्रेट के रूप में बाँदा में निवास कर रहे थे लेकिन अन्य जमींदारों की ही तरह इनकी भी जमींदारी का विघटन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ फलतः इस शेख परिवार ने हरदोई जिले में सैण्डीला नामक कस्बे में निवास करना प्रारम्भ कर दिया।[46] " अन्य जमींदारों में नत्थे खाँ के उत्तराधिकारियों का उल्लेख आता है जिनके पास बाँदा और बदौसा तहसीलों में 7720 एकड़ भूमि थी। नत्थे खां सहारनपुर जिले के रमखण्डी गाँव का एक मुस्लिम राजपूत था जिसके परिवार के अनेकों सदस्य बाँदा नवाब की सेवा में थे। 1857 के विद्रोह के पूर्व ही नत्थे खां ने अनेकों एकड़ जमीन क्रय कर ली थी किन्तु दूरदर्शिता का परिचय देते हुए विद्रोह के समय अंग्रेजों का विरोध न करते हुए शान्तिपूर्वक समय व्यतीत किया। उसके इस तटस्थ रवैये के कारण उसके भाई की जो भूमि विद्रोही होने के कारण अंग्रेजों ने जब्त कर ली थी। उसे भी नत्थे खां को दे दी गयी थी।[47]

नासिर अली चपरा बुन्देलखण्ड एजेन्सी का अन्य प्रमुख मुस्लिम जमींदार था जो प्रारम्भिक समय से दीवान के पद पर कार्यरत था।[48] कैडेल ने यह अनुमान किया था कि नासिरअली तथा उसके परिवार के पास लगभग 25369 एकड़ भूमि की जमींदारी थी।[49] यह जमींदारी मुख्यतः बाँदा नगर और कर्वी तहसील में स्थित थी। 1909 में ड्रेक ब्रॉक मैन[50] ने लिखा था कि "दीवान नासिर अली दरवेश और विलायत अली नामक दो मित्रों के साथ नवाब के समय से ही प्रभावशाली पद पर विद्यमान थे और अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए उन्होने उस जिले में पर्याप्त

---

[45] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 111
[46] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 111
[47] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) पृष्ठ 108 तथा कैडेल (वही) पृष्ठ 112
[48] कैडेल, ए., सेटिलमेण्ट रिपोर्ट 1881, पृष्ठ 27
[49] कैडेल, ए., सेटिलमेण्ट रिपोर्ट 1881, पृष्ठ 27

जमीन प्राप्त कर ली थी।[51]" किन्तु इस मुस्लिम जमींदार परिवार का भी अंग्रेजी शासनकाल में पतन हुआ।

1881 के राजस्व प्रबन्ध के समय बाँदा जिले के महत्वपूर्ण जमींदार निम्नवत थे।[52]

	Area in Acres held in each pargana					
	Banda	Pailani	Augasi	Sihonda	Badausa	Total
Chandi devi & Dubes of Khandeh	34845	65	995	1209	339	37452
Seth Kishan Chand of Banda	3571	1334	742	9545	11230	26422
The chaubes of Gurha & His uncle	2594	---	---	16727	6709	26030
Shekh Yushuful Zaman of Banda	5909	8296	11724	---	---	25929
The family adovam kayasth of banda	---	---	---	23061	1830	24891
Badrinath Dixshits of Banda	---	18861	---	---	---	18861
Saligram Sonar of Cawnpur	---	12365	2897	1113	---	15262
Jagan nath Prasad Rastogi of Baberu	171	10326	1949	---	---	12446
Madho Prasad Kayasth of tirehi	171	10326	1949	--	---	12446
Thakurbin Pathak of narani raksi	---	---	---	10385	869	11254
Gaya Prasad of Tiwaris of raksi	---	---	---	740	10505	11242
Family of ulinram to banda	3245	---	2968	1501	2528	10242
Shambhunath & Sons of Kanwarnath khan	1890	2293	---	---	5359	9542
Diwan khan & Chiers ot kanwar nath khan	1351	---	---	---	6369	7720
Rep. Of Diwan nasifali of chapra	2587	5959	10619	6204	---	25369
Total	46163	59498	45453	69372	45738	276224

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि इस जिले की सबसे बड़ी जमींदारी खानदेह के दुबे लोगों की थी, दूसरे स्थान पर सेठ किशनचन्द्र, तीसरे स्थान पर गुड़हा के चौबे जागीरदार और चौथे स्थान पर शेख युसुफउज्जमा तथा पाँचवे स्थान पर जादोराम कायस्थ प्रमुख जमींदार थे। इन जमींदारों के सामाजिक, आर्थिक विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इनकी स्थिति निरन्तर गिरती गयी और भूमि का क्षेत्रफल क्रमशः घटता गया। इसका कारण यह था कि समय-समय पर पड़ने वाले अकालों तथा अन्य प्राकृतिक

[50] बाँदा गजेटियर, (वही) पृष्ठ 112
[51] बाँदा गजेटियर, (वही) पृष्ठ 112
[52] कैडेल, ए., सेटिलमेण्ट रिपोर्ट 1881 (वही), पृष्ठ 32

आपदाओं से कृषि की स्थिति सोचनीय होती जा रही थी वही दूसरी ओर अंग्रेजी शासन से किसी भी प्रकार की राजस्व में रियायत नही मिल रही थी, अतः इनका पतन होता गया।

झाँसी जिले के प्रमुख जमींदार :

बाँदा की तरह झाँसी में भी अधिकांश संख्या उन किसानों की थी जिनके पास भूमि अधिक नही थी। प्रायः किसान अपनी खेती स्वयं करते हुए जीविकोपार्जन करते थे।[53] ललितपुर जो उस समय तक झाँसी जिले का सब डिवीजन था, वहाँ स्थिति भिन्न थी। ललितपुर सब डिवीजन में बुन्देला ठाकुर जो ओरछा तथा रियासत के राजाओं के वशंज थे वे अपना प्रभाव बनाए हुए थे।[54]

झाँसी जिले के महत्वपूर्ण जमींदार परिवारों मे गुरसराँय और कटेरा के जमींदार ककरबई के राव, चिरगाँव के रईस तथा धमना के दीवान मनसबदार प्रमुख थे, लेकिन गुरसराँय को छोड़कर शेष सभी बुन्देला जमींदार थे जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे आर्थिक तंगी से प्रभावित होकर पतन के कगार पर आ गए।[55]

गुरसराँय की रियासत :

गुरसराँय रियासत में 64 गाँव शामिल थे जिनमें 18 गाँव मोठ तहसील में तथा शेष गरौठा में शामिल थे।[56] यह रियासत लगभग 155 वर्ग मील में फैली हुई

[53] पिम, ए. डब्ल्यू. (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 8 तथा जेनकिन्सन, ई.जी. (झाँसी सेटिलमेण्ट रिपोर्ट इलाहाबाद 1878, पैरा 119 – 128)
[54] पिम, ए. डब्ल्यू. (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 8
[55] पिम, ए. डब्ल्यू. (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 8
[56] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 102

थी।[57] यहाँ का प्रमुख डेकेन ड्रा महाराष्ट्र का एक ब्राम्हण परिवार था जो पेशवा बाजीराव प्रथम के बुन्देलखण्ड अभियान के समय 1729 मे इस क्षेत्र में आया था। 1761 के पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय के पश्चात् बुन्देलखण्ड में मराठा नियन्त्रण कमजोर होने लगा 1776 में मराठा जमींदार बालाराव को गुरसराँय का क्षेत्र मिला।[58] बालाराव का उत्तराधिकारी दिनकर राव अन्ना हुआ किन्तु 1831 में उसकी भी मृत्यु हो गयी। 1857 के विद्रोह में यहाँ के मराठा जमींदार ने अंग्रेजों की भरपूर सहायता की और जिस समय झाँसी की रानी और बाँदा के नवाब अनेकों विद्रोहियों के साथ कालपी में आगामी अभियानों की योजना बना रहे थे उस समय पूँछ पर गुरसराँय के मराठा जमींदार ने ब्रिटिश सरकार की ओर से अपने 300 सैनिकों के साथ घेरा डाले हुए था।[59] उसके इस कार्य से विद्रोही इतने असन्तुष्ट थे कि थोड़े दिनों पश्चात् गुरसराँय के मराठा जमींदार को विद्रोहियों द्वारा अपमानित होना पड़ा और 1500 सशस्त्र विद्रोही सैनिकों और 200 घुड़सवारों के साथ विद्रोहियों ने गुरसराँय पर आक्रमण कर दिया।[60] 1866 में अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर ने आत्माराम को गुरसराँय स्टेट की आधी जमींदारी देते हुए उसे राजा का पद प्रदान किया शेष आधे भाग में पाँच अन्य भाइयों का बँटवारा किया गया।[61] 1894 में आत्माराम की मृत्यु हो गयी अतः सन्धि की शर्तो के अनुसार गुरसराँय की रियासत अंग्रेजी नियन्त्रण में आ गयी।[62] 1895–1902 तक यह रियासत अंग्रेजी नियन्त्रण मे ही बनी रही, किन्तु पारिवारिक विवादों के निपटारे के पश्चात गुरसराँय की

---

[57] पिम, ए. डब्ल्यू, (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 8

[58] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 100

[59] पिनकने वीकली रिपोर्ट, लेटर नं0 172, 16 मई 1858

[60] पिनकने वीकली रिपोर्ट, लेटर नं0 217, 15 जून 1858

[61] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 101

जमींदारी बालकृष्णराव भाउ साहब को दे दी गयी।[63]

प्रमुख बुन्देला जमींदार –

गुरसरॉय की मराठा रियासत के अतिरिक्त झाँसी जिले में बुन्देला जमींदार महत्वपूर्ण थे। परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप में ओरछा के बुन्देला वंश से इन जमींदारों का सम्बन्ध था। इनमें से अधिकांश को 1857 में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के सहायता के रूप में ईनाम स्वरूप में जागीरें दी गयी थी,[64] किन्तु कुछ ऐसे भी जागीरदार थे जिनकी जागीरी परम्परागत रूप से चली आ रही थी क्योंकि ये ओरछा नरेश वीरसिंहदेव के वंशज थे।

कटेरा की जागीर –

कटेरा की जागीर वीरसिंह देव के वंशज सोनपतसिंह को मिली थी। प्रारम्भ मे सोनपत के वंशजों को अपने पारिवारिक खर्च तथा उनके उत्तराधिकारियों के लिए यह जागीर दी गयी थी[65] लेकिन 1857 के विद्रोह में ब्रिटिश हुकूमत को दी गयी सहायता के कारण यहाँ के जागीरदार को रु0 5000 की खिल्लत और राजाबहादुर की पदवी प्रदान की गयी।[66] इस जागीर में 8 गाँव पूर्णरूपेण तथा तीन गाँव ऐसे भी थे जिनमें आधा हिस्सा कटेरा जागीरदार को प्राप्त थी। 1862 में सोनपत की मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी राजा रणमस्त सिंह हुआ लेकिन 1877 में उसकी भी मृत्यु हो गयी। 1880 में सरदार सिंह इस जागीर का उत्तराधिकारी हुआ क्योंकि परिवार द्वारा नामित बलवन्त सिहं को परिवार के संदस्यों ने स्वीकार नही किया।

---

[62] पिम, ए. डब्ल्यू, (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 15

[63] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 101–102

[64] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 120

[65] जेनकिन्सन, ई.जी., (वही), पैरा 119–128

1892 के बन्दोबस्त के समय बन्दोबस्त अधिकारी .इम्पे और मेस्टन ने लिखा था "**यद्यपि अन्य बुन्देला जागीरदारो की तरह कटेरा के भी जागीरदार अपनी शान–शौकत और प्रभाव तथा दिखावे को बनाए रखने के लिए यह समझते थे कि किसी भी प्रकार का कृषि सम्बन्धी कार्य उनकी शान–शौकत के खिलाफ है और उनका काम केवल उनकी भूमि पर कार्य करने वाले लोगो को आर्डर देना ही है, लेकिन सरदार सिह बहादुर जो उस समय कटेरा के जमींदार थे वे अपवाद स्वरूप थे। अतः वे अपनी जागीर की पूरी देखरेख करते हुए उसके प्रबन्धन से भलीभाँति परिचित थे।**[67]" इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जहाँ अन्य बुन्देला जागीरदारों की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी। वहीं कटेरा के जमींदार अपनी भूमि का प्रबन्धन करते हुए अपनी भूमि का आर्थिक सुधार किया।

ककरबई के राव –

ककरबई मे बुन्देला जागीर थी जो वहाँ के राव को दी गयी थी। राव अर्जुन सिह जिन्हे ककरबई के राव के नाम से पुकारा जाता है, को यह जागीर उनके जीवनकाल के लिए दी गयी थी क्योंकि उन्होने 1857 के विद्रोह में अंग्रेजी सरकार की सहायता की थी।[68] ककरबई की जागीर पूर्व में ओरछा नरेश वीरसिंह देव द्वारा अपने वंशज को दी गयी थी। परिवार के सदस्यों की वृद्धि के कारण ककरबई का बँटवारा तीन हिस्सों में कर दिया गया। 1742 में झाँसी के मराठा गर्वनर नारून शंकर ने ओरछा के राजा को हराकर ककरबई की जागीर पर अपना अधिकार कर

---

[66] एटकिन्सन, ई.टी. (वही), पृष्ठ – 277
[67] इम्पे, डब्ल्यू एच.एल, एण्ड मेस्टन, जे.एल. (वही) पृष्ठ 28
[68] G.O. No. 437, 28 May 1860, एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 277

लिया। फलतः इस जागीर के 56 गाँवों में से 26 गाँव नारूनशंकर ने स्वयं रख लिए और एक गाँव जिसे गहरौनी के नाम से जाना जाता है उसे ककरबई के धर्मगुरू को दे दिया था किन्तु बाद मे नारूनशंकर ने उससे यह गाँव छीन लिया। अतः केवल 13 गाँव ककरबई जागीर में शेंष बचे। यहाँ के जागीरदार की आर्थिक स्थिति निरन्तर गिरती चली गयी क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं के परिणाम से अन्य बुन्देला जागीरदारों की तरह ककरबई के राव भी प्रभावित हुए।

चिरगाँव और धमना की जागीरे –

चिरगाँव और धमना की जागीरें भी बुन्देला जमींदारों को 1857 के विद्रोह के समय अंग्रेजों की मदद के उपलक्ष्य में दी गयी थी। वास्तव में चिरगाँव की जमींदारी वीरसिंह देव के वंशजों को दी गयी थी।[69] इस जागीर को 'अष्ट भैया' जागीर के नाम से पुकार जाता है क्योंकि इसमें आठ जमींदारों का हिस्सा था।[70] इन सभी को ब्रिटिश सरकार ने सनदें दी थी। चिरगाँव जागीर में 26 गाँव थे जिसका वार्षिक टैक्स रु0 7000 नानासाई रुपया था। 1841 में राव बक्श सिंह ने सरकारी आदेश का प्रतिरोध किया थां अतः पनवाड़ी में उनकी हत्या कर दी गयी और उसके उपरान्त उनका हिस्सा ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया।[71] छीने गए गाँवों को सरकार ने शेष जमींदारों में बाँट दिया।[72] राव बक्श सिंह के पुत्रों को रु0 200 प्रति महीने जीवन पर्यन्त पेन्शन दे दी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहाँ के जमीदारों को भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा

[69] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 278
[70] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 278
[71] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 278
[72] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 278

फलतः 1874 को रघुनाथ राव को अपने कुछ गाँव गिरवी रखने पड़े।[73]

धमना जागीर, दीवान मनसबदार और राव परीक्षित बुन्देला ठाकुरों को दी गयी थी[74] चूँकि राव परीक्षित ने 1857 में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था अतः सरकार ने उसका हिस्सा छीनकर दीवान मनसबदार को दे दिया था क्योंकि इसने 1857 के विद्रोह में ब्रिटिश सरकार की मदद की थी।

ललितपुर सबडिवीजन के जमींदार –

ललितपुर सबडिवीजन में बुन्देला जमींदार झाँसी की तुलना में अधिक प्रभावशाली थे। इस सबडिवीजन में अधिकांश जागीरें बुन्देला ठाकुरों के पास थी। 1903 में[75] झाँसी जिले के बन्दोबस्त के समय राजस्व अधिकारी ने लिखा था कि **''सबडिवीजन ललितपुर में जाखलौन के बुन्देला ठाकुर सबसे मजबूत जमींदार हैं जिनकी दो शाखाएं हैं। इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली रजवारा, दरबारा, ग्योरा और गुण्डेरा के जागीरदार है। इसके अलावा शिरशी के महन्त ललितपुर के चौबे, चन्देरी के चौधरी और बमराना के सेठ भी उल्लेखनीय जमींदारो की श्रेणी मे आते हैं। अधिकांश बुन्देला ठाकुरों को अंग्रेज सरकार ने इसलिए जागीरें प्रदान की थी क्योंकि उन्होने 1857 के विद्रोह में विदेशी शासन की सहायता की थी।''** इसके अलावा ऐसे भी जमींदार थे जिन्हे हक्–बटोटा[76] सन्धि के द्वारा भूमि प्रदान की गयी थी।

हक्–बटोटा –

हक्–बटोटा दो प्रकार की सन्धियाँ थी जो 1830 एवं 1838 में ग्वालियर के

---

[73] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 278
[74] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 278
[75] पिम, ए. डब्ल्यू. (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 9

राजा सिन्धिया के प्रभाव से की गयी थी।[77] 1811 में सिन्धिया ने चन्देरी पर इसलिए आक्रमण कर दिया था क्योंकि वहाँ के बुन्देला ठाकुर सिन्धिया के विरूद्ध विद्रोह कर रहे थे।[78] उन दिनों चन्देरी में मूल प्रहलाद शासक था, जिसने सिन्धिया की सेनाओं का सामना किया लेकिन भयवश मूल प्रह्लाद अपने परिवार सहित झाँसी भाग आया, उसकी अनुपस्थिति में तख़त सिंह और अमरावसिंह नामक दो बुन्देला सामन्तों ने चन्देरी किले की रक्षा का प्रयास किया[79] किन्तु सिलगाँव (ललितपुर से 3 मील उत्तर) के ठाकुर बोधसिंह द्वारा सिन्धिया से मिल जाने के कारण चन्देरी किले पर ग्वालियर की सेना का अधिकार हो गया।[80] अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए सिन्धिया ने मूल प्रहलाद से हक्–बटोटा सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए जिससे ऐसे ठाकुरों को ईनाम के रूप में जागीरें दी जा सके जिन्होने चन्देरी की विजय में सिन्धिया का साथ दिया था।[81]

सन्धि की शर्तो के अनुसार इसमें शामिल प्रत्येक जागीरदार को हिस्सा निर्धारित करते हुए भूमि प्रदान की गयी। कुछ समय पश्चात् ऐसे गाँवो की सूची तैयार कर प्रकाशित की गयी जिनमें इस सन्धि के अन्तर्गत आने वाले ठाकुरों को हिस्सा दिया गया। यह जागीरें ईनाम के रूप में थी जिनका राजस्व माफ था।
उपरोक्त जागीरों के अलावा नारहट, सिन्दवाह, गुना और डोंगराकला के बुन्देला जागीरदार भी महत्वपूर्ण और प्रभावशाली थे।[82]

---

[76] पिम, ए. डब्ल्यू, (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 9
[77] पिम, ए. डब्ल्यू, (फाइनल सेटिलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, 1907 पृष्ठ 9
[78] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 352
[79] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 352
[80] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 352
[81] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104
[82] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104

पाली और जाखलौन के जागीरदार :–

ललितपुर सबडिवीजन में पाली (परगना बालाबेहट) और जाखलौन अत्यन्त महत्वपूर्ण जागीरें थीं। पाली (परगना बालाबेहट) राजा जोरावर सिंह के वंशज थे।[83] उनके पिता दुर्जन सिंह 1713–58 तक चन्देरी के राजा थे। जोरावर को अपने पिता की ओर से पाली की जागीर मिली थी। 1780 के बाद मराठों ने इन जागीरदारों की सनदें जब्त कर ली थी किन्तु बाद में चन्देरी के राजाओं ने उसे पुनः प्राप्त कर लिया।[84] हक्–बटोटा सन्धि 1830 के द्वारा 17 गाँवों को छोड़कर पूरी जागीर को जब्त कर लिया गया।[85] कुछ समय पश्चात् सिन्धिया ने बुन्देला जमींदार को पाली की जागीर पुनः सौंप दी।

जाखलौन के बुन्देला जमींदार बार के राजाराम शाह के वंशज थे।[86] 1643 में रामशाह ने रु0 75000 मूल्य की जागीर अपने पौत्र रावकृष्णाराव को दे दी। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने मुकुन्दसिंह को दीवान की पदवी और 58 गाँवो की जागीर ललितपुर के दक्षिण–पश्चिम में स्थित परगना इटवा मे दिया था क्योंकि उसके पिता उदयभान मुगलों की ओर से लड़ते हुएं काबुल मे मारे गए थें।[87] मुकुन्द सिंह बाँसी के जागीरदार रावकृष्णराव के पौत्र थे। उनका एक पुत्र नारायणजू जो पाली जागीर के उत्तरी हिस्से का मालिक था वह दतिया के निकट 1738 में लड़ते हुए मारा गया था। नारायणजू की मृत्यु के बाद पाली जागीर धर्मंगल सिंह को मिली किन्तु 1794 में उनके चार बेटों में इसका विभाजन हो गया।

---

83 ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104
84 ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104
85 ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104
86 ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104
87 ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 104

अन्य जमींदार :

ललितपुर सब डिवीजन मे उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेखनीय जमींदार थे जिनको वंशानुगत आधार पर जागीर प्रदान की गयी थी अथवा अंग्रेज सरकार की महत्वपूर्ण सेवाओं के बदले कुछ गाँव जागीर के रूप में दिए गए थे। इनमें चन्देरी के चौधरी और कानूनगो थे जो मराठों के समय मे वंशानुगत रूप से राजस्व वसूल करने का काम करते थे।[88] इन सेवाओं के बदले उन्हे वेतन न देकर राजस्व मुक्त जागीरे दी गयी थी। यह प्रथा मराठों के समय से प्रारम्भ की गयी थी। 1874 में एटकिन्सन ने लिखा था ''**ऐसे चौधरी और कानूनगो के पास लगभग साढ़े नौ गाँव की जमींदारी थी और इसके अलावा भूमि के कुछ हिस्से उनकी सेवाओं के बदले राजस्व वसूली की पारिश्रमिक के रूप में दिए गए थे।**'' उल्लेखनीय यह है कि इस जमींदारी के अतिरिक्त भी उन्हे कुल जमा किए गए राजस्व का 10 प्रतिशत ईनाम (दामी) भी दिया जाता था।[89] एटकिन्सन ने यह भी लिखा है कि ''**यह भ्रष्ट राजस्व अधिकारी वास्तव में कुछ काम नही करते थें अतः अंग्रेज सरकार ने राजस्व जमा में दिए गए कमीशन को 1847 में समाप्त कर दिया। यह भी प्रस्तावित किया गया कि इन्हे जो जागीरें दी गयी हैं उन्हे जब्त कर लिया जाए लेकिन सिन्धिया द्वारा की गयी आपत्ति के कारण इन जागीरों को इस शर्त पर बने रहने दिया गया कि उनकी जमीदारी वार्षिक जमींदार की मृत्यु के पश्चात् जब्त कर ली जाएगी और जमींदार को अपनी जागीर का वार्षिक किराया रु0 960 देना पड़ेगा।**''

इसी क्रम में यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि 1857 में शाहगढ़ के

[88] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 346

राजा के विद्रोही हो जाने के पश्चात् उसकी जागीर जब्त कर ली गयी तथा इस जागीर के गाँवो का वितरण उन लोगों में किया गया जिन्होने 1857 के विद्रोह मे अंग्रेजों की सहायता की थी। यह ईनाम देते समय यह शर्त भी जोड़ दी कि जब तक ऐसे ईनाम प्राप्त करने वाले लोगों का व्यवहार अच्छा बना रहेगा, तभी तक वह इन विशेषाधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार का ईनाम प्राप्त करने वाला एक यूरोपीय '**अलिक जाण्डर जरिया**' भी था जो फ्रांस का निवासी था तथा सिन्धिया की सेना में कार्यरत था उसे भी अठारहवीं शताब्दी में इसी प्रकार ईनाम के रूप में जागीर दी गयी थी।[90] उसका पुत्र मेजर जोसफ अलिक जाण्डर को भी इसी प्रकार की एक जागीर दी गयी थी जिसमें जरिया नामक गाँव तथा एक बगीचा शामिल था।[91] बाद में सिंहपुर का गाँव इसमें मिला देने से जागीर का विस्तार हो गया।[92] ललितपुर के चौबे और बमराना के सेठ ऋण के लेन–देन का व्यवसाय अपना कर ऋण के बदले जमीने गिरवी रखने का कार्य करते थे। अधिक ब्याज हो जाने के कारण ऋण लेने वाले इन जमीनों को वापस लेने की स्थिति में नही होते थे अतः ऐसी जमीनें इन ऋणदाताओं के हाथ में चली जाती थी। ललितपुर के अनेकों जैन परिवार भी यही व्यवसाय अपनाकर बड़े–बड़े भू–स्वामी बन गए थे। ललितपुर की यह परम्परा ''**ललितपुर न छोड़िए जब तक मिलै उधार**'' इसी ऋण के लेन–देन की उपज थी।''

---

[89] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 346
[90] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 110
[91] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 110
[92] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) झाँसी गजेटियर 1909, पृष्ठ 110

जालौन तथा हमीरपुर के महत्वपूर्ण जमींदार –

बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की भाँति जालौन तथा हमीरपुर जिलों में भी अधिकांश ऐसे जमींदार थे जिनको अपने पूर्वजों से वंशानुगत आधार पर जागीरे मिली हुई थी। कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्होने ऋण के लेन–देन के व्यवसाय से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लाभ प्राप्त कर जमीनें क्रय कर जमींदार की श्रेणी में आ गए थे। जालौन में ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम थी जिनके हाथ में अधिकांश भूमि का क्षेत्रफल रहा हो। बबई के बाबू जगदीश प्रसाद अवश्य ही ऐसे जमींदार कहे जा सकते हैं जिन्होने कालपी तहसील में छः गाँवों की जमींदारी प्राप्त कर ली थी, जिसका राजस्व रु0 6120 था।[93] इसी तरह मगरौल के राजपूतों के हाथ में आठ गाँवों की जागीर थी जिसका वार्षिक राजस्व रु0 5375 था। इसी श्रेणी में उरई तहसील के पिरौना नामक स्थान के राजपूतों के पास भी छः गाँव थे जिसका राजस्व रु0 5015 था।[94] इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी जमीनों के मालिक बन बैठे थे जो ऋण लेन–देन का कार्य करते थे। इस कोटि मे कालपी में सादिक हुसैन और लाला सुन्दर लाल और कोंच के मुस्माथ सउद्रनेतो उल्लेखनीय है।

वास्तव में जिले के सबसे महत्वपूर्ण खक्शीश के राजा रघुनाथसिंह थे जिनके पास सात गाँव की जमींदारी के अलावा तहसील जालौन के कुछ गाँवों ने जमींदारी प्राप्त थी जिसका वार्षिक राजस्व रु0 9680 था। इस परिवार को राजा की उपाधि

[93] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 70
[94] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 71

परम्परागत रूप में मिली थी।[95] ये नरवर के कछवाहा राजपूतों के वंशज थे।

इसी तरह हरदोई के नरेन्द्र सिंह, देवना के राजा गोविन्द सिंह तथा कुछ मराठा पण्डित भी जमींदारो की श्रेणी में आते है क्योंकि उन्हे वंशानुगत क्रम में जमींदारी मिली थी। हरदोई के राजा तथा जगम्मनपुर के राजा दोनो सेंगर राजपूत थे जिनके प्रारंम्भिक इतिहास के बारे में प्रामाणिक जानकारियाँ प्राप्त नही है।[96] सम्भवतः बुन्देलाओं के पहले सेंगर राजपूतों के पास काफी बड़ी जागीर थी। लेकिन छत्रसाल के समय बुन्देलों ने आक्रमण कर इनसे जागीरें छीन ली थी। मराठा शासनकाल में पेशवा ने यहाँ के राजा गोकुल सिंह को 27 गाँव प्रदान किए थे। लेकिन गोकुलसिंह ने मराठों को राजस्व भुगतान करने से मना कर दिया था अतः जालौन के मराठा गर्वनर गोविन्दराव ने उनसे यह जागीर ले ली थी किन्तु उनकी परिवार की देखरेख और खर्च के लिए हरदोई तथा दो अन्य गाँव प्रदान कर दिए गए थे।[97]

अन्य जागीरदार –

जालौन जिले के अन्य प्रमुख जमींदारो में रामपुरा, जगम्मनपुर और गोपालपुरा के जमींदार उल्लेखनीय हैं जो परम्परागत रूप से अपने पूर्वजों से प्राप्त की हुई जागीर का संचालन कर रहे थे।[98] ड्रेक ब्राक मैन ने 1909 में लिखा था कि **''जगम्मनपुर के राजा रूपशाह सेंगर राजपूत है और अपने परिवार के प्रमुख है रूपशाह के अधीन 31 गाँव की जागीर है जो जालौन जिले के सुदूर उत्तर–पश्चिम में**

[95] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 71
[96] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 72
[97] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 72
[98] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 72

स्थित है इसका वार्षिक राजस्व रु0 75000 है। इन गाँवों के अतिरिक्त जालौन जिले में तीन गाँव ऐसे है जिनकी जमींदारी भी रूपशाह के अधीन है जिसका वार्षिक राजस्व रु0 2470 है।[99] '' परम्परा के अनुसार यहाँ के जमींदार को राजा की उपाधि 1100ई0 में प्राप्त हुई थी जिसे 1717 में पेशवा ने मान्यता दी थी। ब्रिटिश सरकार ने इसी प्रकार यहाँ के राजा को मान्यता प्रदान की थी। 1844 में इस जागीर के राजा महीपत सिंह को एक सनद प्रदान की गयी थी। जिससे इस जागीर का राजस्व रु0 4764 निर्धारित किया गया था।[100]

1854 में महिपत सिंह की मृत्यु के दौरान उनका अल्पव्यस्क पुत्र रूपशाह उत्तराधिकारी हुआ। कुछ समय के लिए इस जागीर के प्रबन्धक के रूप में कुछ संरक्षक नियुक्त किए गए थे, क्योंकि रूपशाह को बनारस पढ़ने के लिए भेज दिया गया था। 1877 में उसे अपनी जागीर के अन्तर्गत आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया और उन्हे रु0 100 मूल्य के मुकदमों को निपटाने की शक्ति प्रदान की गयी। 1897 में यह दीवानी अधिकार समाप्त कर दिए गए।

रामपुरा की जागीर –

ड्रेक ब्रॉक मैन ने[101] 1909 में लिखा था कि ''**रामपुरा रियासत के राजा राम सिंह है जो जालौन के कछवाहा राजपूतों के प्रमुख है। उनके पास जमींदारी का जो क्षेत्र है उसे 'कछवागढ़' के नाम से जाना जाता है। रामसिंह राजा भुवनपाल के वंशज है जो ग्वालियर जिले लाहर में जमींदार है।**[102] 1619 में यहाँ के राजा यशवन्त को रु0

---

[99] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 73
[100] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 73
[101] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 73
[102] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 73

2 लाख की जागीर दिल्ली के मुगल सम्राट से प्राप्त हुई थी। यह जागीर सिन्धिया द्वारा रामपुरा के अधिग्रहण तक बनी रही किन्तु सिन्धिया ने रामपुरा के अधिग्रहण के पश्चात् 28 गाँव को छोड़कर शेष में अपना नियन्त्रणं स्थापित कर लिया था। 1844 में जब जालौन को ब्रिटिश नियन्त्रण में शामिल कर लिया गया उस समय रामपुरा की रियासत की मान्यता ब्रिटिश प्रशासन ने भी दी। यहाँ के राजा मानसिंह ने 1857 के विद्रोह के समय अंग्रेजों की भरपूर सहायता की और विद्रोहियों की महत्वपूर्ण सूचनाएं कानपुर स्थित ब्रिटिश अधिकारियों को दी। उल्लेखनीय है कि उसके इस गद्दारीपूर्ण व्यवहार के कारण ही ग्वालियर के विद्रोहियों ने रामपुरा की जागीर पर आक्रमण कर दिया था तथा वहाँ के राजा को गिरफ्तार कर लिया था। विद्रोहियों ने भारी रकम लेकर ही यहाँ के राजा को मुक्त किया।[103] विद्रोह के अन्तिम चरण में भी रामपुरा के राजा ने जिले के उत्तरी हिस्से में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में अंग्रेजो की भरपूर सहायता की। इन सेवाओं के बदले में सरकार ने उसे रु0 5000 की खिल्लत तथा अनुदान के रूप में भूमि और एक सनद् प्रदान की जिसमें उसकी रियासत को मान्यता प्रदान कीं।[104]

1873 में यहाँ के राजा मानसिंह की निःसन्तान मृत्यु हो गयी। उनका उत्तरधिकारी उन्ही का गोद लिया हुआ पुत्र हुआ जो जागीर का प्रशासन कर रहा था। अन्य जागीरदारों की भाँति उसके पास भी अपनी पूरी व्यवस्था थी और अपनी जागीर के अन्तर्गत अपना प्रशासन करने की छूट थी। रामपुरा रियासत में 46 गाँव शामिल थे जिसका वार्षिक राजस्व रुं0 60000 था।

---

[103] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 74
[104] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 74

गोपालपुरा जागीर :

गोपालपुरा के जागीरदार रावशिवदर्शन सिंह थे जो लाहर के कछवाहों के वंशज थे। गोपालपुरा जागीर के संस्थापक आलमराव थे जो लाहर के राजा रूपपाल सिंह के वंशज थे। उन्हें गोपालपुरा के 62 गाँव की जागीर प्राप्त हुयी थी।[105] यह जागीर उनके वंशजों के हाथ में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रही किन्तु बाद में इसके अधिकांश गाँवों को सिन्धिया ने अपने नियन्त्रण मे ले लिया था। 1844 में जब जालौन का अधिग्रहण हुआ उस समय इस जागीर में केवल 12 गाँव थे। ड्रेकब्रोकमैन ने लिखा है कि "**1909 में इस जागीर में गाँवों की संख्या केवल 9 थी जो यहाँ के जमींदार को माफी के रूप में प्राप्त थीं। राव की पदवी सर्वप्रथम इस जागीर के जागीरदार आलमराव को मिली थीं जो इनके वंशजों ने यथावत जारी रखा।**" 1878 में इस जागीर को प्रबन्ध राव लक्ष्मण सिंह का दत्तक पुत्र कर रहा था जिसकी 1878 में मृत्यु हो गयी।

हमीरपुर जिले में ब्रिटिश आधिपत्य के समय कोई महत्वपूर्ण बड़े जमींदार नही थे। एटकिन्सन ने 1878 में यह लिखा था कि "**वर्तमान समय में हमीरपुर जिले में राठ परगने में मलेहटा और मझगवाँ के परिहार प्रभावषाली परिवार है। मलेहटा के प्रमुख ठाकुरदीन और मझगवाँ में हरवंश राव प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली व्यक्ति है लेकिन इनमें से कोई भी हमीरपुर के मुख्यालय में नही आता बल्कि ये दोनो केवल अपनी जागीर में ही रुचि दिखाते रहते है।**[106]" इस जनपद के अन्य जमींदारों में जलालपुर के मूलचन्द्र दुबे बाँदा के शामकरन सेठ जलालपुर परगना में इमिलिया

[105] ड्रेक ब्रॉक मैन, डी.एल. (वही) जालौन गजेटियर इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 74

के खेमचन्द्र तथा सुमेरपुर परगनें में बिड़ोखर के खेमचन्द्र के अलावा कुछ मारवाड़ी जमींदारों के अलावा जलालपुर के पण्डा उल्लेखनीय है।[107] इनमें से कोई भी ऐसा नही था जो स्थानीय प्रभाव के अलावा जनपद स्तर पर प्रभावशाली रहा हो। यह जमींदार केवल अपनी आय बढ़ाने के उद्देश्य से ऋण के लेन–देन का व्यवसाय अपनाए हुए थे। साथ ही साथ अपनी जागीरो के लाभ का ध्यान रखते हुए प्रबन्ध करते रहते थे।

हमीरपुर जिले में जो जमींदार परिवार थे उनमें से अधिकांश ऐसे लोग थे जो ऋण के लेन–देन से अधिक ब्याज वसूल करते थे। ऋण देते समय वे जमीनों को गिरवी रख लेते थे, ब्याज की राशि अधिक हो जाने की वजह से कर्जदार जब इसे छुड़ाने की स्थिति में नही होता था उस समय इसका मालिकाना हक ऋणदाता को मिल जाता था। अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की भाँति हमीरपुर जिला अकाल, बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण गरीबी और भूख के चपेट में था इसके साथ ही ब्रिटिश अधिकारियों ने समय–समय पर राजस्व की कठोर दरों का निर्धारण किया जिसका भुगतान करना रैयत के लिए कठिन था। प्रारम्भिक जितने भी राजस्व दरें थी वह अत्यधिक थी अतः बाध्य होकर लोग अपनी जमीन गिरवी रखने लगे जो ऋणदाताओं के हाथ में चली गयी।[108] ऐलन ने हमीरपुर जिले की गरीबी के बारे में 1842 मे अपनी एक रिपोर्ट प्रकाशित की तथा इसका कारण राजस्व की कठोर दरों का निर्धारण बताया था।[109] इसका कुपरिणाम

---

[106] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 174
[107] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175
[108] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175
[109] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175

बताते हुए उसने लिखा था।[110] कि **''लखनऊ के कुतुबुद्दीन खाँ ने 1817–18 एवं 1824–25 के बीच हमीरपुर जिले में रु0 8000 राजस्व के मूल्य की जमींदारी क्रय की थीं लेकिन राजस्व का भुगतान न कर पाने की वजह से उसे अपनी जमीन बेंच देनी पड़ी।''** ठीक इसी तरह एक दूसरा जमींदार जैनुल आब्दीन खाँ भी था उसने उसी समय रु0 7000 वार्षिक मूल्य की कुछ भूमि खरीद ली थी। लेकिन कुछ ही दिनों में वह भिखारी होकर इस जिले से चला गया क्योंकि उसकी भूमि पर खेती करने वाले किसान राजस्व की कठोर दरों का भुगतान नही कर सके।[111]

तीसरा उदाहरण इसी जिले के खजाँची दयाराम का है जिसे रु0 12000 वार्षिक राजस्व की मूल्य की जागीर क्रय कर रखी थी लेकिन उसका भी वही हाल हुआ और अन्ततः राजस्व का भुगतान न कर पाने के कारण दयाराम को अपनी सारी भूमि बेंच देनी पड़ी थी।[112] चौथा उदाहरण इलाहाबाद से आए हुए मिर्जा मुहम्मद खान का था जिसने यहाँ रु0 4000 वार्षिक मूल्य के कुछ गाँवों की जागीरी प्राप्त कर ली थी जिन्हें उसी तरह राजस्व का भुगतान न कर पाने के कारण बेंच देना पड़ा। अन्ततः बाध्य होकर ब्रिटिश सरकार ने इस जमींदार को नाम मात्र की भूमि का राजस्व लेकर उस भूमि को वापस कर दिया।[113] यहाँ के सरकारी वकील मुनायत राय ने भी बाध्य होकर अपनी जमींदारी के कुछ गाँवों को बेंच दिया था। दीवान मदन सिह ने हमीरपुर में चार गाँव की जमींदारी क्रय की थी किन्तु उसका भी वही हाल हुआ अन्ततः इन गाँवों को बेंचकर वे वहाँ से भाग गए।[114]

---

[110] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175
[111] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175
[112] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175
[113] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 175
[114] एटकिन्सन ई.टी. (वही), पृष्ठ 176

यह स्थिति केवल भारतीय जमींदारों की नही थी बल्कि हमीरपुर जिले में एक यूरोपीय जमींदार ब्रूस का भी यही हाल हुआ। ब्रूस की जागीर किसी समय काफी बड़ी थी किन्तु प्राकृतिक आपदाओं से उसका भी पतन हो गया।

जमींदारों का योगदान –

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के जमींदारों द्वारा अपनी जागीर के विकास तथा रैयत के आर्थिक कल्याण के लिए क्या योगदान दिया गया है यदि इसकी विवेचना की जाए तो स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि इन जमींदारों ने इस दिशा में कोई उल्लेखनीय योगदान नही दिया है यह स्पष्ट है कि उपरोक्त जमींदारों को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है–

प्रथम ऐसे लोग जिन्होने 1857 के विद्रोह के समय अथवा इसके पूर्व ब्रिटिश सत्ता की स्थापना मे जो सहयोग दिया था उन सेवाओं के बदले अंग्रेजी शासन ने उन्हे जागीरें प्रदान की थी। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि हिम्मत बहादुर गुँसाई ने चालाकी और धोखाधड़ी करते हुए समय–समय पर एक के स्थान पर दूसरे का साथ देकर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की। उसी के महत्वपूर्ण योगदान के कारण बुन्देलखण्ड में अंग्रेजो की प्रभुसत्ता की स्थापना हुई। गुँसाई सेनानायक को इन सेवाओं के बदले हमीरपुर जिले में मौदहा तथा आस–पास के किनारे जमीन प्रदान की गई जो उसके जीवन पर्यन्त अवधि के लिए थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त यह जागीर ब्रिटिश साम्राज्य मे मिला ली गयी। इस तरह स्वार्थ के वशीभूत होकर इस गुँसाई सेनानायक ने अपनी अन्तर्रात्मा का दमन करते हुए ब्रिटिश हुकूमत का साथ तो दिया किन्तु इसके बदले उसे जो कुछ मिला वह टिकाऊ न रहा। आज भी बुन्देलखण्ड के इस सेनानायक को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है।

जमींदारों की दूसरी श्रेणी ऐसें लोगों की थी जिन्हे अपने पूर्वजों के समय से जागीरें मिली हुई थी। अतः ये जमींदार जिनमें अधिकांश ओरछा के बुन्देला वंशवृक्ष से जुड़े हुए थे उनके विशेषाधिकारों को पूर्ववत या कुछ संशोधन करके बनाए रखा गया। अंग्रेज सरकार समझती थी कि इन परम्परागत जमींदारों को समाप्त न किया जाए अन्यथा विदेशी हुकूमत के प्रति असन्तोष पैदा हो जाएगा। ये सभी जमींदार न तो अपनी जागीर का समुचित विकास कर सके और न ही अपने रैयत से अच्छे सम्बन्ध ही स्थापित कर सके। उल्लेखनीय यह है कि ये सभी जागीरें और विशेषाधिकार उन्हे इस शर्त पर दी गयी थी कि यह उनके जीवनकाल तक रहेगी बशर्ते उनका कार्य व्यवहार उचित और सहयोगात्मक रहा हो।

वास्तविकता यह है कि 1857 के विद्रोह के पश्चात् के वर्ष दासता के गुलामियों के थे और विदेशी शासन ने जागीरदारों पर अनेकों प्रतिबन्ध लगा रखे थे। सबसे महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध यह था कि इन सभी जागीरदारों को ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहना था अन्यथा उनकी भूमि और विशेषाधिकार वापस लिए जा सकते थे।[115] यह तथ्य कि इन जागीरदारों ने अपनी अन्तर्रात्मा का हनन करते हुए अपने ही भाई–बन्धुओं को धोखा देकर 1857 के विद्रोह में औपनिवेशिक शासन की मदद की थी। इसके बावजूद भी उन्हे अपने जागीरों तथा विशेषाधिकारों को समय–समय पर पुनः मान्यता लेनी पड़ती थी। कभी – कभी तो उनकी जागीरें जब्त कर लेने की धमकी दे दी जाती थी। यहाँ तक कि गुरसराँय का राजा जो इस क्षेत्र का सबसे बड़ा जमींदार था उसे भी समय–समय पर धमकियाँ मिलती

[115] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 131

थी।[116]

अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् इस क्षेत्र के जमीदारों पर विदेशी शासन का जो अपरोक्ष प्रभाव पड़ा उसके कारण अब इन जमींदारों को अपने अधीन क्षेत्रों मे आन्तरिक सुरक्षा के साथ–साथ बाहरी आक्रमणों से भी कोई भय नही रहा क्योंकि कम्पनी सरकार से किए गए इकरारनामों के फलस्वरूप अब इनकी सुरक्षा का भार कम्पनी प्रशासन का था। इस व्यवस्था के व्यापक दुष्परिणाम हुए चूँकि अब उन्हे आन्तरिक अथवा बाहय सुरक्षा से कुछ लेना–देना नही था। अतः उनके परम्परागत गुण जैसे आत्मनिर्भरता, साहस, शौर्य आदि समाप्त होते गए। इतना ही नही बल्कि अब इन जमींदारों ने स्वयं को आराम पसन्दगी, मनोविनोद और ऐयाशी मे व्यस्त रखा। फलतः उनके शौर्य और साहस जैसे गुणों का तेजी से ह्रास होने लगा। इतना ही नही उन्होने अपने जागीर के कुशल प्रबन्धन और विकास की ओर भी ध्यान नही दिया फलतः उनकी जागीरों का विघटन होने लगा। बढ़ते हुए परिवार के कारण पारिवारिक विभाजन के साथ–साथ परस्पर आपसी विवाद गहराने लगे। फिजूलखर्ची ने उन्हे अपनी भूमि ऋणदाताओं को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसके बावजूद भी उन्होने अपनी शान–शौकत बनाए रखने का पूरा प्रयास किया। बुन्देला जमींदारों के बारे में 1892 में बन्दोबस्त अधिकारी मेस्टन और इम्पे ने लिखा था कि "**ये जागीरदार हल को हाँथ लगाना पाप समझते थे और अपनी खेती किराए के मजदूरों से कराया करते थे खेती के ये तरीके अत्यन्त पुराने थे और किसानो से बँटाई द्वारा जो रुपया मिलता था उसी से ये जमींदार अपना खर्च चलाया**

[116] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 132

करते थे।[117]''

जमींदारो का उनकी भूमि पर कार्य करने वाले रैयत से भी सम्बन्ध अच्छे नही थे जबकि उन्हे रैयत के परिश्रम से जो उपज प्राप्त होती थी उसके लगान से जमीदार की फिजूलखर्ची की भरपाई होती थी। आए दिन ये जमीदार किसानों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। 1892 में इम्पे और मेस्टन ने लिखा था[118] कि ''**ठाकुर जमीदार ऐसे समय मे रैयत से राजस्व की वसूली करते थे जब रैयत कठिन परिस्थिति में होता था। फसल तैयार होने के पहले ही अथवा अग्रिम रूप से अपनी भूमि का राजस्व वसूलने के लिए ये जमींदार किसानो को तंग किया करते थे यदि इसके भुगतान में तनिक भी देरी हुई तो रैयत को प्रताड़ित करते हुए उसके साथ मारपीट करते थे।[119] इतना ही नही था बल्कि बुन्देला जमींदार एक कदम और आगे थे उन्होने अपनी भूमि को रैयत को देने के लिए अधिक से अधिक राजस्व निर्धारित कर दिया था।**'' 1907 में बन्दोबस्त अधिकारी डब्ल्यू पिम ने ललितपुर सबडिवीजन के जाखलौन परगने के बुन्देला जमींदार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखा था कि ''**जाखलौन के ठाकुर जमींदारों ने अपनी भूमि का और अन्य जमींदारो की तुलना में अधिक से अधिक राजस्व निर्धारित कर दिया है और प्रतिकूल मौसम या प्राकृतिक आपदाओं से हुई रैयत की छति को ध्यान मे न रखते हुए उस निर्धारित राजस्व को पूर्ण रूपेण कठोरता पूर्वक वसूल करते हैं।[120] इन परिस्थितियों ठाकुर जमीदारों की भूमि पर खेती करने के लिए कोई भी रैयत तैयार नही होता था अपनी जीविकोपार्जन**

[117] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 132
[118] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 132
[119] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 132

के लिए बहुत बड़ी संख्या में ये किसान मजबूर आस-पास के क्षेत्रों मे जाकर किसानी करते थे।''

अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत जहाँ बुन्देला जागीरदारों का आर्थिक पतन हो रहा था वही दूसरी ओर अन्य जमींदारों की स्थिति अच्छी नही थी। समय-समय पर पड़ने वाले अकालों तथा प्राकृतिक प्रकोपों के दुष्परिणामों से मराठा जागीरदार भी नही बचे थे और उनका भी आर्थिक पतन होता जा रहा था। इस प्रकार बुन्देलखण्ड के वंशानुगत जमीदारों के शौर्य, देशभक्ति और साहस की परम्परा जिसे छत्रसाल बुन्देला और गोविन्दपन्त खेर जैसे सामन्तो ने स्थापित किया था उसे परित्याग करते हुए यहाँ के जागीरदारो ने विदेशी शासन की सहायता के प्रतिफल के रूप में जागीरें प्राप्त की यह उनकी स्वार्थपरता का प्रमाण है। स्वार्थ और विश्वासघात के ही वातावरण में ही निःसन्देह कुछ बहादुर जमींदार भी थे जिन्होने 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में कूदकर ब्रिटिश शासन का जबरदस्त प्रतिरोध किया। जालौन के दीवान वरजोत सिह, हमीरपुर के ईसरी बाजपेयी, जैतपुर के तेजफत, बानपुर के मर्दनसिंह, शाहगढ़ के बाखड़बली आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण है जिन्होने बिना किसी परवाह के औपनिवेशिक शक्ति से छुटकारा पाने के लिए जमकर संघर्ष किया। निःसन्देह उन्हे इस विरोध का परिणाम तो भुगतना पड़ा और अपनी जमींदारी से वंचित होना पड़ा लेकिन ऐसे जमींदार जिन्होने 1857 के विद्रोह में अंग्रेजो की सहायता कर जागीरे प्राप्त कर ली थी, उन्होने भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वयं को ब्रिटिश शासन के अधिनस्थ रहते हुए असहाय स्थिति मे पाया। हक्-बटोटा सन्धि द्वारा बुन्देला सामन्तों को भूमि में जो

[120] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 132

हक मिला हुआ था वह धीरे-धीरे कम होने लगा क्योंकि इन जमींदारों द्वारा अनुशासनहीनता करने के कारण सरकार ने उनके हिस्से खत्म कर दिए।[121] ऐसी परिस्थिति में इन जागीरदारों द्वारा अपनी जागीर तथा रैयत के विकास की कल्पना ही नही की जा सकती थी। इस प्रकार बुन्देलखण्ड एजेन्सी के जमींदार इस क्षेत्र के विकास में कोई भूमिका नही अदा कर सके।

[121] पाठक, एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 133

सड़क, यातायात, सिचाई एवं स्कूलों की व्यवस्था

अध्याय – 6

सड़क, यातायात, सिचाई एवं स्कूलों की व्यवस्था

बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति के विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण हेतु यह आवश्यक था कि यहाँ सार्वजनिक उपयोग के साधनों का विकास किया जाए। यातायात विकास जहाँ व्यापार एवं वाणिज्य के लिए आवश्यक था वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी सेनाओं को बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों तथा जिलों में आने–जाने के लिए भी आवश्यक था। अतः अंग्रेजी शक्ति के सुदृढ़ीकरण और विस्तार का आधार यातायात साधनों के विस्तार के द्वारा किया जा सकता था। उल्लेखनीय यह है कि बुन्देलखण्ड का जंगली, पठारी तथा ऊबड़–खाबड़ क्षेत्र जहाँ आवागमन के साधनों की कमी थी वहाँ सड़कों का निर्माण कराया गया। यह सड़क निर्माण ब्रिटिश शासन के विस्तार और सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक था।

कर्नल जॉन वेली द्वारा बाँदा में पदार्पण के पश्चात् बुन्देलखण्ड में यातायात के साधनों का विस्तार प्रारम्भ हुआ। इस जिले में बाँदा से मानिकपुर (वाया बदौसा और कर्वी) तथा बाँदा से चिल्ला के बीच की सड़के व्यापारिक तथा सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। मानिकपुर के रास्ते जबलपुर छावनी तथा इलाहाबाद की ओर से ब्रिटिश सेनाएं आसानी से बाँदा जिले में प्रवेश कर सकती थी जो शान्ति व्यवस्था बनाए रखने तथा साम्राज्य विस्तार के लिए आवश्यक थी। मानिकपुर से होते हुए बाँदा और जबलपुर को ईस्ट इण्डिया रेलवे की एक शाखा द्वारा भी जोड़ा गया था।[1] यह रेलमार्ग व्यापारिक तथा सैनिक दृष्टि से आवश्यक था। इसी प्रकार चिल्ला तथा फतेहपुर को भी बाँदा से सड़क मार्ग द्वारा जोड़ा गया था। बाँदा से चिल्ला

---

[1] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 74

होते हुए फतेहपुर रेलवे स्टेशन से जुड़ी हुई यह सड़क अधिक उपयोगी थी। यह मार्ग मानिकपुर की ओर जाने वाले रास्ते की अपेक्षा कम दूरी का था तथा सड़क की दशा अच्छी थी।[2] इस जिले में प्रथम श्रेणी की अन्य सड़के भी थीं जैसे बाँदा से कांलिजर (32.5 मील), गुदरामपुर से बदौसा (14.5 मील), कर्वी से राजापुर (17. 25मील), इंटवा से बरगढ़ (53 मील), अन्य सड़कें द्वितीय श्रेणी की थी जैसे बाँदा से राजापुर (बिसण्डा–ओरन–सिंहपुर–पहाड़ी होते हुए)। इसी प्रकार बाँदा से बबेरू (मरवल होते हुए), बदौसा से ओरन, कबरई से छिरका थी।

उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ सड़कें ऐसी थी जिन्हे हम तृतीय और चतुर्थ श्रेणी में रख सकते हैं। तृतीय श्रेणी की सड़को की संख्या 15 थी जबकि चतुर्थ श्रेणी में 7 सड़के थी इनकी कुल दूरी 722 मील थी जो कुल बाँदा में आन्तरिक यातायात व्यवस्था को जोड़े हुए थी।[3] प्रमुख तृतीय श्रेणी की सड़के निम्न थी –

बाँदा से राजापुर (तिन्दवारी, बबेरू और कमासिन होते हुए), बाँदा से राठ, पपरेंडा से पैलानी, बबेरू से औगासी, खोह से मऊ, शहडोल से राजापुर, राजापुर से मिर्जापुर (मरका होते हुए), कालिंजर से रौली कल्याणपुर, राजापुर से टिकरिया, सिद्धपुर से पनगरा, मबई घाटी से मानिकपुर और मऊ से बरगढ़।[4]

चतुर्थ श्रेणी की प्रमुख सड़कों में कर्वी से लखनपुर और पनगरा से ओरन उल्लेखनीय है। **एटकिन्सन** ने[5] 1871 में जिले की आन्तरिक यातायात व्यवस्था के सन्दर्भ में उपरोक्त सड़को का उल्लेख करते हुए यह वर्णन दिया है कि "**उस जिले में अभी कुछ ही वर्षो में यातायात के प्रमुख मार्ग राजापुर का एक बड़े बाजार के रूप**

[2] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 74
[3] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 74
[4] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 74
[5] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 75

में विकास हुआ। यह कस्बा कमासिन से छीबो और बरगढ़ की ओर जाने वाली सड़क पर स्थित है तथा राजापुर, मानिकपुर से भी सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। इस तरह राजापुर, मानिकपुर रेलवे स्टेशन से जुड़ा हुआ है।[6]'' इस जिले में शेष अन्य कोई कस्बा नही है जो सड़क मार्ग से पहली बार जुड़ा हुआ हो। पैलानी परगनें में तिन्दवारी और गुगौली अवश्य सड़को से पहली बार जुड़े हैं किन्तु शेष जिले की सड़के उपेक्षित है, जिनमें विकास की आवश्यकता है। मात्र चिल्ला से बाँदा की रोड की दशा अन्य की तुलना में अच्छी है।[7]

हमीरपुर जिले की सड़क यातायात व्यवस्था :

हमीरपुर जिले की सड़के सार्वजनिक निर्माण विभाग के नियन्त्रण और देखरेख मे अप्रैल 1872 से ही था। इस जिले की प्रमुख सड़कों में हमीरपुर और नौगांव छावनी के बीच ही पक्की सड़क प्रथम श्रेणी की थी जो सुमेरपुर, नराइच, मौदहा, कबरई, महोबा और श्रीनगर होते हुए गुजरती है, इसकी पूरी लम्बाई हमीरपुर जिले में 70 मील है जो पूर्ण रूपेण पक्की और पुलों से जुड़ी हुई है। कबरई से इस सड़क का एक हिस्सा कानपुर–बाँदा और सागर की ओर जाता है। दूसरी महत्वपूर्ण सड़क हमीरपुर और बाँदा के बीच थी जो सुमेरपुर और सिसोलर होते हुए बाँदा की ओर जाती है। हमीरपुर जिले में इसकी लम्बाई 30 मील है इसी तरह तीसरी सड़क हमीरपुर और मऊरानीपुर को जोड़ती है जो बिवार, मुसकरा, राठ, पनवाड़ी, औगासी होकर निकलती है। इसकी पूरी लम्बाई 78 मील है। अनुकूल मौसम में यह यातायात के बिल्कुल उपयुक्त है। केवल बाँदा और राठ के

[6] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 75
[7] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 75

बीच 16 मील के क्षेत्रफल में यह ऊँचाई लिए हुए हैं। इसी तरह चौथी सड़क राठ से कालपी के बीच की है जो चंदावत होते हुए निकलती है। इसका निर्माण 1869 में अकाल पीड़ितों की सहायता के उपलक्ष्य में स्थानीय श्रमिकों द्वारा कराया गया। अन्य महत्वपूर्ण सड़क पनवाड़ी और कुलपहाड़ के बीच की थी जो भरवारू और सुगरा होकर गुजरती है।

उपरोक्त सड़कों के अतिरिक्त इस जिले में 11 अन्य ऐसी सड़के भी है जो कच्ची है और अकाल के समय खाद्यान्न लाने तथा व्यापार और कृषि उत्पादों के आदान–प्रदान के लिए उपयोगी थी लेकिन आवश्यकता यह है कि इन कच्ची सड़कों को अतिशीघ्र ऊँचा कर दिया जाए तथा इन्हे पुलों से जोड़ दिया जाए। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों में हमीरपुर का सड़क यातायात उपरोक्त मार्गों से जुड़ा हुआ था।

जालौन जिले की सड़क यातायात व्यवस्था :

बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की ही भाँति जालौन में भी सड़क यातायात को सुव्यवस्थित किए जाने का मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक शासन की सैनिक तथा व्यापारिक हितों की सुरक्षा करना था, इन दोनों दृष्टियों से कालपी से झाँसी जाने वाली सड़क निर्मित की गयी थी जिसका निर्माण कार्य 1855 में किया गया था।[8] ठीक इसी तरह व्यापारिक दृष्टि से उरई से जालौन होते हुए शेरगढ़ तक की सड़क ही व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी थी। इटावा जिले के फफूँद रेलवे स्टेशन से इस सड़क को जोड़ा गया था जो जालौन जिले की पूर्वी सीमा जमुना नदी से 16

[8] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 244

मील की दूरी पर था।[9] इस जिले में उरई से कोच के बीच सड़क भी व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी, 1872 तक यह कच्ची थी।[10] इस सड़क से ग्वालियर रियासत समथर और दतिया के साथ सड़क मार्ग जोड़कर व्यापारिक हितों को विकसित किया जाता था। एटकिन्सन ने 1872 में उल्लेख किया था[11] "**निःसन्देह जालौन जिला कानपुर से जुड़े हुए रेलमार्ग से अधिक लाभान्वित हो सकता था लेकिन इस रेलमार्ग के निर्माण में जो खर्च आएगा उसको दृष्टिगत रखते हुए यह अनुमान लगाना कठिन है कि इस लागत की अपेक्षा रेलमार्ग से कितनी आय जालौन जिले को होगी।**[12]"

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत झाँसी जिले की सड़क व्यवस्था :

1872 में एटकिन्सन ने यहाँ की यातायात व्यवस्था का उल्लेख करते हुए लिखा कि '**झाँसी में तथा पास–पड़ोस के जिलों के अन्तर्गत कोई रेलवे स्टेशन नहीं है।**[13]' यातायात व्यवस्था की दृष्टि से झाँसी से मोठ होते हुए कालपी की ओर एक पक्की सड़क बन चुकी थी जिससे कानपुर के रेलवे स्टेशन से झाँसी जुड़ चुका था दूसरा महत्वपूर्ण सड़क मार्ग झाँसी से नौगाँव छावनी के मार्ग के बीच था जो 64 मील तक पक्का तथा आंशिक रूप से पुलों से जुड़ा हुआ था। 1873 में मऊरानीपुर के पास सुखनई नदी पर एक बड़े पुल का निर्माण इस सड़क के ऊपर शुरू हो चुका था।[14]

---

[9] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 244
[10] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 244
[11] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 244
[12] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 244
[13] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 245
[14] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 245

बरूआसागर में इस सड़क में बने हुए कुछ पुल 1869 की बरसात में ध्वस्त हो चुके थे जिन्हे पुनः निर्मित नही कराया गया था (1873 तक)। झाँसी से सीपरी की ओर जाने वाले सड़क मार्ग पर पहुँज नदी पर अभी कुछ ही दिनों पर एक बड़े पुल का निर्माण किया जा चुका था लेकिन यह सड़क झाँसी जिले में शिवपुरी की तरफ केवल दो मील तक ही सीमित थी।[15] ठीक इसी तरह झाँसी और ग्वालियर की ओर का एक छोटा टुकड़ा झाँसी जिले की सीमा में निर्मित किया जा चुका था। अन्य सड़कों में, ढाई मील एक अन्य पक्की सड़क झाँसी जिले में मऊ से नौगाँव रोड पर बखेड़ा नामक स्थान पर निर्मित की गयी थी और इसी क्रम में सवा तीन मील की यह सड़क मऊ से रानीपुर तक बढ़ायी गयी थी। इसकी देखरेख मऊरानीपुर की नगर पालिका द्वारा की जाती थी।

उपरोक्त के अतिरिक्त द्वितीय श्रेणी की कुछ अन्य सड़के भी थी जो कच्ची थी। झाँसी से जरार घाट और ललितपुर होते हुए सागर को जाने वाली सड़क कुछ दूरी तक तो पक्की थी जबकि इसके अलावा यह कच्ची थी।[16] ठीक इसी तरह झाँसी से भाण्डेर जाने वाली सड़क जो कुछ दूरी तक पुलों से जोड़ी गयी थी वह भी कच्ची ही थी। जालौन से कोखरा–सैयद नगर घाट होते हुए झाँसी जिले की सीमा में आने वाली सड़क गुरसराँय होते हुए मऊरानीपुर की ओर जाती थी जहाँ से यह ओरछा रियासत में प्रवेश करते हुए मऊरानीपुर से 8 मील दक्षिण तक आती थीं। इसके अलावा कानपुर रोड पर बड़ा गाँव और गरौठा कस्बे के बीच एवं धसान नदी के समीप मोतीकटरा घाट से हमीरपुर जिले के राठ तक की सड़क निर्मित हो चुकी थी जहाँ तक जिले के आन्तरिक यातायात की स्थिति थी इस दृष्टि से यह

[15] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 246
[16] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 246

झाँसी जिले की तीसरी प्रमुख सड़क थी जो आन्तरिक यातायात की दृष्टि से प्रयुक्त होती थी। मऊरानीपुर से गरौठा के बीच 25 मील की सड़क मरकवाँ होते हुए निर्मित हो चुकी थी जिसे ऊँचा करते हुए पुलों से भी जोड़ दिया गया था। इसी तरह मऊ से घाट लछूरा के बीच 11 मील की दूरी को धसान नदी के उस पार तक जोड़ दिया गया था जहाँ से यह राठ की ओर जाती थी। अन्य सड़कों में, गुरसराँय से पूँछ (कानपुर रोड) ऐरच होते हुए कुछ ऊँचा करते हुए पुलों से जोड़ा जा चुका था। ठीक इसी प्रकार रानीपुर से रतौसा (नौगाँव की ओर जाने वाली) को भी भलीभाँति ऊँचा किया जा चुका था और उसे पुलों से भी जोड़ा जा चुका था।[17]

इस जिले की तृतीय श्रेणी कच्ची सड़को के बारे में एटकिन्सन ने[18] उल्लेख किया है कि "सन 1874 तक (अर्थात जब तक इस गजेटियर की रचना पूरी हो रही थी) झाँसी से ललौच (23 मील), मोठ से भाण्डेर (13 मील), पँछ से नरई (7 मील), चिरगाँव से भाण्डेर (14 मील), रामनगर से भाण्डेर (11 मील), मोठ से गरौठा (18 मील), गुरसराँय से रामनगर घाट होते हुए चिरगाँव (22 मील), गरौठा से गरहन (10 मील), मऊ से बलतपुर (12 मील), मऊ से रूपा (2 मील), मरकवाँ से मोतीकटरा (8 मील), रानीपुर से सयारी (7 मील), और बंगरा से उल्दन होते हुए मोंठ (30 मील) तक की सड़कें निर्मित हो चुकी थी।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के विभिन्न जिलों में औपनिवेशिक सत्ता ने सड़कों का निर्माण कर सर्वप्रथम अपने हितों की पूर्ति की। भारत के इस केन्द्र प्रदेश मे ब्रिटिश शासन को स्थायित्व देने के लिए दूरदराज के क्षेत्रों को सड़क मार्ग से जोड़ा जाना इसलिए आवश्यक था ताकि उपद्रव होने की स्थिति मे आसानी से सेना की टुकड़ी

[17] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 246
[18] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 246

एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जा सके। अंग्रेज भलीभाँति जानते थे कि इस क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था केवल शक्ति के बल पर ही टिकी हुई है और जैसे ही नियन्त्रण ढीला होगा वैसे ही ब्रिटिश सत्ता को खतरा हो सकता है। 1872 में अंग्रेज गर्वनर जनरल के एजेण्ट ने अपने रिपोर्ट में लिखा था – "**ओरछा से गुजरते हुए मै यह देखे हुए नहीं रह सका कि चट्टानों और मैदानों से घिरे हुए क्षेत्र में ऐसे हजारों लोग निवास करते हैं जो कि (आतंक न हो तो) पुनः इन पहाड़ियों को युद्धघोषों से गुंजा देगें।**[18]" इस प्रकार बुन्देलखण्ड क्षेत्र के विभिन्न स्थलों को जोड़ने का मुख्य अभिप्राय अंग्रेजी हितों की रक्षा करना था। जनकल्याण या क्षेत्र के विकास को दृष्टि में रखते हुए यह कार्य नही कराया गया था क्योंकि अंग्रेजी शासक ऐसे ही क्षेत्रों में अपनी पूँजी लगाते थे जिसमें उन्हे लाभ हो।

सिचाई साधनों का विकास –

अंग्रेजी शासनकाल में मध्य भारत का यह क्षेत्र अनेकों प्रकार के सामाजिक आर्थिक उत्पीड़नों का शिकार हुआ। यह उत्पीड़न औपनिवेशिक शासन द्वारा तो किया ही गया साथ ही साथ प्राकृतिक प्रकोपों ने भी बुन्देलखण्ड के जनजीवन को नष्ट करने का कार्य किया। यहाँ कि 90 प्रतिशत जनसंख्या जो मुख्यतः कृषि पर आधारित थी वह भूमि में काँस घास उग जाने से भूमि की उर्वरा शक्ति विनष्ट हो जाती थी, जिससे कृषक भुखमरी के कगार पर आ जाते थे, अकाल एवं अन्य प्राकृतिक आपदाएं, बुन्देलखण्ड एजेन्सी के लगभग सभी जिलों को प्रभावित करती थी। अकाल तो बुन्देलखण्ड की अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बन चुका था। 1809–10 में बाँदा सूखे से सर्वाधिक प्रभावित रहा। 1828 में काँस घास ने विनाशलीला पैदा कर

दी अतः खाद्यान्न की कमी हो गयी।[19] 1829–30 में पुनः यहाँ अकाल पड़ा। 1860–70 के दशक में अल्प वर्षा के कारण जनजीवन प्रभावित हुआ।[20] 1868 में बाँदा, हमीरपुर तथा अन्य जिले भी इसकी चपेट में रहे।[21] जालौन भी बुरी तरह प्रभावित रहा, ललितपुर की भी यही स्थिति रही। इस तरह यह कहना असंगत नही होगा कि सूखे ने यहाँ की गरीबी और बेरोजगारी मे बेतहाशा वृद्धि की।

औपनिवेशिक शासन जो भलीभाँति कृषि व्यवस्था के इस संकेत को समझता था उसने किसानों को राह देने के लिए बुन्देलखण्ड मे सिचाई के साधनों का समुचित उपयोग नही किया इसके विपरीत पूर्व से चले आ रहे बुन्देलखण्ड के सिचाई विभाग को अनुपयोगी मानते हुए ब्रिटिश सरकार ने 1862 में बन्द कर दिया।[22] 1879–98 के बीच के आँकड़े यह उल्लेख करते हैं कि इस अवधि में बाँदा जिले में सभी स्रोतों से सिंचित कुल क्षेत्र 4932 एकड़ था जिसमें ऐसे भी क्षेत्र शामिल थे जहाँ केवल एक बार सिचाईं की जाती थी।[23] झाँसी और ललितपुर जिलों में भी लगभग यही स्थिति थी। निःसन्देह 1868–69 के अकालों के समय पिछवारा और मगरवारा के जिलों का निर्माण अकाल पीड़ित लोगों के श्रम से कराया गया, किन्तु अन्य तालाबों पर ध्यान नही दिया गया। 1886–1891 के बीच झाँसी जिले में केवल दो नए तालाबों का निर्माण किया जा सका।[24] झाँसी जिले में बरूआसागर, कछनेह और मगरवारा की झीलें 1890 में सिंचाई विभाग को सौप दी गयी। यद्यपि 1896–97 में पड़े अकाल और 1899 में खाद्यान्न की कमी के कारण

[19] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बाँदा, 1909 पृष्ठ 109
[20] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बाँदा, 1909 पृष्ठ 109
[21] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 153
[22] जेनकिन्सन ई.जी., झाँसी सेंटेलमेण्ट रिपोर्ट 1878, पृष्ठ 71–72
[23] ड्रेक ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर, 1909, पृष्ठ 53
[24] पिम ए.डब्ल्यू. फाइनल सेटेलमेण्ट रिपोर्ट आन दि रिवीजन ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट, इलाहाबाद 1907, पृष्ठ 14

सरकार को बाध्य होकर सिंचाई के कुछ प्रयास करने पड़े और यही कारण था कि सिचाई विभाग के अन्तर्गत एक अलग से तालाब विभाग की स्थापना की गई।[25] इन प्रयासों पर टिप्पणी करते हुए **पिम** ने 1907 में लिखा था कि "**इन प्रयासों से अधिक सफलता की आशा नही की जा सकती इसका कारण यह है कि भूमि के लगातार कटाव के कारण झाँसी और ललितपुर जिलों में लाल मिट्टी के पूर्ववत स्तर को प्राप्त कर सकना असम्भव है। किन्तु लगातार प्रयासों से अगले स्थायी बन्दोबस्त तक क्षेत्र की बिगड़ी हुयी वर्तमान दशा में सुधार होने की सम्भावना है।**[26]"

जालौन जिले में भी सिंचाई की स्थिति संतोषजनक नही थी। 1889 की एक रिपोर्ट के अनुसार "**जालौन मे कुओं द्वारा लगभग 6534 एकड़ भूमि की सिंचाई होती थी जबकि लगभग 6194 एकड़ भूमि अन्य स्रोतों से सींची जाती थी।**[27]" पूरे जालौन क्षेत्र में सिंचित भूमि क्षेत्र कुल कृषि भूमि का मात्र 2.8 प्रतिशत था इन आँकड़ों से यह पुष्टि होती है कि सिंचाई सुविधाओं के अभाव के कारण बुन्देलखण्ड की सिंचाई व्यवस्था बुरी तरह क्षतिग्रस्त हुई। निःसन्देह 1855 में बेतवा नहर के निर्माण की योजना का सुझाव दिया गया था लेकिन उसकी स्वीकृति 1881 से पहले नही मिली। यही स्थिति बाँदा की थी वहाँ केन नदी से एक नहर निकालने का 1870 में विचार किया गया लेकिन सरकार अधिक लागत वाली योजनओं को क्रियान्वित नही करना चाहती थी यही कारण था कि इस योजना को 1896–97 से पहले क्रियान्वित नही किया जा सका।[28]

---

[25] पिम ए.डब्ल्यू, फाइनल सेटेलमेण्ट रिपोर्ट आन दि रिवीजन ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट, इलाहाबाद 1907, पृष्ठ 14
[26] पिम ए.डब्ल्यू, फाइनल सेटेलमेण्ट रिपोर्ट आन दि रिवीजन ऑफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट, इलाहाबाद 1907, पृष्ठ 14
[27] फिलिप, व्हाइट फाइनल रिवीजन ऑफ सेटेलमेण्ट ऑफ ईस्टर्न पोर्शन ऑफ जालौन डिस्ट्रिक्ट, पृष्ठ 16
[28] ड्रेक ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर, (वही) 1909, पृष्ठ 59

जहाँ तक रियासतो में सिचाई सुविधाओं का प्रश्न है हम यह भलीभाँति जानते है कि रियासतों के राज प्रमुख अपने निर्णय पॉलिटिकल एजेण्ट के सम्मति से लेते थे ये पॉलिटिकल एजेण्ट राजाओं महाराजाओं को स्वतन्त्र निर्णय लेने की छूट नही देते थे। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अधिकांश रियासतों के पास धन की कमी थी। कृषि एवं उद्योग धन्धों के पतन के कारण वह अपने–अपने क्षेत्र का समुचित विकास नही कर सकते थें। विकास सम्बन्धित प्रत्येक कार्य के लिए पॉलिटिकल एजेण्ट की सर्वसम्मति आवश्यक थी। यद्यपि समाज के विकास के लिए कुछ राजप्रमुखों द्वारा अपने क्षेत्र में चिकित्सा सुविधाओं का प्रयास किया गया था किन्तु ब्रिटिश शासन के प्रभाव के कारण वह स्वतन्त्र रूप से निर्णय नही ले पाते थे। वास्तविकता यह है कि विदेशी सरकार बुन्देलखण्ड का आर्थिक, सामाजिक विकास करना ही नही चाहती थी वह तो कुछ सुविधाएं मात्र उपलब्ध कराकर उन्हें ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार बनाए रखना चाहती थी। अतः औपनिवेशिक शक्ति से सामाजिक विकास की आशा नही की जा सकती थी।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी में शिक्षा सम्बन्धी प्रयास :

1802 से 1947 के मध्य विदेशी शासन में बुन्देलखण्ड को पिछड़ा बनाए रखने के उद्‌देश्य से यहाँ का सामाजिक, आर्थिक शोषण किया। पिछड़ापन की नीति अपनाने का कारण यह था कि 1857 के विद्रोह में इस क्षेत्र के लोगों की भागीदारी से विदेशी शासन को कटु अनुभव हुआ था और वे समझते थे कि यदि यह क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक रूप से मजबूत होगा तो यहाँ के लोग एक बार पुनः ब्रिटिश शासन का प्रतिरोध उसी तरह कर सकते थे जिस तरह उन्होने 1857 में किया था। पूरे बुन्देली शासनकाल में बुन्देलखण्ड एजेन्सी में शैक्षिक गतिविधियाँ

लगभग शून्य थी, शैक्षिक गतिविधियाँ, सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन का ही एक प्रभाव था क्योंकि अंग्रेज यह समझते थे कि यदि यहाँ शिक्षण संस्थाओं की समुचित व्यवस्था हो जाएगी तो लोगों में चेतना पैदा होगी जो विदेशी शासन के लिए घृणा का वातावरण पैदा करने में सहायक सिद्ध होगी। यही कारण था कि इस क्षेत्र में शिक्षण संस्थाओं को खोलने का समुचित प्रयास नही किया गया।

1857 में शान्ति स्थापित हो जाने के पश्चात् झाँसी जिले मे मात्र 8 तहसीली स्कूल मोठ, भाण्डेर, मऊ, मण्डवाहा और गरौठा में स्थापित किए गए। उपरोक्त तहसीली स्कूलों के अलावा 38 ग्राम स्कूलों की भी स्थापना की गयी थी जिनमें 1859–60 मे लगभग 2141 विद्यार्थी थे।[29] इसी वर्ष ललितपुर, महरौनी तथा मड़ौरा में 3 और तहसीली स्कूलों की स्थापना की गई। 1861 में झाँसी और ग्वालियर के बीच सीमावर्ती क्षेत्रों का आदान–प्रदान हुआ अतः झाँसी, पिछोर और करैरा के स्कूल इन क्षेत्रों के ग्वालियर में चले जाने के कारण झाँसी जिले से पृथक हो गए। अतः इनके स्थान पर तीन नए स्कूल बरूआसागर, चिरगाँव और रानीपुर में खोले गए। इस प्रकार 1862 में झाँसी जिले में कुल 76 ग्राम स्कूल थे।[30]

उपरोक्त सरकारी स्कूलों के साथ – साथ कुछ प्राइवेट स्कूल भी थे जिनकी संख्या नगण्य थी। इनके निरीक्षण का अधिकार सरकार को प्राप्त था। बुन्देलखण्ड एजेन्सी के सम्भाग के अन्य जिलों में शिक्षा की लगभग यही स्थिति थी। ब्रिटिश शासन की स्थापना के समय हिन्दू पाठशालाओं में और मुसलमान मक्काओं में शिक्षा ग्रहण करते थे। ये धार्मिक स्कूल थे जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा के अलावा कुछ गणित

[29] जोशी,ई0बी0, उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक गजेटियर, झाँसी डिस्ट्रिक्ट, 1965, पृष्ठ 268
[30] जोशी,ई0बी0, उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक गजेटियर, झाँसी डिस्ट्रिक्ट, 1965, पृष्ठ 268

भी पढ़ायी जाती थी।[31] विभिन्न व्यवसायों में लगे लोग अपने बच्चों को उन्ही व्यवसाय से सम्बन्धित शिक्षा देते थे जिनमें बढ़ईगीरी, लोहार, दर्जी आदि व्यवसायों से सम्बन्धित प्रशिक्षण प्रमुख थे।

लड़कियो की शिक्षा का अधिक प्रचलन न था उन्हे गृहकार्य का प्रशिक्षण घर की महिलाओं द्वारा खाना पकाना, कढ़ाई, बुनाई इत्यादि प्रशिक्षण देने के साथ धर्म के मूलभूत तथ्यों की भी जानकारी दी जाती थी। धीरे–धीरे शिक्षा का यह स्वरूप सरकारी केन्द्रों मे परिवर्तित होने लगा। इन्हे तहसीली और हल्का बन्दी स्कूल कहा जाता था।[32]

1855 ई. में हमीरपुर जिले में 8 तहसीली स्कूलों की स्थापना की गई जो क्रमशः हमीरपुर, सुमेरपुर, गहरौली, जैतपुर, मौदहा, पनवाड़ी, महोबा एवं राठ में थे। इसके पश्चात् गाँव में प्राइमरी स्कूल खोले गए। 1861 ई. में हमीरपुर जिले में ऐसे 28गाँव थे। 1862 ई. में हमीरपुर में एक एंग्लो–वर्नाकुलर स्कूल खोला गया। अगले वर्ष एक सरकारी मिडिल स्कूल खोला गया तथा गाँवों में स्कूलों की संख्या 71 कर दी गई। 1864 ई. में लड़कियों की शिक्षा के लिए 5 स्कूल खोले गए जिनमें शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की कुल संख्या 54 थी। मौदहा एवं महोबा में भी एक–एक एंग्लो–वर्नाकुलर स्कूल खोला गया। 1867 ई. में हमीरपुर के एंग्लो–वर्नाकुलर स्कूलों को जिला स्कूलों में बदल दिया गया और हमीरपुर तथा पनवाड़ी के मिडिल स्कूलों को समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार 1870 ई. तक हमीरपुर जिले में 6 तहसीली स्कूल थे जिनमें 280 विद्यार्थी थे। इसके अतिरिक्त 52 ग्राम स्कूल थे जिनमें 1754 विद्यार्थी थे एवं 45 पुराने शिक्षा केन्द्र थे जिनमें लगभग

[31] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झाँसी डिस्ट्रिक्ट, 1909, पृष्ठ 268
[32] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झाँसी डिस्ट्रिक्ट, 1909, पृष्ठ 223

556 विद्यार्थी थे। जिले में लडकियों के लिए दो प्राथमिक स्कूल थे जिनमें 36 लड़कियाँ थी।[33]

झाँसी जिले में लडकियों की शिक्षा प्रारम्भ करने का वर्ष 1866 माना जा सकता है। जब ललितपुर में लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की गई। 1868 ई. में जिला स्कूलों तथा ललितपुर में लड़कियों की शिक्षा में वृद्धि हुई और बालिकाओं के लिए चार अन्य स्कूल महरौनी में खोले गए। 1870 ई. में इन 5 स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की संख्या लगभग 116 थी।

1872 ई. में झाँसी में 7 ऐसे स्कूलों की स्थापना की गई तथा ललितपुर में लड़कियो के स्कूलों की संख्या बढ़ाकर दस कर दी गयी। इनमें कुल 384 छात्राएं थी किन्तु 1875 में यह अनुभव किया गया कि लड़कियों की इन स्कूलों में उपस्थिति बहुत कम थी अतः 6 स्कूल बन्द कर दिए गए। 1880 ई. में झाँसी जिले में लड़कों के लिए कुल 3 स्कूल थे जिनमें केवल 60 लड़कियाँ थी।[34]

बाँदा जिले में भी शिक्षा की लगभग यही स्थिति थी। 1850 ई. से पूर्व जिले में शिक्षा के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त नही होती। 1850 ई में बाँदा जिले में लगभग 135 शिक्षा केन्द्र थे जिनमें अरबी, फारसी और संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। इनमें लगभग 1100 विद्यार्थी थे। 1857 ई. की क्रान्ति के पूर्व जिले में कोई सरकारी स्कूल नही था। 1856 ई. मे अमेरिकन प्रेस ब्रिटेरियन मिशन द्वारा मिस्टर पॉल के नेतृत्व में एक किराए के मकान में एक स्कूल खोला गया। 1857 ई. की क्रान्ति के पश्चात् पुनः शान्ति स्थापित हो जाने के बाद इसे मिशन की इमारत में ले जाया गया और कलेक्टर मैन के प्रभुत्व के कारण इसे तहसीली स्कूल में परिवर्तित

[33] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, हमीरपुर डिस्ट्रिक्ट, 1909, पृष्ठ 223
[34] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, हमीरपुर डिस्ट्रिक्ट, 1909, पृष्ठ 268

किया जा सका। उसी वर्ष तिन्दवारी, सिहोन्दा, कांलिजर, तराइन, सिन्धकलाँ तथा कमासिन में तहसीली स्कूलों की स्थापना की गई। बबेरू तथा मऊ में अगले वर्ष तहसीली स्कूल खोले गए।[35] प्रारम्भ के कुछ वर्षों तक इन स्कूलों में छात्रों की कुल संख्या 500 से अधिक नही थी। 1863 ई. में बाँदा शहर के स्कूल को एंग्लो–वर्नाकुलर स्कूल बना दिया गया एवं 1867 ई. में यह तीसरी कक्षा तक जिला स्कूल बना दिया गया। 1874 ई. में यह एक अच्छी श्रेणी का जिला स्कूल बन गया था। बाद में 1901 ई0 में एवं 1906 ई. में इसके शिक्षकों की संख्या भी बढ़ा दी गई।[36]

1871–1880 के समय तक जिले में तहसीली स्कूलों की संख्या घटकर सात रह गई थी एवं छात्रों की औसत उपस्थिति घटकर 271 रह गई थी। इसी समय ग्राम स्कूलों की संख्या 180 से कम करके 156 कर दी गई जिनमें उपस्थिति का औसत भी पिछले दशक के 3972 छात्रों की अपेक्षा कम होकर 3694 रह गयी थी।[37] **ड्रेकब्रॉकमैन** के अनसुार जिले मे कुछ मिशनरी स्कूल थे। सोसायटी फार दी प्रोपेगेशन ऑफ दी ग्रास्पल मिशन द्वारा बाँदा और कर्वी शहरों में स्कूलों की स्थापना की गई जिनमें से बाँदा के स्कूल को जिला एवं नगर निगम बोर्ड द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। इसी मिशन द्वारा छात्राओं के दो स्कूलों एवं निजी स्कूल को भी सहायता दी जाती थी। इन निजी मिशन स्कूल तथा एक अन्य सहायता प्राप्त स्कूल में मुसलमान छात्रों द्वारा शिक्षा ग्रहण की जाती थी जबकि दूसरे स्कूल में हिन्दू विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त तक

---

[35] ड्रेक ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर, (वही) 1909, पृष्ठ 152
[36] ड्रेक ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर, (वही) 1909, पृष्ठ 153
[37] ड्रेक ब्राकमैन डी.एल., बाँदा गजेटियर, (वही) 1909, पृष्ठ 153

बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे शिक्षा का समुचित विकास नही हुआ था। 1881 ई. में झाँसी जिले में पुरुष साक्षरता दर केवल 5.4 प्रतिशत एवं स्त्री साक्षरता दर 0.07 प्रतिशत थी तथा 1891 ई. में यह दर क्रमशः 7.2 प्रतिशत एवं 0.22 प्रतिशत थी।[38] हमीरपुर जिले में 1881 ई. में 5 प्रतिशत पुरुष एवं 0.03 प्रतिशत स्त्रियां साक्षर थी। 1891 के आँकड़ों के अनुसार यह दर 5.5 प्रतिशत एवं 0.05 प्रतिशत थी।[39] क्षेत्र के अन्य जिलों में भी शिक्षा का अधिक विकास नही हुआ था लेकिन ब्रिटिश सरकार शिक्षा के क्षेत्र में इस धीमी प्रगति से अनभिज्ञ नही थी। सरकार द्वारा बुन्देलखण्ड में शिक्षा के विकास के लिए अनेक प्रयास किए गए। इन प्रयासों के अतर्गत नौगाँव में राजकुमार कॉलेज की स्थापना का कार्य सबसे महत्वपूर्ण था। लार्ड मेयों की मृत्यु के बाद उसकी याद में बुन्देलखण्ड के नौगाँव क्षेत्र में एक कॉलेज प्रारम्भ करने की योजना बनाई गई। इस कॉलेज में क्षेत्र के राजप्रमुखों एवं जमींदारों के लड़को को शिक्षित किए जाने का विचार था।

नौगाँव में राजकुमार कॉलेज की स्थापना :

सन् 1872 में बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट द्वारा लार्ड मेयो की स्मृति में बुन्देलखण्ड में शिक्षा की प्रगति के उद्देश्य से नौगाँव में एक शिक्षा केन्द्र स्थापित किए जाने का प्रस्ताव केन्द्रीय भारत के गर्वनर जनरल को भेजा गया। गर्वनर जनरल के एजेण्ट द्वारा इस प्रस्ताव की अत्यन्त सराहना की गयी। उसने

[38] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झाँसी डिस्ट्रिक्ट, 1909, पृष्ठ 270
[39] उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, हमीरपुर डिस्ट्रिक्ट, 1909, पृष्ठ 225

पॉलिटिकल एजेण्ट की सराहना करते हुए लिखा था कि "**बुन्देलखण्ड राज्यों द्वारा लार्ड मेयों के सम्मान में यह एक अति सराहनीय कार्य होगा।**"[40]

इस प्रकार नौगाँव में राजकुमार कॉलेज की स्थापना का निर्णय लिया गया। इसके लिए सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी के विभिन्न प्रमुखों एवं अन्य लोगों से चन्दा प्राप्त करने के लिए उनसे लिखित निवेदन किया गया। गर्वनर जनरल के एजेण्ट के अनुसार यद्यपि इस कार्य के लिए प्राप्त होने वाले चन्दे के सम्बन्ध में सरकार चाहती थी कि चन्दा देने वाले इसके सम्बन्ध में अपनी–अपनी शर्ते न रखें लेकिन यदि राजप्रमुखों द्वारा शिक्षा की प्रगति के लिए स्थापित किए जाने वाले इस कॉलेज के निर्माण के लिए चन्दा दिया जाता है तो सरकार को उनके पुत्रों के लिए बनाए जाने वाले इस कॉलेज के साथ लार्ड मेयों का नाम जोड़ने पर कोई आपत्ति नही होगी।[41]

राजकुमार कॉलेज स्थापित करने की इस योजना के अनुसार विभिन्न राजप्रमुखों से लगभग रु0 20000 चन्दे के रूप में सहायता प्राप्त होने की आशा थी। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के बहुत से प्रमुख अधिक धनी नही थे और शिक्षा की उपयोगिता के बारे में भी वह अधिक जागरूक नही थे। अतः उनसे प्राप्त होने वाली रु0 20000 की धनराशि इस कार्य के लिए अत्यधिक महत्व रखती थी। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा कॉलेज की बिल्डिंग के निर्माण के लिए लगभग रु0 20000 प्रदान किए जाने की आशा थी। इस प्रकार बिल्डिंग के लिए लगभग रु0 40000 प्राप्त होने थे।

[40] फाइल संख्या 5/1872 – पत्र संख्या 481
[41] फाइल संख्या 5/1872 – पत्र संख्या 481

योजना के अनुसार इस धनराशि में से लगभग रु0 5000 अस्थायी स्कूल के लिए एक बड़ा बंगला खरीदने में खर्च कर दिए गए। रु0 2500 इसकी मरम्मत तथा फर्नीचर आदि पर खर्च कर दिए गए। इसके अतिरिक्त स्कूल सुप्रीटेंडेंट के रहने के लिए एक घर की व्यवस्था की गई जिस पर रु0 3500 खर्च हुए। शेष रु0 29000 को स्कूल इमारत के लिए 4 प्रतिशत ब्याज पर सरकार के पास निवेशित किया गया ताकि इस धन से स्कूल बिल्डिंग तथा एक बोर्डिंग का निर्माण कराया जा सके जिसमें प्रमुखो के लड़के रह सके। यह भी निर्णय किया गया कि ब्याज से प्राप्त रु0 1160 प्रतिवर्ष की धनराशि को स्कूल बिल्डिंग पर खर्च किए जाने के उद्देश्य से मूलधन में जोड़ दिया जाए।

इसके अतिरिक्त यह विचार किया गया कि यदि सरकार द्वारा स्कूल सुप्रीटेंडेंट को लगभग रु0 10000 वार्षिक की राशि दी जाए तो यह स्कूल में अच्छे अध्यापक रखने के लिए पर्याप्त होगी। इसी धन से उन ठाकुरों के लड़कों के रहने के लिए दो–तीन छोटे घरों का प्रबन्ध भी किया जा सकता था जो यहाँ अपने रहने की व्यवस्था नही कर सकते थे, लेकिन इन सभी कार्यो के लिए यह अति आवश्यक था कि स्कूल के लिए दिए जाने वाले चन्दे की राशि नियमित रूप से प्राप्त होती रहे।

भारत के वायसराय तथा गर्वनर जनरल स्कूल के पैर्टन थे। इसी प्रकार मध्य भारत के गर्वनर जनरल के एजेण्ट स्कूल के वाइस पैर्टन थे। योजना के अनुसार स्कूल की प्रबन्ध समिति में निम्न व्यक्ति थे –

पॉलिटिकल एजेण्ट बुन्देलखण्ड स्कूल का पदेन प्रेसीडेन्ट था। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध समिति में जिन सदस्यों को रखने की योजना थी वह थे – ओरछा

तथा टिहरी के प्रमुख। दतिया, समथर, बाउनी, पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर और छतरपुर के प्रमुख। स्कूल का सुप्रीटेंडेंट कमेटी के सचिव पद पर होगा और कोषाध्यक्ष के पद के लिए पॉलिटिकल एजेण्ट बुन्देलखण्ड को रखने की योजना बनाई गई। यह योजना बनाई गई कि कॉलेज मे प्रवेश चन्दा देने वालों के द्वारा नामित लड़कों को दिया जाए। प्रत्येक रु0 100 वार्षिक चन्दा देने वाले को एक छात्र नामित करने का अधिकार होगा किन्तु कोई भी व्यक्ति इस से अधिक छात्रों को कॉलेज में दाखिले के लिए नामित नही कर सकता। चन्दा देने वालों द्वारा नामित छात्रों की सीटें पूरी हो जाने पर सीटों के लिए कॉलेज कमेटी द्वारा प्रार्थना पत्र प्राप्त कर उन पर विचार किया जाएगा।[42]

कॉलेज कमेटी को किसी भी छात्र अथवा अध्यापक को उसके बुरे व्यवहार के लिए कॉलेज से निकालने का अधिकार होगा किन्तु इसके लिए कमेटी के कम से कम पाँच सदस्य इस पर सहमत होना चाहिए। कॉलेज में मुख्यतः बुन्देलखण्ड के प्रमुखों के बेटों तथा उनके निकट सम्बन्धियों को प्रवेश दिए जाने की योजना थी जो भविष्य में या तो स्वयं प्रमुख होगे या अपने–अपने राज्य के राज प्रमुखों के साथ जुड़े रहेंगे। इस प्रकार की एक विशेष कक्षा बनाने के लिए आवश्यक था कि कॉलेज में अन्य सामान्य छात्रों को प्रवेश न दिया जाए। कॉलेज में प्रारम्भ में सुप्रीटेंडेंट के अतिरिक्त निम्न विषयों के अध्यापकों की नियुक्ति की योजना थी– एक अंग्रेजी अध्यापक जिसे रु0 150 प्रतिमाह दिए जाने का प्रस्ताव था। इसके अतिरिक्त एक पर्शियन, उर्दू तथा एक हिन्दी अध्यापक था जिन्हे रु0 80 प्रतिमाह

[42] फाइल संख्या 5/1872 – पत्र संख्या 481

वेतन दिया जाएगा। घुड़सवारी तथा जिम्नास्टिक सिखाने के लिए भी एक अध्यापक रखने का प्रस्ताव था जिसे रु0 60 प्रतिमाह वेतन दिया जाएगा।

अन्य कर्मचारियों पर रु0 50 प्रतिमाह के खर्च का अनुमान था। इस प्रकार प्रारम्भ में कॉलेज का खर्च रु0 420 प्रतिमाह का अनुमान लगाया गया बाद में छात्रों की संख्या बढ़ने पर अध्यापको की संख्या में भी वृद्धि की जा सकती थी।[43] कॉलेज में किस प्रकार की शिक्षा दी जाए इस पर भी विचार किया गया। कॉलेज के उद्देश्य के अनुसार शिक्षा ऐसी होगी जो प्रत्येक विद्यार्थी के भविष्य के जीवन में सहायक हो सकें। साधारण शिक्षा के साथ–साथ यह भी सोचा गया कि कॉलेज में घुड़सवारी तथा जिम्नास्टिक की शिक्षा भी दी जाएगी लेकिन योजना के अनुसार इस घुड़सवारी कक्षा के लिए छात्रों को अपने घोड़े लाने होगें।[44]

यह भी तय किया गया कि उन्ही छात्रों से फीस ली जाएगी जिनका चयन प्रार्थनापत्र के आधार पर कमेटी द्वारा किया जाएगा लेकिन जो छात्र नामित किए जाएगें उनसे कोई फीस नही ली जाएगी। फीस कितनी होगी यह तय करने का अधिकार भी कॉलेज कमेटी को दिया गया।[45] सन् 1873 में पॉलिटिकल एजेण्ट बुन्देलखण्ड एजेन्सी के प्रमुखों द्वारा रु0 20000 दान स्वरूप देना स्वीकार कर लिया गया। इसके अतिरिक्त वे लगभग रु0 11000 वार्षिक स्कूल के रख–रखाव के लिए भी देगें।

सर्वप्रथम समथर के राजा बहादुर ने राजकुमार स्कूल प्रारम्भ करने के लिए अपनी सहमति दी। इसके पश्चात् दतिया के महाराजा ने इसे लार्ड मेयों के

[43] फाइल संख्या 5/1872
[44] फाइल संख्या 5/1872
[45] फाइल संख्या 5/1872

मेमोरियल के रूप में स्वीकार करते हुए इसका समर्थन किया। इसके बाद पन्ना के महाराजा ने तत्काल इस स्कूल की योजना को अपनी स्वीकृति देते हुए इसके लिए एक निश्चित धनराशि देने का निश्चय किया। नौगाँव मे स्कूल प्रारम्भ करने की योजना के लिए पॉलिटिकल एजेण्ट बघेलखण्ड को भी सहयोग देने के लिए कहा गया लेकिन मेजर **बैनरमेन** ने इस बारे में अपनी असमर्थता व्यक्त की क्योंकि एजेन्सी का गठन हो जाने के पश्चात् बघेलखण्ड एजेन्सी के प्रमुख नौगाँव मे मेमोरियल कॉलेज खोलने के लिए उत्सुक नही थे।

समथर तथा आमरा द्वारा दिए जाने वाले वार्षिक अनुदान मे से आमरा की रानी ने रु0 300 वार्षिक देना स्वीकार किया। बाउनी द्वारा स्कूल के लिए यद्यपि रु0 600 वार्षिक सहायता देने की बात कही गयी थी किन्तु प्रारम्भ मे यह राशि केवल रु0 120 प्रतिवर्ष थी और धीरे–धीरे बढ़ाकर यह पाँच वर्षो मे रु0 600 की जा सकी क्योंकि शुरू में इस राज्य की आर्थिक स्थिति सही नही थी। इसी प्रकार अजयगढ़ राज्य द्वारा भी प्रथम तीन वर्षो तक रु0 600 वार्षिक की सहायता ही दी जा सकी लेकिन राज्य द्वारा अपने ऋण चुकाए जाने के बाद यह सहायता बढ़ाकर रु0 900 प्रतिवर्ष कर दी गयी। घरौली द्वारा भी नौगाँव राजकुमार स्कूल के लिए प्रथम वर्ष में केवल रु0 24 वार्षिक सहायता दी गई जिसे तीन वर्षो के बाद रु0 48 वार्षिक कर दिया गया।

एजेन्सी की विभिन्न रियासतों द्वारा इस कॉलेज के लिए प्रदान की गई आर्थिक सहायता से इसकी योजना के क्रियान्वयन में शीघ्र ही सफलता मिली। स्कूल के लिए जल्दी ही नौगाँव में रु0 5000 में एक बड़ा मकान खरीद लिया गया जिसमें स्कूल प्रारम्भ करने के लिए पुर्ननिर्माण का कार्य भी किया गया लेकिन स्कूल

के लिए फर्नीचर, किताबें, यन्त्र आदि क्षेत्र की विभिन्न रियासतों द्वारा उपलब्ध करायी गयी।

एजेन्सी के विभिन्न राजप्रमुखों द्वारा नौगाँव के राजकुमार कॉलेज को दी जाने वाली दान राशि तथा वार्षिक सहायता इस प्रकार थी –

राज्य	दान की राशि (रुपये)	धनराशि (रुपये)
ओरछा या टिहरी	3000	1500
दतिया	3000	1500
समथर तथा आमरा	2500	1500
बाउनी	800	600
पन्ना	2000	1200
चिरखारी	2000	1200
अजयगढ़	1500	900
बिजावर	1000	600
छतरपुर	1500	900
बरौन्दा	100	60
सरीला	200	120
खनियाधाता	50	60
अलीपुरा	400	120
घरौली	100	48
लुगासी	100	48
बीहट	100	36
गौरीहार	500	120
बेरी	100	48
जासो	50	36
नयागाँव रूबाई	100	36
पालदेव	100	60
तराउन	25	36
पहारा	80	36
भैसुन्दा	75	36
कामता रजौला	20	24
टेरी फतेहपुर	200	60
बिजना	50	30
घुरवई	100	48
पहारा. बन्का	20	24
जिगनी	150	48
मोफीदार बिलहरी	25	24
पॉलिटिकल पेन्शनर	55	144
कुल	20000	11202

सन् 1874 मे भारत सरकार ने राजकुमार कॉलेज खोलने की स्वीकृति दे दी। कॉलेज बिल्डिंग फण्ड के लिए सरकार द्वारा कॉलेज सुप्रीटेंडेंट का वेतन लगभग रु0 400 प्रतिमाह तथा रहने के लिए नि:शुल्क घर पहले तीन वर्षों के लिए दिया जाना स्वीकार कर लिया गया। कॉलेज सुप्रीटेंडेंट का वेतन उसका कार्य सन्तोषजनक होने पर प्रति वर्षों के लिए रु0 100 की दर से बढ़ाए जाने का निर्णय भी लिया गया, चूँकि कॉलेज में राजप्रमुखों एवं जागीरदारों के बच्चों को प्रवेश देने का विचार था इसलिए यह अति आवश्यक था कि कॉलेज का सुप्रीटेंडेंट एक अत्यन्त योग्य प्रशासक हो। बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट को कॉलेज का मुख्य प्रबन्धक नियुक्त किया गया।[46] **श्री जॉन मैथर** को 5 जून 1875 को बुन्देलखण्ड के राजकुमार कॉलेज का सुप्रीटेंडेंट नियुक्त किया गया।[47]

स्कूल के नियमानुसार निम्न वर्गो के छात्र यहाँ प्रवेश पाने के पात्र थे–

1. राजकुमार अर्थात् प्रमुख तथा प्रमुखों के पुत्र
2. राजप्रमुखों के सगे सम्बन्धी
3. उच्च राज दरबारियों के पुत्र

लेकिन यह निश्चित था कि श्रेणी 2 तथा 3 के छात्रों के प्रवेश से प्रथम श्रेणी के छात्रों के लिए कोई रुकावट नही होनी चाहिए। पॉलिटिकल एजेण्ट ने स्कूल के बारे में अपनी प्रथम रिपोर्ट मे लिखा कि **''स्कूल सुप्रीटेंडेंट श्री मैथर एक शान्त एवं**

[46] फाइल संख्या 5/1872 पत्र दिनांक 21 फरवरी 1874, भारत सरकार के सचिव का पत्र।
[47] फाइल संख्या 5/1872 पत्र दिनांक 21 फरवरी 1874, भारत सरकार के सचिव का पत्र।

दृढ़ निश्चय का व्यक्ति था जिसने छात्रों की पढ़ाई के साथ – साथ उनके खेलकूद को भी प्रोत्साहित किया।[48]''

इस प्रकार लार्ड मेयो की स्मृति मे नौगाँव मे राजकुमार कॉलेज का प्रारम्भ हुआ। श्री मैथर को जून 1875 में इसका प्रथम सुप्रीटेंडेंट नियुक्त किया गया और 1 जुलाई 1875 से कॉलेज औपचारिक रूप से शुरू किया गया। प्रथम माह में कॉलेज में 17 लड़के थे। छात्रों की संख्या प्रारम्भ में अधिक न होने के मुख्यतः दो कारण थे– एक तो वर्षा ऋतु शुरू हो जाने के कारण अभी छात्रों के रहने का समुचित प्रबन्ध नही हो सका था इसके अतिरिक्त आस–पास के क्षेत्रों मे हैजा फैल चुका था, जिसका प्रकोप कुछ महीनों तक रहा अतः कॉलेज मे अधिक छात्रों ने प्रवेश नही लिया। अधिकांश छात्र छोटी रियासतों के राजप्रमुखों के घराने से थे। इनमें सरीला का राजा, जिगनी के जागीरदार, छतरपुर के राजा के सम्बन्धी, लुगासी के जागीरदार का भाई तथा सम्बन्धी, पन्ना, चिरखारी तथा अन्य राज्यों के सरदारों के पुत्र, छतरपुर तथा जिगनी के सुप्रीटेंडेंट के पुत्रों को प्रवेश दिया गया।

राजाओं एवं जागीरदारों के पुत्रों के साथ–साथ उनके सम्बन्धियों एवं सरदारों के पुत्रों को स्कूल में प्रवेश देने का लाभ यह हुआ कि उनमे प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ी जिस कारण इस स्कूल ने कई सफल शासकों के निर्माण में योगदान दिया। अतः यह निष्कर्ष गलत नही होगा कि यदि केवल शासकों के पुत्रों को ही स्कूल में प्रवेश दिया जाता तो उनमें आपस में एक–दूसरे से आगे बढ़ने की भावना न होने के कारण वे अधिक परिश्रम और लगन से पढ़ाई न करते।

---

[48] फाइल संख्या 5/1872 प्रथम सत्र की रिपोर्ट।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के रियासतों मे शिक्षा की स्थिति –

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत स्थित रियासतों में भी शिक्षा की स्थिति दयनीय थी। 1866 में दतिया दरबार के सदस्य नन्दकिशोर ने लिखा था कि **''दतिया राज्य में 5 स्कूल थे जिनमें एक सदर स्टेशन दतिया में स्थित था तथा तीन परगनों इन्द्रगढ़, श्योनदाह तथा नदीगाँव मे प्रत्येक मे से एक मे स्थित था। इन स्कूलों में तीन कक्षाएं थी पर्शियन, हिन्दी एवं अंग्रेजी, परगना स्कूलों मे हिन्दी एवं पर्शियन ही पढ़ायी जाती थी।''** दतिया रियासत में कुल 11 अध्यापक थे जिनमें दतिया स्कूल में चार 1 हिन्दी, 1 अंग्रेजी, 1 पर्शियन तथा 1 सुलेख के अध्यापक थे। यही स्थिति अन्य परगनों में थी। इसके अतिरिक्त इन स्कूलों मे एक क्लर्क, एक चपरासी, एक लाइब्रेरियन नियुक्त था। इन स्कूलों का खर्च राज्य सरकार वहन करती थी।[49] 1866 में दतियां रियासत के पांच स्कूलों मे कुल 265 छात्र थे। ऐसा प्रतीत होता है कि रियासतों में लोगों को शिक्षा प्राप्त करने में रुचि नही थी। खेती करने वाले लोग अपने लड़कों को स्कूल भेजते नही थे। प्रायः राज्य अधिकारियों के लड़के, ब्राम्हण, कायस्थ या लेखक श्रेणी के परिवारो के ही लड़के ही इन स्कूलों मे प्रवेश लेते थे।[50] 1879 में जॉन मैथर जो राजकुमार कॉलेज नौगाँव मे प्राचार्य थे उन्होने दतिया स्कूल का निरीक्षण किया।[51] उन्हे इस कार्य के उत्तरदायित्व के लिए पॉलिटिकल एजेण्ट बुन्देलखण्ड द्वारा भेजा गया था।[52] मैथर ने अपनी रिपोर्ट मे उल्लेख किया कि **''इन स्कूलों में अंग्रेजी की तीन कक्षाएं लगती थी जिनका स्तर**

---

[49] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 3/1866
[50] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 3/1866
[51] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 3/1866
[52] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878

सामान्य था। मैथर ने इन स्कूलों के छात्रों को सुलेख मे सुधार की आवश्यकता बताई उन्होने इन कक्षाओं में अंकगणित की पढ़ाई को भी सन्तोषजनक नहीं पाया।[53]''

स्कूलों का स्तर सन्तोषजनक न होने के कारण उनमें कार्यरत अध्यापकों का वेतन कम होना बताया गया। इसलिए मैथर ने अध्यापकों का वेतन बढ़ाने की संस्तुति की। 1880 में इसी टीम ने पुनः इन स्कूलों का वार्षिक निरीक्षण किया। निरीक्षण दल ने यह पाया कि गतवर्ष की तुलना में इस वर्ष के छात्र सभी विषयों में कमजोर थे। बुन्देलखण्ड मे केवल दतिया स्कूल ही एक मात्र ऐसा स्कूल था जिसमें स्थिति अन्य क्षेत्रों की तुलना में सन्तोषजनक थी।

छतरपुर रियासत मे शिक्षा की स्थिति दतिया से अधिक भिन्न नही थी। मैथर द्वारा बुन्देलखण्ड एजेन्सी के रियासतो के सभी स्कूलों का निरीक्षण कर प्रति वर्ष रिपोर्ट पॉलिटिकल एजेण्ट को भेजी जाती थी जिसके आधार पर पॉलिटिकल एजेण्ट रियासतों को शिक्षा सुधार सम्बन्धी निर्देश देते थे। 1878 मे मैथर, पण्डित मुकुन्दलाल शास्त्री, मौलाना काजिम हुसैन तथा लाला दुर्गाप्रसाद द्वारा छतरपुर स्कूल का निरीक्षण किया गया। जाँच दल ने पाया कि स्कूल मे कुल 57 छात्र थे जिसमें वर्ष भर कुल 32 छात्र ही उपस्थित रहे। इस रिपोर्ट के आधार पर पॉलिटिकल एजेण्ट ने छतरपुर दरबार को छात्रों की उपस्थिति बढ़ाने के निर्देश दिए। इस दल ने स्कूल में पढ़ाई जा रही पुस्तकों के स्तर को भी कठिन पाया विशेषतः अंग्रेजी भाषा की पुस्तक छात्रों की दृष्टि से कठिन थीं जाँच दल ने अध्यापकों द्वारा छात्रों पर पर्याप्त रुचि न लेने के सम्बन्ध मे भी चिन्ता जाहिर की।

[53] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878

इस स्कूल का अगला निरीक्षण 24 सितम्बर 1880 को हुआ लेकिन स्तर में कोई सुधार नही पाया गया। 1880 की तुलना में 1882 में कुछ सुधार अवश्य परिलक्षित हुआ क्योंकि छात्रों की संख्या 85 से बढ़कर 111 हो गयी थी।[54]

1879 में इसी तरह अजयगढ़ का निरीक्षण किया गया और स्थिति असन्तोषजनक पायी गयी।[55] यहाँ न तो उचित कक्षाए थी और न ही उचित पुस्तके थी। 1879 में पॉलिटिकल एजेण्ट के निर्देश से अजयगढ़ स्कूल के स्तर मे सुधार होने लगा। स्कूल मे एक नए अध्यापक की नियुक्ति की गयी जो भाण्डेर का निवासी था जिसकी प्रशंसा करते हुए जाँच दल के सदस्य मैथर ने पॉलिटिकल एजेण्ट को लिखा था कि **''यह अध्यापक न केवल शिक्षा कला मे परिपक्व था बल्कि शैक्षिक प्रबन्ध करना भी जानता था।''** नवम्बर 1879 के निरीक्षण के दौरान मैथर ने पाया कि छात्रों की संख्या एवं उपस्थिति लगभग दोगुनी हो गयी है।[56]

बुन्देलखण्ड के अन्य रियासतों मे शिक्षा का स्तर –

बुन्देलखण्ड की अन्य रियासतों मे टिहरी की रियासत प्रमुख थी। यहाँ शिक्षा सम्बन्धी एक विशेष बात यह थी कि टिहरी में लड़कों और लड़कियों के स्कूल साथ ही साथ थे और एक ही छत के नीचे थे। इन स्कूलों में अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और पर्शियन पढ़ाई जाती थी। टिहरी के महाराजा ने पृथ्वीपुर मे भी एक स्कूल स्थापित किया था जिसमें 40 छात्र थे और यहाँ केवल हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी पृथ्वीपुर के स्कूल में अन्य स्कूलों की अपेक्षा अच्छी पढ़ाई होती थी।[57] नवम्बर 1880

---

[54] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878
[55] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878
[56] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878 पत्र दिनांक 13 दिसम्बर 1879, महाराजा का पत्र
[57] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878

मे लड़कियों के लिए एक नई स्कूल बिल्डिंग बना ली थी और इस तरह लड़के और लड़कियो के स्कूल अलग–अलग हो गए। यहाँ सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि टिहरी एक मात्र ऐसी रियासत थी जिसने लड़कियों की शिक्षा में पर्याप्त रुचि ली और एक सराहनीय कार्य किया।[58]

समथर रियासत में शिक्षा का अधिक विकास नही हुआ था। अक्टूबर 1879 में किए गए एक निरीक्षण की रिपोर्ट से यह ज्ञात हुआ कि जब तक इन स्कूलों की देखरेख के लिए अलग से किसी अधिकारी की नियुक्ति नही की जाती तब तक इनमें सुधार की अपेक्षा करना सम्भव नही है।[59] यहाँ के स्कूलों की खराब स्थिति के लिए निरीक्षण टीम ने सुझाव दिया था कि यहाँ योग्य और जिम्मेदार अध्यापक की नियुक्ति की जाए। अभी तक अध्यापकों को नगद वेतन नही मिलता था बल्कि उनके पारिश्रमिक के रूप में कुछ भूमि दे दी जाती थी।[60] निरीक्षण टीम ने यह सुझाव दिया कि अध्यापकों को भूमि के साथ–साथ नगद वेतन दिया जाए।[61] 1880 तक आते–आते समथर स्कूल ने कुछ प्रगति अवश्य कर ली थी। 1884 के निरीक्षण के समय प्रगति स्पष्ट दिखाई देने लगी।[58]

पन्ना दरबार द्वारा स्कूल के विकास के लिए कोई रुचि नही ली गई। यद्यपि महाराजा पन्ना स्कूल के लिए पर्याप्त खर्च देते थे किन्तु अध्यापक शिक्षण कार्य में रुचि नही लेते थे। 1879 में इसकी जाँच के लिए नियुक्ति श्री मैथर[62] ने सुझाव दिया कि पन्ना स्कूल में अध्यापकों की संख्या भले कम कर दिया जाए लेकिन

---

[58] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878
[59] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878
[60] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878 पत्र दिनांक 28 अक्टूबर 1879
[61] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878 पत्र दिनांक 28 अक्टूबर 1879
[62] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878 पत्र दिनांक 28 अक्टूबर 1879

उनका वेतन बढ़ा दिया जाए। ऐसा करने से शैक्षणिक वातावरण सुधर सकेगा, लेकिन 1879 में जाँच दल ने पाया कि **''इस स्कूल में जीवन एवं स्फूर्ति की कमी है।''** छात्रों की उपस्थिति पंजिका नही बनायी जाती थी सम्भवतः इस निरीक्षण के बाद पन्ना दरबार ने स्कूल के विकास के लिए ध्यान देना प्रारम्भ किया। फलतः 1880 मे आते–आते छात्रों एवं अध्यापकों की उपस्थिति में काफी प्रगति हुई।[63]

चरखारी में स्कूलों का स्तर अपेक्षाकृत सन्तोषजनक था। 1 फरवरी 1867 को गर्वनर जनरल के एजेण्ट ने स्वयं यहाँ का निरीक्षण किया था और यहाँ की पढ़ाई पर सन्तोष व्यक्त किया था।[64] इस स्कूल के प्रधान अध्यापक अमीर खाँ एक योग्य शिक्षक एवं कुशल प्रशासक थे। 1880 के निरीक्षण रिपोर्ट में भी चरखारी स्कूल की प्रगति पर सन्तोष व्यक्त किया गया।[65] 1884 के निरीक्षण के समय बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट ने परीक्षा में सफल होने वाले परिक्षार्थियों को पुरस्कार वितरण किए थे।[66]

बिजावर मे भी स्कूली शिक्षा की स्थिति असन्तोषजनक थी। अलीपुरा मे शिक्षा की स्थिति अपेक्षाकृत ठीक थी। अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन हरपालपुर में एक स्कूल अवश्य चलाया जा रहा था। 1916 मे अलीपुरा के राजा ने इसके लिए कुछ भूमि प्रदान की थी।[67] अलीपुरा के राजा का यह प्रयास प्रशंसनीय रहा।

उर्पयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लोगों को शिक्षा में विशेष रुचि नही थी। ब्रिटिश सरकार इस

---

[63] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 1/1878
[64] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 3/1866
[65] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 3/1866
[66] बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड्स, फाइल संख्या 3/1866
[67] फाइल संख्या 104 पत्र दिनांक 28.4.1916

क्षेत्र में शिक्षा उन्नयन के लिए किसी भी प्रकार का आर्थिक भार स्वयं नही उठाना चाहती थी। उच्च वर्ग के लोगों की भी शिक्षा में विशेष रुचि नही दिखाई देती यद्यपि अंग्रेजी शासन को इस बात की जानकारी थी कि किस जागीरदार का पुत्र किस आयु वर्ग का है।[68] और उसे शिक्षा के लिए कहाँ भेजना चाहिए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शिक्षा किस प्रकार की हो, आम नागरिको और जागीरदारों के बालकों की शिक्षा में कितनी भिन्नता हो आदि महत्वपूर्ण निर्णय ब्रिटिश सरकार द्वारा लिया जाता था। यह इसलिए किया गया था ताकि जागीरदारों के बालकों की शिक्षा को नियन्त्रित कर ब्रिटिश सरकार उनके दृष्टिकोण को परिवर्तित कर सकें। ब्रिटिश सरकार द्वारा किए गए लघु प्रयासों से स्पष्ट होता है कि अभी शिक्षा के विकास के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाने की आवश्यकता थी।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी मे पॉलिटिकल एजेण्ट ने प्राइमरी एवं मिडिल स्कूल शिक्षा में सुधार करने के उद्देश्य से 1904 में यूनाइटेड प्राविन्सेस के डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन से बुन्देलखण्ड मे शिक्षा सुधार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहा, जैसे– इन स्कूलों मे क्या पाठ्यक्रम रखा जाए, छात्रों से ली जाने वाली फीस एवं अध्यापकों का वेतन कितना हो आदि। पॉलिटिकल एजेण्ट को इन स्कूलों में शिक्षा के लिए कुशल प्रधानाचार्यो की भी आवश्यकता थी उसका विचार था कि "**प्रधानाध्यापक को 10 वर्ष का अनुभव हो वह चाहे सरकारी कर्मचारी अथवा सेवा निवृत्त पेन्शन कर्मचारी हो।**" डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन ने

[68] फाइल संख्या 56/1900

भारतीय शिक्षा नीति के सम्बन्ध में भारत सरकार के 11 मार्च 1904 के निर्देशों की ओर पॉलिटिकल एजेण्ट का ध्यान आर्कषित किया।[69]

माइकल जो लगभग 20 वर्ष पूर्व राजकुमार कॉलेज नौगाँव मे प्राचार्य के रूप में कार्य कर चुके थे वे 1904 में उत्तर प्रदेश में इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स नियुक्त हुए किन्तु उन्हे स्वयं भी बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्कूलों मे शिक्षा की स्थिति की जानकारी नही थी। आगरा के इन्स्पेक्टर ने बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट को बताया कि मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापकों को रु0 15 से 40 प्रतिमाह वेतन मिलता था। यदि बुन्देलखण्ड एजेन्सी यह खर्च उठा सके तो कुछ योग्य अध्यापकों को बुन्देलखण्ड में भेजा जा सकता है।[70]

माइकल का यह सुझाव था कि बुन्देलखण्ड एजेन्सी की रियासते शिक्षा की सेन्ट्रल प्राविन्सेज पद्धति अपनाए।[71] अभी तक इंन रियासतो के स्कूल स्वतन्त्र नियमों से चलाए जाते थे किन्तु माइकल ने अब नए नियम लागू करने के सुझाव दिये। नई शिक्षा पद्धति बुन्देलखण्ड में लागू हो इसके लिए यह आवश्यक था कि पॉलिटिकल एजेण्ट किसी प्रशिक्षित व्यक्ति इन्स्पेक्टर शिक्षक की नियुक्ति करें। इस सम्बन्ध में चार्ल्स हिल डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रोविन्सेज ने गनपतलाल चौबे, टिहरी राज्य के पूर्व इन्स्पेक्टर को नियुक्त करने का सुझाव दिया। गनपतलाल चौबे छत्तीसगढ़ में एजेन्सी ऑफ स्कूल्स के पद पर भी कार्य कर चुके थे जहाँ उनके

---

[69] फाइल संख्या 248/1904

[70] फाइल संख्या 248/1904 इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल, आगरा का बबुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट को लिखा गया पत्र, दिनांक 13 अगस्त 1904।

[71] फाइल संख्या 248/1904 पत्र संख्या 2662 दिनांक 6 अगस्त 1904।

ऊपर कुल खर्च रु0 5550 वार्षिक आता था चूँकि गनपतलाल बुन्देलखण्ड का था इसलिए कम वेतन और सुविधाओं मे भी वह यहाँ आने के लिए सहमत था।[72]

बुन्देलखण्ड की बहुत सी रियासतें इस नियुक्ति के पक्ष में नही थी लेकिन पॉलिटिकल एजेण्ट उस नियुक्ति पर जोर दे रहा था। रियासतों की असहमति का कारण यह था कि वे उसके वेतन भुगतान का भार उठाने के लिए तैयार न थे। छतरपुर रियासत अवश्य समर्थ थी। गरौली तथा दतिया रियासतें यह खर्च उठाने के लिए तैयार न थी। अजयगढ़ ने भी असमर्थता व्यक्त की। सरीला रियासत ने किसी तरह सहमति दे दी लेकिन बिजावर दरबार इस नियुक्ति को केवल एक वर्ष के ही पक्ष मे था।[73] चरखारी और समथर की भी यही स्थिति थी इससे स्पष्ट है कि अधिकांश रियासतें इस नियुक्ति के पक्ष में नही थी।[74] ब्रिटिश सरकार ने इन रियासतो को स्पष्ट कर दिया कि यदि अपनी रियासत में शिक्षा का उचित विकास करना चाहते है तो नियुक्ति के इस प्रस्ताव को स्वीकार करें अन्यथा इस प्रस्ताव मे भागीदारी आवश्यक नहीं थी। इसे इच्छानुसार अपनाया जा सकता था।[75]

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रभावपूर्ण निर्देश के अभाव में एवं रियासतो के आलोच्य के कारण बुन्देलखण्ड की शिक्षा मे कोई विकास नही हो सका।

[72] फाइल संख्या 248/1904 पत्र दिनांक 25 अक्टूबर 1904।
[73] फाइल संख्या 248/1904 पत्र दिनांक 19 सितम्बर 1904।
[74] फाइल संख्या 248/1904 रिपोर्ट दिनांक 17 फरवरी 1905।
[75] फाइल संख्या 248/1904 एजेण्ट गर्वनर जनरल, पॉलिटिकल एजेण्ट को लिखा गया पत्र।

तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

अध्याय – सप्तम्

तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

बुन्देलखण्ड एजेन्सी की प्रजा का औपनिवेशिक शासन द्वारा आर्थिक शोषण तथा सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न किया गया। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि विदेशी शासक अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए इस देश में आए थे और साम्राज्य पर नियन्त्रण को और अधिक मजबूत करने के लिए मध्य भारत पर आधिपत्य स्थापित किए थे। पूरे अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड का आर्थिक शोषण किया गया। बुन्देलखण्ड का जन–जीवन प्रारम्भ काल से ही प्रेम सौहार्द और पवित्रता से परिपूर्ण था। धर्म श्रेष्ठता का आदर्श यहाँ के लोगों मे स्थापित था किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों और कर्मचारियों द्वारा धनलिप्सा के वशीभूत होकर इस क्षेत्र की जनता को लूटने में कोई भी कमी नही रखी। अतः आर्थिक विपन्नता के परिणाम स्वरूप समाज के स्वरूप में बदलाव आने लगा जिस कारण यहाँ का जनजीवन कुण्ठाओं से युक्त शोषित समाज के रूप में जाना जाने लगा।

जातियाँ एवं समाज व्यवस्था :

बुन्देलखण्ड में चर्तुवर्णीय सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था स्थापित रही जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियाँ समाहित थी किन्तु व्यवहार रूप में समाज तीन वर्ग में विभक्त था – उच्च, मध्यम और निम्न। उच्च वर्ग मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। मध्यम वर्ग में लोधी, अहीर, दांगी, कायस्थ, कुर्मी, नाई, भाट, माली, सुनार, लुहार, बढ़ई आदि जातियाँ थी जिनकी स्थिति आर्थिक रूप से सन्तोषजनक थी। शूद्र वर्ग में – चमार, बसोड़, मेहतर, कोल, भील, सपेरे, कोरी, बुनकर आदि जातियाँ

थी जो अछूत मानी जाती थी और इनकी बस्ती गाँव के किनारे निचले हिस्से में होती थी।[1] समाज में मुसलमान एवं ईसाई जाति के परिवार भी रहते थे किन्तु इनका प्रतिशत काफी कम था। बेली[2] ने लिखा था कि **''बुन्देलखण्ड में हिन्दू बहुसंख्यक है जबकि अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या नगण्य है।''** इस मत की पुष्टि झाँसी जिले की 1901 की जनगणना रिपोर्ट के आँकड़ों से होती है जिसमें यह उल्लेख है कि झाँसी जिले में हिन्दुओं की जनसंख्या 92.7 प्रतिशत, मुसलमानों की 5 प्रतिशत तथा जैन धर्मावलम्बियों की 1.7 प्रतिशत है। इसके अलावा ईसाई 3064, पारसी 177, तथा बौद्ध धर्मावलम्बी 16 है।[3]

जनसंख्या का उपर्युक्त अनुपात बुन्देलखण्ड में विभिन्न धर्मावलम्बियों की स्थिति की ओर संकेत देती है। वास्तव में तत्कालीन बुन्देलखण्डी समाज में हिन्दुओं का प्रभुत्व था जिसमें मुसलमान जनसंख्या की दृष्टि से अत्यन्त कम थे।[3] यद्यपि धार्मिक आधार पर जैन मतावलम्बियों की भी संख्या तीसरे स्थान पर थी। किन्तु इनका अनुपात झाँसी जिले के ललितपुर सम्भाग पर ही अधिक था।[4] जैन परम्परा के अनुसार देवपत तथा खेवपत नामक दो जैन बन्धुओं ने मेरठ से आकर ललितपुर में ऋण के लेन–देन का कारोबार प्रारम्भ किया जिसमें इतना धन उपार्जन हुआ कि उन्होने ललितपुर सम्भाग में देवगढ़ तथा आस–पास के क्षेत्रों में अनेकों जैन मन्दिर बनवाए।[5]

---

[1] ताराचन्द्र (भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास), जिल्द –1 पृष्ठ – 64

[2] बेली डी0सी0 सेन्सेज ऑफ इण्डिया भाग–1 जिल्द 16, नार्थ–वेस्ट प्रांविन्सेज एण्ड अवध, इलाहाबाद 1864, पृष्ठ 173

[3] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 66

[4] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 88

[5] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 88

यदि उपरोक्त जैन परम्परा का विश्लेषण किया जाए तो प्रतीत होता है कि तत्कालीन परिस्थिति में मेरठ से चलकर बुन्देलखण्ड के ललितपुर जनपद को विशेष रूप से ऋण के लेन–देन के व्यवसाय हेतु क्यों उपयुक्त पाया गया?[6] यह उल्लेखनीय है कि ललितपुर में बुन्देला जमींदारों का वर्चस्व था जिनके पास पर्याप्त जमीनें थी ये जमींदार स्वयं अपनी भूमि पर खेती न कर अपने रैयत को ठेके पर दे दिया करते थे। प्राकृतिक प्रकोपों, अकाल तथा अन्य आपदाओं से रैयत को खेती में नुकसान होने लगा और वे बुन्देला जमीदारों की आवश्कता के अनुरूप उनकी भूमि के किराए मे वृद्धि नही कर सके। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि अपनी जमींदारी वाली आदतों के कारण ये ठाकुर जमींदार राग–रंग मे मस्त रहते थे और आए दिन पैसे की कमी महसूस करते थे। जब इनकी भूमि से अपेक्षाकृत कम आय हुई तो इन जमींदारों ने जैनियों और मारवाड़ियों के हाथ मे अपनी जमीनें गिरवी रख रुपया उधार लेने लगे। निरन्तर बढ़ते हुए ब्याज की अदायगी न होने के कारण बाध्य होकर इन जमींदारो ने अपनी भूमि जैनियों और मारवाड़ियों मे बेंच दी। निःसन्देह ललितपुर में ऋण का लेन–देन करने वाले जैनी ललितपुर जनपद के बुन्देला जमींदारो के स्वभाव और फिजूलखर्ची से परिचित थे और इसीलिए उन्होने ललितपुर को अपने व्यवसाय का कार्यक्षेत्र बनाया। इस सम्भाग में जैनियों की ऋण के लेन–देन के व्यवसाय के कारण कुछ भी रहे हो इसमें सन्देह नही कि इस व्यवसाय में जुटे हुए जैनियों ने काफी धन अर्जित करते हुए अपने प्रभाव क्षेत्र में काफी वृद्धि कर ली थी। इस क्षेत्र में जैन मन्दिर उनकी समृद्धि की पुष्टि करते हैं।

[6] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0; झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 88

हिन्दू समाज कई जातियों तथा उपजातियों में विभक्त था। 26 अप्रैल 1866 को झाँसी के डिप्टी कमिश्नर जेनकिन्सन ने इस जिले की जातियों का विवरण देतें हुए लिखा था।[7] कि "**इस जिले में विभिन्न जातियाँ कब और किस प्रकार बसी इस सम्बन्ध में कोई अभिलेख अथवा सनद प्राप्त नही होती सामान्यतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि इन जातियों के निवास के सम्बन्ध में कोई इतिहास व प्रसिद्ध परम्परा प्रचलित नही है।**" यहाँ पर राजपूतों की न तो कोई अलग बस्ती है और न ही अन्य प्रचलित जाति के लोगों की कोई अलग बस्ती प्राप्त होती है बल्कि प्रत्येक जगह सभी जातियों के लोग मिश्रित रूप से निवास कर रहे हैं। अपवाद रूप में एक या दो परिवार अपने अपने गाँवों में अपनी बस्ती कायम किए हुए हैं अन्यथा सभी गाँवों में लोग मिश्रित रूप से निवास कर रहे है यह कहना कठिन है कि इस सम्भाग में निम्न अथवा सामान्य जाति के लोग कब से निवास कर रहे हैं क्योंकि यह सम्भवतः प्रतीत होता है कि यहाँ के पुराने निवासी सहारिया, दांगी, खंगार, अहीर, लोधी, कुर्मी, काठी, चन्देल, ब्राह्मण और परिहार राजपूत है जो सम्भवतः इस क्षेत्र में बुन्देलाओं के आक्रमण से पूर्व निवास करते चले आ रहे थे।[8]

जेनकिन्सन का उपरोक्त विवरण न केवल झाँसी मण्डल की जातियों की ही स्थिति स्पष्ट करता है बल्कि यह स्थिति बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देंलखण्ड विभिन्न जातियों तथा उपजातियों का एक अजायबघर था। प्रारम्भ में बहुत कम जातियाँ रही होगी किन्तु बाद में यह अनेकों उपजातियों में विभाजित हो गयी। इसके दो कारण प्रतीत होते

---

[7] Report on the Settlement of Jhansi Distt., Allahabad, 1871
[8] Report on the Settlement of Jhansi Distt., Allahabad, 1871

हैं प्रथम – उच्च जाति के पुरुष द्वारा निम्न जाति की महिला से विवाह से उत्पन्न सन्तान। तथा दूसरा उसी जाति के कुछ सदस्यों द्वारा विभिन्न व्यवसाय अपना लिए जाने के कारण उपनाम के रूप में उक्त व्यवसाय के आधार पर नामकरण किया जाता था।[9] सुविधा की दृष्टि से इन जातियो को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

ब्राह्मण –

बुन्देलखण्ड में ब्राह्मण संख्या की दृष्टि से कुल जनसंख्या के 10.10 प्रतिशत थे। इनमें दक्षिणी पण्डित मारवाड़ी, ब्राह्मण, कनौजिया, सनाड्य और जिझौतिया प्रमुख थे।[10] बाँदा जिले के पूर्वी क्षेत्र में अतर्रा से सरयूपारीण ब्राह्मणों की बस्तियाँ विद्यमान थी। पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा बुन्देलखण्ड में एक तिहाई क्षेत्र प्राप्त कर लेने के पश्चात् महाराष्ट्र के दक्षिणी ब्राह्मण परिवार भी यहाँ पर्याप्त संख्या में आकर बस गए।[11] झाँसी के मराठा गर्वनर नारूनशंकर ने भी दक्षिणी पण्डितों को लाकर इस क्षेत्र में बसाया।[12] इन दक्षिणी ब्राह्मणों के साथ उनकी सांस्कृतिक परम्पराएं, सामाजिक प्रथाएं और रीति–रिवाज भी बुन्देलखण्ड मे प्रविष्ट हुए। इस सम्मिलन से अनेकों मराठी त्योहार, रीति–रिवाज, बुन्देलखण्ड के लोगों ने अपना लिया। गणेश प्रतिमाओं का विसर्जन, जलविहार, गणपति त्योहार आदि त्योहार इसी सम्मिलन के कारण सम्भव हुआ।

उपरोक्त दक्षिणी ब्राह्मण प्रभाव के अलावा इस क्षेत्र की दो तिहाई ब्राह्मण जनसंख्या जिझौतिया, कनौजिया और सनाड्य उप. भागों में बँटे हुए थे। इलियट

[9] Censes of N.W. Provinces of India, Vol- I, Allahabad, 1867, P-98
[10] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 89
[11] Sir Desai, G.S., A New History of Marathas, Vol – II, P-231.
[12] Sir Desai, G.S., A New History of Marathas, Vol – II, P-240-241

(Elliot)[13] ने **"इन ब्राह्मण वर्गों को कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की शाखा माना है, जिझौतिया उपनाम इस क्षेत्र के प्राचीन नाम जेजाकभुक्ति से लिया गया प्रतीत होता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग[14] ने सातवीं शताब्दी मे खजुराहों की यात्रा के बीच इस क्षेत्र को जेजाकभुक्ति नाम से पुकारा है।"** एक स्थानीय परम्परा के अनुसार जिझौतिया नामकरण जुझारसिंह का अपभ्रंश प्रतीत होता है।[15] उपरोक्त सभी प्रचलित मतों मे यह अधिक सम्भव है कि जिझौतिया, जेजाकभुक्ति नाम से ही यहाँ के ब्राह्मणों का नामकरण हुआ। यद्यपि यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि वे इस क्षेत्र में कब आकर बसें किन्तु यह सम्भव है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक शाखा इस क्षेत्र में बस जाने के कारण जिझौतिया नाम से प्रसिद्ध हुई।[16]

सनाढ्य ब्राह्मण की उत्पत्ति रामायण कालीन एक परम्परा से जुड़ी हुई है। इस परम्परा के अनुसार जब भगवान् राम लंका के राजा रावण का वध कर अयोध्या वापस हुए तब वहाँ के ब्राह्मणों ने इनसे दान लेना इसलिए अस्वीकार कर दिया था क्योंकि रामचन्द्रजी ने ब्राह्मण राजा रावण की हत्या की थी। ऐसी परिस्थिति में भगवान राम मथुरा से कुछ ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हे भेंट स्वरूप भूमि प्रदान की तथा ब्राह्मण हत्या के पश्चाताप के लिए ब्रह्म भोज कराया। इस ब्रह्म भोज में शामिल हुए लोग सनाढ्य ब्राह्मण कहलाने लगें।[17] उपरोक्त परम्परा ऐतिहासिक दृष्टि से कितनी सत्य है इस बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नही कहा जा

---

[13] Memoirs on the History, folklore and distribution of the races of NWP of India, Vol-I, London 1869, Beames John, P-146.

[14] कर्निघम, Archiological Service Report, Vol – XXI P-58

[15] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0 झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 90

[16] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0 झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 90

[17] Memoirs on the History, folklore and distribution of the races of NWP of India, Vol-I, London 1869 Beames John, P-146.

सकता किन्तु इसमें सन्देह नही है कि जिझौतिया, सनाढ्य, कान्यकुब्ज और दक्षिणी पण्डित इस क्षेत्र में निवास करने वाले ब्राह्मणों में प्रमुख थे। इनके साथ–साथ रहने से इनके रीति–रिवाज और सांस्कृतिक आचार–विचार एक दूसरे से प्रभावित हुए।

राजपूत –

बुन्देलखण्ड में हिन्दू जनसंख्या की विवेचना करते हुए झाँसी जिले के सन्दर्भ में एटकिन्सन ने राजपूतों को हिन्दू जातियों के वर्गक्रम में दूसरे स्थान पर रखा है।[18] झाँसी जिले में राजपूतों की जनसंख्या सम्पूर्ण हिन्दू जनसंख्या का 6.09 प्रतिशत था।[19] इस तथ्य के बावजूद की बुन्देलखण्ड मे राजपूत शासक वर्ग थे उनकी जनसंख्या का अनुपात विशेष नही रहा। इसके अलावा भी वे विभिन्न उपजातियों में विभक्त थे जिसमें बुन्देला प्रमुख थे।

बुन्देला –

जैसा कि इस क्षेत्र के नाम से प्रतिध्वनित होता है कि बुन्देले यहाँ के प्रभावशाली शासक थे अतः स्वभाविक है कि वे सामाजिक व्यवस्था मे उच्च स्थान पर स्थापित रहे हो। वे बुन्देलखण्ड के शासक थे और उनके उपनाम से ही **'बुन्देलखण्ड'** नाम प्रकाश में आया।[20] 1901 ई0 की जनगणना के अनुसार वे सम्पूर्ण राजपूत जातियो का 17.94 प्रतिशत थे। इसमें से दो तिहाई अकेले ललितपुर सब डिवीजन में विद्यमान थे।[21] बुन्देलाओं की उत्पत्ति के बारे में अनेकों कथाएं प्रचलित

---

[18] एटकिन्सन ई.टी., (वही), पृष्ठ 226

[19] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 92

[20] Memoirs on the History, folklore and distribution of the races of NWP of India, Vol-I, London 1869 Beames John, P-45

[21] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 92

है। **क्षत्रप्रकाश**[22] में यह उल्लेख मिलता है कि काशी के गहरवार वंश के राजा बीर बहादुर के चार पुत्रों में सबसे छोटा पंचम था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् बीर बहादुर के पुत्रों ने काशी राज्य में उसे कोई हिस्सा नही दिया अतः वह नाराज होकर देवी विन्ध्यवासिनी (मिर्जापुर) के मन्दिर में आकर स्वयं का बलिदान करने का निश्चय किया। जिस समय वह अपनी कटार निकाल कर अपनी गर्दन को काट रहा था उसी समय देवी ने उसका हाथ पकड़कर आर्शीवाद दिया कि वह अपने शत्रुओं को पराजित करेगा तथा एक महान वंश की स्थापना करेगा। जिस समय देवी अपना आर्शीवाद दे रही थी उसी समय पंचम के गर्दन से खून की एक बूँद जमीन पर गिरी जिसने एक पुरुष का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार बुन्देलाओं का विवरण छत्रप्रकाश में दिया गया है। इस सम्बन्ध में एक अन्य विवरण भी प्राप्त होता है जिसमें यह उल्लेख है कि[23] **''जैसे ही पंचम की गर्दन से रक्त की एक बूँद जमीन पर पड़ी उसे देखकर देवी ने पंचम को यह आर्शीवाद दिया कि इसी बूँद से पंचम के वंशज जन्म लेगें जिन्हे बुन्देला उपनाम मिलेगा।''**

ओरछा स्टेट गजेटियर[24] यह उल्लेख करता है कि पंचम को यह आर्शीवाद प्राप्त हुआ था कि वह पाँच आदमियों की विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में बलि देकर अपनी खोई हुई सत्ता प्राप्त करेगा। **कैप्टन जे0एन0 फ्रैंकलिन**[25] ने भी इस सम्बन्ध में एक अन्य विवरण देते हुए यह उल्लेख किया है कि ''बुन्देले राजपूतों की सूर्यवंश की उत्पत्ति से स्वयं को जुड़ा हुआ मानते है और वे अयोध्या के राजा रामचन्द्र के

---

[22] पाक्सन डब्ल्यू आर, ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज, (पुनः मुद्रित, नई दिल्ली), पृष्ठ 7 तथा जनेकिन्सन ई.जी. (वही) पृष्ट 58

[23] पाक्सन डब्ल्यू आर, ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज, (पुनः मुद्रित, नई दिल्ली), पृष्ठ 7 तथा जनेकिन्सन ई.जी. (वही) पृष्ट 58

[24] Laurd C.E. Lucknow, 1907, P-72

[25] Memoirs of Bundelkhand, 1825, P-262

पुत्र लवकुश का स्वयं को वंशज मानते है। ज्ञात है कि लवकुश ने बनारस में अपनी सत्ता स्थापित करते हुए (Lord of Kashi Kashiswar) की उपाधि धारण की थी। इसी वंशक्रम के सत्तरहवें शासक ने अपने नाम के आगे गहरवार उपनाम जोड़ा तथा तीसवें वंशज ने अपने नाम के आगे बुन्देला उपनाम जोड़ दिया।

उपरोक्त विवेचना बुन्देलाओं की उत्पत्ति के बारे में कोई निर्णायक मत पर पहुँचने मे सहायक नही होती। भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्याचल पहाड़ियों के फैले होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि काशी के गहरवार वंशियों के शासकों की एक शाखा इस क्षेत्र में आकर शासन करने लगी जिसने विन्ध्याचल देवी के प्रतीक के रूप में अपने नाम के आगे विन्धेला जोड़ दिया जो क्रमशः बुन्देला नाम से प्रसिद्ध हुआ। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इन्होने बुन्देलखण्ड की विजय करते हुए अपनी सत्ता की स्थापना की।[26] अंग्रेजी शासनकाल में यद्यपि सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से बुन्देलों की जागीरें घटती चली गयी किन्तु सामाजिक व्यवस्था मे उनका महत्वपूर्ण स्थान बना रहा। दाऊजी, कुँवरजी जैसे सम्माननीय विरूद आदि उनके प्रभाव को इंगित करते हैं।

पवाँर, परिहार और धँधेरा –

सामाजिक संरचना में धँधेरा, पवाँर और परिहार बुन्देलों से ही जुड़े हुए थे। इन तीनो में आपसी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होते थे। अतः इन तीनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान था।[27] सम्भवतः धँधेरा राजपूत धंधू के वंशज थे जो पृथ्वीराज चौहान की सेना में कमाण्डर था। बुन्देलखण्ड में लगभग 800 वर्ष पूर्व

---

[26] जेनकिन्सन ई.जी., (वही) पृष्ठ – 100
[27] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 266

इनका आगमन हुआ।[28] पहुँज नदी के पश्चिमी तट पर प्रमुखतः इनकी बस्तियाँ स्थापित है। 1861 में इनकी बस्तियों वाले गाँव ग्वालियर की रियासत में स्थानान्तरित कर दिए जाने के कारण झाँसी सम्भाग में इनकी जनसंख्या अपेक्षाकृत कम हो गयी।[29]

पवाँरों के बारे में यह कहा जाता है कि किसी समय बुन्देलखण्ड में इनकी बस्तियाँ पर्याप्त थी किन्तु इस सम्बन्ध मे प्रमाणिक जानकारी का अभाव है। जेनकिन्सन का मत है कि पवाँर लोग बुन्देलखण्ड में मारवाड़ से आए पवाँरों और बुन्देलाओं के सम्बन्ध के बारे में एक प्रचलित परम्परा यह है कि करेरा का एक पवाँर जागीरदार (जिसका नाम सम्भवतः पणपाल था) ने ओरछा के सोहनपाल बुन्देला को उस समय महत्तम सैनिक सहायता प्रदान की थी जब उस पर खंगार राजा ने आक्रमण किया था।[30] इसी सहायता के बल पर सोहनपाल ने इस क्षेत्र पर अपना अधिपत्य स्थापित किया था। इस सहायता के बदले सोहनपाल ने अपनी पुत्री का विवाह करेरा के उस पवाँर जागीरदार पणपाल से कर दिया था और दहेज के रूप में झाँसी तहसील का इटौरा नामक गाँव प्रदान किया था। इस वैवाहिक मैत्री के सम्बन्ध में सोहनपाल बुन्देला ने यह घोषणा की कि चूँकि मेरे कष्ट के समय पवाँरों को छोड़कर किसी अन्य छत्रिय कुल ने मेरी सहायता नही की है अतः आपको छोड़कर कोई अन्य राजपूत मेरे वंश मे विवाह सम्बन्ध नही कर सकता।[31]

---

[28] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 266
[29] एटकिन्सन ई.टी., (वही) पृष्ठ 266
[30] जेनकिन्सन ई.जी., (वही) पृष्ठ – 57
[31] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 93

परिहार राजपूत संख्या की दृष्टि मे इस क्षेत्र में पवाँरो की अपेक्षा अधिक थे। मऊ, गरौठा और झाँसी में इनकी अधिकांश बस्तियां थी।[32] ऐसा कहा जाता है कि हमीरपुर के प्रभावशाली परिहार राजा जुझारसिंह के दो पौत्र थे गोविन्द देव और सारंगदेव। ये परिहार राजपूत इन्ही दोनो के वंशज थे।[33] एक अन्य परम्परा[34] में यह उल्लेख मिलता है कि बारहवीं शताब्दी में चन्देल राजा परमार (परर्मादिदेव) की सेना का एक सेनापति परिहार था और सम्भवतः उसी समय से इस राजपूत की जातियाँ इस क्षेत्र में अपना सम्माननीय स्थान स्थापित कर लिया।

अन्य राजपूत जातियाँ –

बुन्देला, पवाँर, परिहार और धँधेराओं के अलावा बुन्देलखण्ड मे कुछ अन्य राजपूत बस्तियां विद्यमान थी जिनमें गौर, उल्लेखनीय है जो 1901 की जनगणना के अनुसार केवल झाँसी जिले में कुल 1220 की संख्या में थे। गौरों की प्रभावशाली बस्ती हमीरपुर जिले में हैं। हमीरपुर के प्रभावशाली शासक हम्मीर देव करछुली की सेना में गौर राजपूतों का विशाल दल बुन्देलखण्ड मे आया। बुन्देलखण्ड के जिलों में इनकी बस्तियां प्रायः महरौनी और मोठ को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह देखने को मिलती हैं। इसी तरह वैश्य, चौहान, भदौरिया, जनवार, सेंगर, राठौर और चन्देल भी बुन्देलखण्ड सम्भाग मे पर्याप्त संख्या में थे।

वैश्य तथा अन्य जातियाँ –

बुन्देलखण्ड में वैश्य वर्ग में गोहई, अग्रवाल, उमराव, बर्नवाल, जैन और मारवाड़ी उपजातियाँ प्रमुख रूप से विद्यमान है। इनमे सबसे अधिक संख्या की दृष्टि

---

[32] ड्रेक ब्राक मैन डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 93
[33] एटकिन्सन ई. टी., (वही) पृष्ठ 267
[34] एटकिन्सन ई. टी., (वही) पृष्ठ 267

से गौहई वैश्य है। गौहई वैश्यों की बस्तियाँ इस क्षेत्र मे कब स्थापित हुई इस समय की प्रमाणिक जानकारी नही प्राप्त हुई लेकिन इसमें सन्देह नही है कि गौहई बुन्देलखण्ड के व्यापार एवं वाणिज्य से प्रारम्भ से जुड़े रहे हैं। प्रायः सभी वैश्य जातियाँ मुख्यतः सभी क्षेत्रों में व्यापार का कार्य करते रहे है किन्तु जैनियों एवं मारवाड़ियों में तमाम ऐसे भी है जिन्होने अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड मे हुए सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न के परिणामस्वरूप, गरीबी और भुखमरी का लाभ उठाते हुए ऋण के लेन–देन के व्यवसाय को अपनाकर जमींदारों की अधिकांश भूमि अपने नियन्त्रण मे ले लिया था। भूमि को गिरवी रखकर उधार लेन–देन का कार्य प्रमुखतः जैन और मारवाड़ी करते रहे हैं और विशेषतः ललितपुर सबडिवीजन में जैनियों ने इस व्यवसाय से इतना धन अर्जित किया कि इन्होने यहाँ अनेकों भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। ब्रिटिश सरकार ने ऋण के लेन–देन के कुपरिणामों को समझते हुए जब यह देखा कि किसानों की अधिकांश भूमि ऋण के कार्य मे लगे जैनियों और मारवाड़ियों के हाँथ में चली जा रही है, ऐसी स्थिति में अंग्रेजी शासन ने **भूमि अधिग्रहण रोक कानून**[35] 1902 में पारित किया जिसने किसानों की भूमि ऋणदाताओं के हाँथ में जाने से रोक लगा दी, लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी बुन्देलखण्ड के किसानों की अधिकांश भूमि ऋणदाताओं के हाँथ में चली गयी थी। एटकिन्सन[36] ने बुन्देलखण्ड की अन्य जातियों का विवरण देते हुए लिखा था कि **''इस क्षेत्र में जनसंख्या की दृष्टि से चमार सबसे अधिक हैं। अकेले झाँसी जिले में हिन्दू जनसंख्या का 13.38 प्रतिशत चमारों का था जो झाँसी जिले के प्रत्येक तहसील**

[35] पिम ए.डब्ल्यू. (वही) पृष्ठ – 267
[36] एटकिन्सन ई. टी. (वही) पृष्ठ 267

मे विद्यमान थे। 1891 ई0 की जनगणना के समय झाँसी जिले मे इनकी संख्या 56378 थी जबकि अकेले ललितपुर में इनकी संख्या 33768[37] थी।[38] चमारों की जनसंख्या में सबसे अधिक अहिरवार उपवर्ग के[39] लोग झाँसी जिले में विद्यमान थे। इस सम्वर्ग के लोग अधिकांशतः मजदूरी तथा अन्य कार्य कर जीविका अर्जन करते थे।[40]

चमारों के अतिरिक्त काछी, कोरी, कुष्टा, अहीर, गुर्जर, गड़रिया और लोदी भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण जातियाँ थी। काछी हिन्दू जनसंख्या के लगभग 10.13 प्रतिशत थे और अच्छी खेती करते थे। इस तरह लोदी भी कृषि के कार्य में संलग्न थे जिनके बारे में परम्परा यह है कि वे नरवर के कछवाहों द्वारा निम्न सम्वर्ग को महिला के संसर्ग से उत्पन्न हुए थे।[41] इसी तरह कोरी ओर कुष्टा भी संख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे और कपड़े के बुनाई के कार्य से जुड़े हुए थे। कोरी अपनी उत्पत्ति बनारस के बुनकरो से जोड़ते हैं जबकि कुष्टा लोग चन्देरी से अपनी उत्पत्ति मानते हैं। ये दोनो जातियाँ बुन्देलखण्ड में विशेषतः मऊरानीपुर के खरूआ वस्त्र उद्योग के निर्माण से जुड़ी हुई थी।[42]

अहीर जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दू जनसंख्या में 9.06 प्रतिशत थे। परम्परा उन्हे मथुरा के यादवों से जोड़ती है। एक अन्य प्रचलित परम्परा के अनुसार इनका पूर्वज हीर था जो साँप (अहीर) को दुग्ध पान कराता था और इसीलिए इन्होने दुग्ध

---

[37] क्रुक, डब्ल्यू The Tribes and Castes of N.W.P. of India, Vol – II, Delhi, 1974, P-192
[38] क्रुक, डब्ल्यू The Tribes and Castes of N.W.P. of India, Vol – II, Delhi, 1974, P-192
[39] ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 89
[40] एटकिन्सन ई.टी. (वही) पृष्ठ – 267–68
[41] एटकिन्सन ई.टी. (वही) पृष्ठ – 267–68
[42] एटकिन्सन ई.टी. (वही) पृष्ठ – 267–68

व्यवसाय को अपना लिया।[43] बुन्देलखण्ड मे अहीरों की जनसंख्या भी कुर्मियों और लोदियों के अनुपात मे रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि गूर्जर और अहीर व्यवसाय की दृष्टि से एक ही थे।[44] 1901 की जनगणना के अनुसार झाँसी जिले मे गूर्जरों की जनसंख्या हिन्दू जनसंख्या में 0.22 प्रतिशत अनुपात में थे।[45] प्रचलित परम्परा के अनुसार गूर्जर उत्पत्ति की दृष्टि से समथर रियासत से जुड़े हुए थे और मुख्यतः दुग्ध देने वाले जानवरों को पालते थे।

बुन्देलखण्ड में जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दू सम्वर्ग में लोदियों का अनुपात 8.24 प्रतिशत था[46] इनकी उत्पत्ति भी विवाद का विषय है। प्रचलित परम्परा के अनुसार लोदियों की उत्पत्ति लुधियाना से जुड़ी हुयी है किन्तु यह अनिश्चित है एक अन्य परम्परा यह उल्लेख देती है कि लोदी बुन्देलखण्ड में ग्वालियर रियासत में नरवर से आए थे।[47] नरवर से इनकी उत्पत्ति जोड़ने का एक कारण यह है कि बुन्देलखण्ड में लोदियों की एक शाखा 'नरवरिया' उपजाति से पुकारी जाती है। सम्भवतः इनके नरवर से जुड़े होने का प्रमाण है। सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से लोदी कृषि व्यवसाय से जुड़े रहे हैं। बुन्देलखण्ड के झाँसी जिले में मऊरानीपुर तथा हमीरपुर के राठ कस्बे में इनकी बहुसंख्यक बस्तियाँ थी।[48] लोदी बड़े ही परिश्रमी किसान के रूप में प्रसिद्ध है। झाँसी, ललितपुर महरौनी में भी अच्छे कृषक के रूप में इनका प्रथम स्थान है।[49] बुन्देलखण्ड के अन्य जातियों तथा उपजातियों में हिन्दू

---

43 क्रुक, डब्ल्यू The Tribes and Castes of N.W.P. of India, Vol – II, Delhi, 1974, P-114
44 ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0 झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 90
45 ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 90
46 एटकिन्सन ई.टी. (वही) पृष्ठ – 267–68
47 ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर 1909 (वही) पृष्ठ 90
48 ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर 1909 (वही) पृष्ठ 90
49 एटकिन्सन ई.टी. (वही) पृष्ठ – 267–68

समाज में खँगार भी उल्लेखनीय रहे हैं। प्रचलित परम्परा के अनुसार चन्देलों के पतन के पश्चात् और बुन्देलों के उदय से पूर्व खँगारों ने बुन्देलखण्ड में शासन भी किया था[50] इनका मुख्यालय ओरछा राज्य के कुरार नाम स्थान पर था। यह आश्चर्य है कि बाद वाले युग में खँगारों का इतना तेजी से सामाजिक, आर्थिक पतन हुआ कि यह वर्ग जो किसी समय़ बुन्देलखण्ड के शासक वर्ग मे आता था वह समाज के निम्न वर्ग में अपनी जीविकोपार्जन के लिए चौकीदार तथा चतुर्थ श्रेणी सेवाओं के माध्यम से अपनी जीविका अर्जन करने को बाध्य हुआ।[51] ठीक इसी तरह कुछ अन्य जातियाँ भी थी जो तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति में आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण जंगलों मे रहकर अपनी उदरपूर्ति करने को बाध्य हुए। इनमें गौड़ और सहारिया[52] जनजातियाँ मुख्यतः ललितपुर सम्भाग में अधिक संख्या में थी। गौड़ सम्भवतः उस जाति के वंशज प्रतीत होते है जो किसी समय मध्य प्रदेश के गोडवाना क्षेत्र में विस्तृत प्रभाव रखती थी। गोंडवाना नाम उस क्षेत्र में गोड़ों के व्यापक प्रभाव के कारण सम्भवतः प्रचलित हुआ। सहारिया भी गौडों से सम्बद्ध थे जो जंगलों मे शहद निकालने, लकड़ी काटने तथा जंगली भूमि में खेती करने का कार्य करते थे।[53] हिन्दू जातियों के अलावा इस क्षेत्र में मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग भी थे किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। यह कहना अनुचित नही होगा कि बुन्देलखण्ड हिन्दु प्रभाव रीति–रिवाज, जनसंख्या और परम्पराओं से ओत–प्रोत था। यहाँ के मुस्लिमों में अधिकांशतः सुन्नी थे। ललितपुर सम्भाग मे उनकी स्थिति

---

50 ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर 1909 (वही) पृष्ठ 90
51 पाठक एस.पी., (वही) पृष्ठ 144
52 पाठक एस.पी., (वही) पृष्ठ 144
53 पाठक एस.पी., (वही) पृष्ठ 144

और भी नगण्य थी। बाँदा तथा मौदहा, नवाब अली बहादुर की रियासत मुस्लिम जनसंख्या की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

बुन्देलखण्ड के उपरोक्त विभिन्न जातियों का सामाजिक, आर्थिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इस क्षेत्र के प्रमुख राजपूत जिसे बुन्देले, पवाँर, परिहार और धँधरे जो प्रायः शासक या जमींदार वर्ग के थे तथा इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रभाव रखते थे उनका अंग्रेजी शासनकाल में सामाजिक, आर्थिक पतन हुआ।[54] वही दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था मे राजपूतों से निचली जाति में आने वाले जैसे अहीर, गड़रिया भी अच्छे कृषक साबित नही हो सके। उनका मुख्य पेशा गाय, बकरियो तथा भेड़ो का पालन–पोषण कर दुग्ध उत्पादन को बढ़ाना था और वे इसी में लगे रहे।[55] निःसन्देह बुन्देलखण्ड में काछी तथा लोदी अपने परिश्रम के बल पर अच्छे कृषक साबित हुए। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि इनकी पत्नियाँ भी इनके कार्य में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेती थी अतः काछियों एवं लोदियों की आर्थिक स्थिति अन्य जातियों की तुलना में बेहतर थी। सामाजिक, आर्थिक रूप से ब्राह्मण, ठाकुरों से अच्छी स्थिति में थे।[56] वे अपनी खेती मे ठाकुरों की अपेक्षा अधिक रुचि लेते थे तथा उसकी उचित देखभाल भी करते थे लेकिन बुन्देलखण्ड के ब्राह्मण भी कृषि कार्य में अधिक परिश्रम करने वाले लोदी तथा काछियों की तुलना मे निम्न स्तर पर थे। चूँकि तत्कालीन समाज व्यवस्था में चमार, लोदी, कुर्मी, अहीर अधिक संख्या में थे और परम्परागत रूप से प्रथाओं के ताने–बाने मे फले हुए थे। अतः तत्कालीन अंग्रेजी शासन के बोझ से दबे हुए होने के कारण इन जातियों में किसी प्रकार

---

[54] पाठक एस.पी. (वही) पृष्ठ 144
[55] पाठक एस.पी. (वही) पृष्ठ 144
[56] पाठक एस.पी. (वही) पृष्ठ 144

सांस्कृतिक पुर्नजागरण नही हो पाया। यहाँ तक कि वे अंग्रेजी शासन अवधि में अपनी कृषि के विकास में विकसित तरीकों का भी प्रयोग नही कर सके अतः 1802 से 1947 तक बुन्देलखण्ड का जनमानस सामाजिक, आर्थिक रूप से उपेक्षित बना रहा।

अपराधिक जातियाँ –

अंग्रेजी शासनकाल में आर्थिक शोषण और प्राकृतिक आपदाओं के प्रकोपों के कारण भूख से पीड़ित और उपेक्षित साधन विहीन लोग उदर पूर्ति के लिए अपराधिक प्रवृत्तियो को अपनाने के लिए बाध्य हुए। इनमें ललितपुर जनपद के सनौरिया अथवा उठाईगिरा विशेष रूप से उल्लिखित है।[57] यद्यपि प्रमुख रूप से यह अपराधिक जनजाति वीर तथा सनवाहों नामक गाँवो में अधिक संख्या में विद्यमान थे किन्तु ओरछा रियासत तथा दतिया रियासत के समीप के गाँवों मे भी इस जाति के लोग काफी संख्या में थे।[58] सनौरियों या उठाईगीरों के बारे में यह परम्परा प्रचलित है कि किसी मुगल सम्राट ने उक्त दो गाँवो में चार सनोरिया ब्राह्मणों को फग्गा बन्जारा की हत्या करने के ईनाम के रूप में दिया था। यह फग्गा बन्जारा कौन था? इस सम्बन्ध मे ललितपुर जनपद तथा आसपास के क्षेत्रो मे प्रचलित परम्परा यह कहती है कि फग्गा बंजारा की हत्या के उपलक्ष्य मे ललितपुर के अनेको गाँवो के निवासियो को ईनाम स्वरूप भूमि प्रदान की गई थी।[59] सन् 1858 मे चन्देरी के सुप्रीटेंडेंट मेजर हैरिश ने भी फग्गा बंजारा विषयक परम्परा का उल्लेख किया था।[60]

---

[57] Plowden, W.C.; Cesus of N.W. Provinces of India, Vol-I, Allahabad, 1868, P-87
[58] पाठक, एस.पी0 (वही) पृष्ठ – 146
[59] ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 98
[60] ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0, झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 98

अपराधिक जनजाति सनौरियों की उत्पत्ति के बारे मे प्रचलित एक अन्य परम्परा के अनुसार जब अयोध्या के राजा रामचन्द्र ने लंका के ब्राह्मण राजा रावण की हत्या की थी और ब्राह्मण वध के आरोप से मुक्त होने के लिये उन्होने जिस भोज का आयोजन किया था उनमे जिन जातियो ने खाना खाया था उन्हे उस जाति से निकाल दिया गया ऐसे ब्राह्मणो को **'सनौरिया'** कहा जाने लगा जो समाज से बहिष्कृत करने पर अपराध करने लगे। एक अन्य कथानक यह उल्लेख करता है कि सनौरिया अपनी जाति से बहिष्कृत किये गये ऐसे लोग थे जिन्होने बिठूर मे ब्रम्हा द्वारा किये गये यज्ञ मे भाग नही लिया था। एक अन्य परम्परा यह उल्लेख करती है कि कुछ सनौरिया युवको ने भीख माँगने की अपेक्षा चोरी कर जीविकोपार्जन अच्छा समझा इसलिये उन्होने इस प्रकार की ठगी करना प्रारम्भ किया और इस कारण वह अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया गये।[61] सनौरियों की उत्पत्ति विषयक जो किवंदतियां प्रचलित है उनमे अन्तिम किवदन्ती सत्य के अधिक समीप दिखाई पड़ती है। वास्तव मे सनौरिया अपराधिक जाति स्वयं मे कोई जाति नही थी बल्कि यह ठगो का गिरोह था जो इसी प्रकार की ठगी का काम करने बाले युवको के शामिल होने से निरन्तर बढ़ता गया। इस गैंग मे बनिया, चमार और मेहतर जातियों को छोड़कर शेष अन्य जाति के लोग शामिल किये जाते थे और सनौरिया के पुत्र को अवश्य ही सनौरिया उपनाम से सम्बोधित किया जाता थां इस प्रकार सनौरिया अपराधिक जाति प्रकाश में आयी।

यद्यपि ये लोग अपराधी थे और ठगी के कार्य में लिप्त थे किन्तु इनके द्वारा किए जाने वाले अपराध के संचालन का अलग ढंग होता था, इनकी अपनी अलग

[61] पाठक, एस.पी0 (वही) पृष्ठ – 146

संकेतात्मक भाषा होती थी और ये लोग केवल दिन में ही चोरी और ठगी का काम करते थे। इसके साथ ही इन लोगों ने आपस में शपथ ले रखी थी कि घर में सेंध लगाने और हिंसा सम्बन्धी अपराध नही करेगें, अपने व्यवसाय की परम्परा के अनुसार ये लोग अपने घरों के सौ मील की दूरी पर अपने ठगी और चोरी के कार्य को अन्जाम देते थे। 1865 में यह अनुमान लगाया गया था कि 1872 की जनगणना के समय तक इन अपराधी जातियों की संख्या लगभग समाप्त हो जाएगी[62] लेकिन वास्तविकता यह थी कि इसके बाद के वर्षो में इन अपराधियों की संख्या तेजी से बढ़ती गयी। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि अंग्रेजी शासनकाल के इन वर्षों में बुन्देलखण्ड में अकाल तथा प्राकृतिक आपदाओं का व्यापक प्रकोप पड़ा। विदेशी शासन के समय इस क्षेत्र का जो आर्थिक दमन हुआ उसके उदर पूर्ति के विकल्प के रूप में युवकों ने ठगी, अपराध को अपना लिया।[63] 1874 की एक रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि सनौरियों ने हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों में इस ठगी के कार्य के लिए अपने केन्द्र खोल दिए थे। ये केन्द्र मुख्यतः कलकत्ता, वर्धमान, राजमहल, बम्बई, बड़ौदा, अहमदाबाद और अमरावती जैसे बड़े शहरों में विद्यमान थे।[64] इन केन्द्रों पर चोरी के ऐसे सामानों को बेंच दिया जाता था जिन्हे आसानी से घर नही लाया जा सकता था।

झाँसी जिले के अलावा इस गिरोह के लोग ओरछा, बानपुर और दतिया मे काफी संख्या मे थे। एक अनुमान के अनुसार ओरछा में 4000, बानपुर में 300 और

---

[62] पाठक, एस.पी० (वही) पृष्ठ – 146

[63] ड्रेक ब्राक मैन, डी०एल० झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 90

[64] Plowden, W.C.; Cesus of N.W. Provinces of India, Vol-I, Allahabad, 1868, P-87

दतिया में 300 की संख्या में ये अपराधी ठग विद्यमान थे।[65] 1874 में ओरछा रियासत ने ठगों से गाँवो की निगरानी करने के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की।[66] 1864 से 1874 के बीच अपराधिक जातियों को पुलिस की निगरानी में रखा गया और इनको (Criminal Tribes Act XXVII of 1871) के अधीन रखा गया।[67] 1883 में राजकीय भूमि देने का प्रस्ताव कर ब्रिटिश सरकार ने इन जातियों को ठगी का कार्य बन्द करने के लिए प्रेरित किया किन्तु सनौरियो ने सकारात्मक रुख नही अपनाया अतः यह योजना असफल हो गई।[68] 1909 में एक सर्वे के अनुसार यह ज्ञात हुआ कि लगभग 125 सनौरिया परिवार वीर तथा सनवाहों गाँव में अब भी विद्यमान है तथा कुछ सुजना गाँव में भी विद्यमान है।[69]

सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन तथा अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा की भावना :-

सन् 1802 से लेकर 1947 तक ब्रिटिश शासनकाल में बुन्देलखण्ड सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़ापन स्थिति का शिकार रहा। यहाँ के लघु उद्योग धन्धों के विनाश से बेरोजगारी तथा गरीबी निरन्तर बढ़ती गयी। कर्वी की सूती मिल तथा कालपी की सूती मिल, एरच की चुनरी, झाँसी का कालीन उद्योग, मऊरानीपुर का प्रसिद्ध खरूआ वस्त्र उद्योग, हमीरपुर, जालौन आदि क्षेत्रों में भी फैला हुआ खरूआ तथा नील उद्योग के विनाश से इस क्षेत्र का आर्थिक पिछड़ापन बना रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ की स्वतन्त्रता–प्रिय जनता से अंग्रेज चिढ़े हुए थे। 1857 के विद्रोह में झाँसी की रानी, मर्दनसिंह, बाँदा के नवाब अलीबहादुर आदि नेताओं के

---

[65] पाठक, एस.पी० (वही) पृष्ठ – 147
[66] पाठक, एस.पी० (वही) पृष्ठ – 147
[67] पाठक, एस.पी० (वही) पृष्ठ – 147
[68] पाठक, एस.पी० (वही) पृष्ठ – 147
[69] पाठक, एस.पी० (वही) पृष्ठ – 147

नेतृत्व में बुन्देलखण्ड की जनता ने अंग्रेजो को गहरा आघात पहुँचाया था। यद्यपि 1857 के विद्रोह का दमन कर दिया गया था और 1858 में अंग्रेजो को इस क्षेत्र में शासन स्थापित करने में सफलता मिली, लेकिन अंग्रेज इस क्षेत्र की जनता से बदला लेने पर तुले हुए थे। वे जानते थे कि यहाँ के विद्रोही जनता को सजा देने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बुन्देलखण्ड को आर्थिक रूप से पिछड़ा बनाए रखा जाए। यह नीति 1858 से जारी रही राजस्व नीति की कठोरता ने अंग्रेजों को अपनी योजना के क्रियान्वयन में भरपूर मदद प्रदान की।

अंग्रेजी नीति का यह परिणाम निकला कि लोगों के दिमाग मे दमन और अत्याचार की छाया निरन्तर बनी रही। परिणाम स्वरूप यहाँ के लोगों ने अंग्रेजी शासन से घृणा करना शुरू कर दिया। लोग अंग्रेजी शासन को अपने कष्ट का कारण समझते थे। अतः लोग अंगेजो को 'कुत्ता' कहकर पुकारने लगे। झाँसी में इलाहाबाद बैंक चौराहे के समीप झाँसी के तत्कालीन सुप्रीटेंडेंट मेजर एस0डब्ल्यू0 पिनकने के स्मारक को आज भी लोग **'कुत्ते की टौरिया'** के नाम से पुकारते है। इतना ही नही, बल्कि अन्य भी स्मारक जो अंग्रेज अधिकारियों की याद में बनाए गए उन्हे भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप यहाँ घृणा का वातावरण पैदा हुआ। बुन्देलखण्ड में बाहर के लोगों को बसाना शुरू किया गया। झाँसी छावनी मे स्थित अनेकों ठेकेदार बाहर से लाकर बसाए गए जो सेनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। यहाँ के लोग अंग्रेजी योजनाओं मे भी सहयोग नही करते थें यह उल्लेखनीय है कि लड़कियों की शिक्षा के लिए सरकार की ओर से जब स्कूल खोला गया तो थोड़े ही

दिनों बाद लड़कियों की संख्या कम होने से सरकार को स्कूल बन्द करना पड़ा।[70] यह इस बात का प्रमाण है कि लोग सरकार के किसी भी मामले मे सहयोग देने के लिए तैयार नही थे। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजो के लिए यह आवश्यक हुआ कि इस क्षेत्र मे एक वफादार प्रजा का निर्माण किया जाए और इस उद्देश्य से ईसाई धर्म प्रचारकों को बसने के लिए प्रेरित किया गया ताकि वे ईसाइयों के नाम पर वफादार हो। इसी पृष्ठ भूमि में बुन्देलखण्ड के पिछड़े क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों ने अपना कार्य शुरू किया जिन्हे सरकार की ओर से संरक्षण और सुविधाएँ मिली। निःसन्देह इस धार्मिक वातावरण के लिए मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन को स्थायित्व देना था।

[70] ड्रेक ब्राक मैन, डी0एल0 झाँसी गजेटियर, 1909 (वही) पृष्ठ 100

उपसंहार

अध्याय - 8

उपसंहार

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के गठन एवं उसके प्रबन्धन के पीछे औपनिवेशिक शासन की यह चिर–प्रतीक्षित इच्छा थी कि भारत के इस मध्य भाग पर ब्रिटिश नियन्त्रण की स्थापना की जाए क्योंकि बिना इस क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित किए ब्रिटिश शासन का चारों ओर विस्तार तथा उस पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित नही था। यही कारण था कि अंग्रेजी शासकों ने यहाँ अपनी प्रभुता की स्थापना के लिए बराबर प्रयास किए। 1878 ई में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ, यह वह समय था जबकि अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर गुँसाई[1] आपस में मिलकर बुन्देलखण्ड विजय की योजनाए बना रहे थे। यहाँ की केन्द्रीय स्थिति और सामरिक महत्व को अंग्रेज राजनीतिज्ञ तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कूटनीतिक सलाहकार यह भलीभाँति समझते थे कि इस क्षेत्र में सैनिक छावनियों की स्थापना कर आस–पास की रियासतों पर न केवल अंकुश लगाया जा सकेगा, बल्कि विस्तृत ब्रिटिश साम्राज्य को नियन्त्रित भी किया जा सकेगा। यही कारण था कि सर्वप्रथम 1878 में वारेन हेस्टिंग्स ने बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार, कालपी होकर एक अंग्रेजी सेना पूना भेजने का प्रयास किया। 1878 में कालपी पर अंग्रेजों का अधिकार तो हो गया किन्तु बुन्देलखण्ड मे पूर्व में स्थापित मराठों ने अंग्रेजों को काफी समय तक आगे नही बढ़ने दिया। मराठे अपने इस प्रयास में लम्बे समय तक सफल न रहे और कम्पनी के कूटनीतिकारों ने कालिंजर, भोपाल और नागपुर के राजाओं से समझौते करके अंग्रेजी सेना को बुन्देलखण्ड के हृदय से निकालते हुए

[1] अध्याय प्रथम – बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी सत्ता का प्रारम्भ

महाराष्ट्र भेज दिया।[2] बुन्देलखण्ड से अंग्रेजी सेनाओं का महाराष्ट्र की ओर जाना इस प्रखण्ड की स्वतन्त्रता प्रिय जनता की प्रतिष्ठा को धक्का लगाने जैसा था। यद्यपि जैसे ही अंग्रेजी सेनाएं नर्मदा पार हुई, उसी समय झाँसी के मराठा सेनाओं ने कालपी पर पुनः अधिकार कर लिया। निःसन्देह अंग्रेजी सेनाओं का इस क्षेत्र से गुजरना इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ।[3]

कूटनीति में माहिर अंग्रेज अधिकारियों ने बुन्देलखण्ड में अपने नियन्त्रण के इरादे में कोई बदलाव नही किया और '**फूट डाले राज्य करो**' के प्रणेताओं ने गुँसाई सेनानायक हिम्मतबहादुर को अपनी ओर मिलाकर उससे सन्धि करके बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश प्रभुसत्ता के उदय को आसान बना दिया। सन् 1803 में **कर्नल बावेल** ने बाँदा पहुँचकर हिम्मत बहादुर से सैनिक गठबन्धन किया था। इसकी शर्तों के अनुसार हिम्मतबहादुर को कम्पनी सेना की सहायता के लिए हमीरपुर, मौदहा क्षेत्र में सेना रखने के लिए रु0 20 लाख की वार्षिक जागीर दी गयी।[4]

हिम्मतबहादुर के सहयोग से अंग्रेजों द्वारा बुन्देलखण्ड में साम्राज्य विस्तार :

हिम्मतबहादुर बुन्देलखण्ड की भौगोलिक संरचना से भलीभाँति परिचित था। यहाँ का निवासी होने के कारण उसे इस क्षेत्र की नदियों, घाटियों एवं सामरिक स्थलों की अच्छी जानकारी थी। गुँसाइयों की विशाल सेना के बल पर अंग्रेजी सेना ने 1804 में बाँदा के नवाब शमशेर बहादुर को पराजित किया। इस सफलता से बुन्दलेखण्ड के अन्य राजे भयभीत होने लगे, जिससे अंग्रेजी शासन स्थापित करने में

---

[2] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, जी.एल. तिवारी (वही) पृष्ठ 176 तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया) पृष्ठ 367
[3] बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, जी.एल. तिवारी (वही) पृष्ठ 176 तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया) पृष्ठ 367
[4] के.पी. त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का वृहत इतिहास (वही) पृष्ठ 263

आसानी हुई। बुन्देलखण्ड के स्थानीय राजाओं एवं महाराजाओं के सैनिक गठन पर यदि दृष्टि डाले तो यह प्रतीत होगा कि जहाँ कम्पनी की सेना आधुनिकतम हथियारों से सम्पन्न थी और उसमें घुड़सवार सेना एवं तोपखाना प्रचुर मात्रा में था, वहीं बुन्देलखण्ड के स्थानीय राजाओं की सेना और मराठी सेना सैनिक दृष्टि से नितान्त कमजोर थी। मराठों के पास लुटेरे, पिण्डारी तथा तातारी सैनिकों की भीड़ थी जिनसे स्थानीय लोग घृणा करते थें। इसके अलावा स्थानीय राज्यों के पास नगण्य संख्या में सैनिक थे। उनके पास बल्लम, भाला, तलवार, कटार जैसे प्राचीन अस्त्र–शस्त्र थे। महत्वपूर्ण यह है कि बुन्देलखण्ड में अनेकों छोटे–छोटे राज्य थे जिनके पास अपनी सेना थी ही नही चूँकि उनकी आय अत्यन्त कम थी इसलिए वह सेना रखने मे असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त मराठों की लूटपाट ने इन छोटे–छोटे राजाओं को और कमजोर कर दिया था। फलतः बुन्देलखण्ड के राजाओं–महराजाओं की सेना अंग्रेजी सेना की तोपों और बन्दूकों का मुकाबला नही कर सकती थी और वे बाँदा नवाब की पराजय के पश्चात् भयभीत होकर कम्पनी सरकार की प्रभुता के अधीन हो गए। अब उनका अस्तित्व कम्पनी की कृपा पर निर्भर हो गया।[5] कम्पनी का संरक्षण स्वीकार कर राजाओं ने अपनी स्वाधीनता गवाँ दी जिसके बदले कम्पनी सरकार ने मराठो से उनकी वफादारी और स्वामिभक्ति की शर्त पर इन राज्यों के बने रहने का वचन दिया।

---

[5] Lee Warnar, (The native states of India) P-79

बुन्देलखण्ड एजेन्सी मे शान्ति व्यवस्था का प्रबन्ध –

बुन्देलखण्ड पर ब्रिटिश अधिपत्य सिद्धान्ततः 1802 में स्थापित हुआ, किन्तु इस क्षेत्र का वास्तविक अधिग्रहण 16 दिसम्बर 1803 को हुआ।[6] इसी के साथ कर्वी से पेशवा अमृतराव तथा बाँदा से नवाब शमशेर बहादुर का प्रभाव समाप्त हुआ और ये पेन्शन भोगी सामान्य नागरिक बना दिए गए।

अंग्रेज यह भलीभाँति समझते थे कि बुन्देलखण्ड में अपनी सर्वोच्च सत्ता की पकड़ मजबूत करने के लिए यहाँ के प्रभावशाली मराठा सरदारों पर चोट करना आवश्यक था। अतः सोची–समझी रणनीति के तहत मराठों पर प्रहार किए गए जिससे न केवल मराठा प्रभाव ही समाप्त हुआ बल्कि इस क्षेत्र के अन्य छोटे–छोटे राजे और जमींदार स्वयमेव भयभीत हो गए और ब्रिटिश शासन से समझौता करने को बाध्य हुए। सर्वोच्च सत्ता की अधीनता स्वीकार करने के बाद इन राजाओं को निम्नलिखित दायित्व सौपा गया –

1. अंग्रेजों के प्रति वफादार रहना।
2. आन्तरिक क्षेत्र में शान्ति सुशासन की स्थापना करना।

शान्ति व्यवस्था स्थापित कर कम्पनी सरकार बुन्देलखण्ड के लोगों को यह एहसास कराना चाहती थी कि सर्वोच्च सत्ता ने जनकल्याण को वरीयता देते हुए लोगों के हित में यह कार्य किया। इस कार्य से जनमानस रियासतों के राजाओं के समय से चले आ रहे लुटेरों, ठगों और पिण्डारियों के आतंक से मुक्त हो सके। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि बुन्देलखण्ड एजेन्सी में शान्ति व्यवस्था की स्थापना लोगों के हित में तो थी किन्तु यह कंम्पनी प्रशासन के हित में अधिक थी क्योंकि

---

[6] अध्याय – 3 बुन्देलखण्ड एजेन्सी में प्रशासनिक तन्त्र का विकास।

बिना शान्ति व्यवस्था स्थापित किए हुए दोनों कम्पनी के राजस्व अधिकारी रैयत से राजस्व वसूल करने में परेशानी का सामना करते। अतः बुन्देलखण्ड एजेन्सी में शान्ति व्यवस्था स्थापना अंग्रेजों के हित में अधिक थी।

राजाओं के मध्य परस्पर विवादों का निपटारा :

रियासतो के राजाओं–महाराजाओं के मध्य प्रायः क्षेत्रीय सीमा विवाद तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद हो जाया करते थे इस कारण भी शान्ति व्यवस्था भंग हो जाती थी अतः ब्रिटिश प्रशासन की उपस्थिति का और अधिक आभास कराने के लिए कम्पनी सरकार राजाओं–महाराजाओं के मध्य विवादों का निर्णय कराते थे। छतरपुर, कालिंजर, कोटरा, अजयगढ़ आदि में हस्तक्षेप कर ऐसे विवादों का निपटारा कराया।

पिण्डारियों का दमन :

मध्य भारत तथा बुन्देलखण्ड पिण्डारियों की अराजकता से ग्रसित था ये पिण्डारी दक्षिण भारत से दिल्ली की ओर जाने वाले व्यापारियों को आतंकित कर उन्हे लूट लेते थे। ग्वालियर का सिन्धिया भी बुन्देलखण्ड के राजाओं–महाराजाओं को डराने के लिए पिण्डारियों की सहायता लेता था। 1817 में हेस्टिंग्स ने पिण्डारियों, डकैतों के दमन का निश्चय किया। पिण्डारियों के दमन से जनता ने शान्ति एवं सुरक्षा की सांस ली। इनका दमन करते हुए हेस्टिंग्स ने मराठे रियासतों के राजाओं को भी दण्डित किया ताकि वे पिण्डारियों की मदद न कर सकें। पिण्डारियों और ठगों से जनता की सुरक्षा के लिए 1829 में कैथा (हमीरपुर) में लार्ड

हेस्टिंग्स ने बुन्देलखण्ड के राजाओं का दरबार आयोजित किया,[7] जिसमें ठगों और पिण्डारियों के दमन का विचार किया गया। इसके अलावा यदि कोई राजा अपनी प्रजा पर अत्याचार करता था, उसे भी कम्पनी सरकार दण्डित करती थी। 1832 में जब पन्ना राजा ने अपनी प्रजा पर भारी अत्याचार किया उस समय लार्ड विलियम बेंटिंक ने राजा को पन्ना से निष्कासित कर दिया था तथा छतरपुर के राजा प्रतापसिंह को वहाँ का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया। इस प्रकार इन कार्यों से कम्पनी सरकार ने अपनी नैतिकता, ईमानदारी तथा जनकल्याण का उदाहरण रखा।

प्रशासनिक सूझ-बूझ तथा रियासतों के राजाओं के कुशासन का प्रस्तुतिकरण :

बुन्देलखण्ड एजेन्सी मे प्रजा की प्रतिबद्धता और वफादारी को प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च सत्ता ने यह साबित करने का प्रयास किया कि ब्रिटिश प्रशासन रियासतों के शासन से न केवल उत्तम है बल्कि यह जनहितैषी भी है। इस नीति के तहत समय-समय पर रियासतों का प्रशासन अपने हाथ में लेकर कम्पनी सरकार ने प्रजा के समक्ष यह उदाहरण रखा कि देशी रियासतों की तुलना में विदेशी प्रशासन अच्छा है। कम्पनी इग्लैण्ड के लोकतन्त्र की कल्याणकारी नीतियों को समझती थी और इसी परिवेश में विकसित हुई है अतः ऐसे लोकतान्त्रिक देश के अधिकारी बुन्देलखण्ड के स्वार्थी एवं स्वेच्छाचारी राजाओं की तुलना में बेहतर प्रशासन करेंगे। इस प्रकार तुलनात्मक शासन पद्धति का प्रस्तुतिकरण करते हुए कम्पनी सरकार ने रियासतों के राजाओं को बदनाम किया। 1837 में अजयगढ़, 1838 में झाँसी की

---

[7] के0पी0 त्रिपाठी, (वही) पृष्ठ 260

रियासतों में कम्पनी सरकार ने कुछ समय के लिए प्रशासन का संचालन कर जनमानस के समक्ष रियासत के राजाओं की अकर्मण्यता को प्रदर्शित किया।

राजस्व दरों में कटौती द्वारा सद्भावना प्राप्ति का प्रदर्शन :

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना का कार्य 1805 तक पूरा हुआ।[8] औपनिवेशिक शासन का मुख्य उद्देश्य हमारे देश से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ कमाना था ताकि कम्पनी के कर्मचारियों और भागीदारों को अधिक से अधिक लाभ मिल सके। प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड के जिलों में अंग्रेजी सरकार ने जो राजस्व नीति अपनाई वह उदार थी। कैप्टन जॉन वेली ने ब्रेसिन की सन्धि (1802) के बाद बुन्देलखण्ड के जिन जिलों की सूची प्रस्तुत की थी उसमें बाँदा के नवाब अलीबहादुर के समय इन जिलों के राजस्व की धनराशि भी प्रस्तुत की गई थी।[9] 1803–04 में अंग्रेज अधिकारियों ने बुन्देलखण्ड के जिलों का राजस्व अलीबहादुर की राजस्व दरों के आधार पर ही निर्धारित किया था। तुलनात्मक चार्ट से प्रतीत होता है कि कम्पनी सरकार ने राजस्व की जो दरें राजाओं और नवाबों के समय निर्धारित की थी उसमें कटौती कर दी गई। उदाहरण के लिए केन नदी के पूर्वी क्षेत्रों का राजस्व नवाब अलीबहादुर के समय रु0 691644 था जिसे कम्पनी ने घटाकर रु0 664248 कर दिया था। यही स्थिति केन नदी के पश्चिम वाले क्षेत्रों की थी जहाँ ब्रिटिश अधिग्रहण से पूर्व 1802–03 में रु0 1227690 था जिसे 1803–04 में अंग्रेजी कम्पनी द्वारा नियन्त्रण हाथ में लेने के बाद रु0 1157686 कर दिया गया। वास्तव में राजस्व में की गई कटौती के पीछे कम्पनी सरकार की बुन्देलखण्ड के

---

[8] एटकिन्सन, ई.टी (वही) पृष्ठ 39
[9] एटकिन्सन, ई.टी (वही) पृष्ठ 39

स्थानीय निवासियों तथा जमींदारों को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से की गयी थी। कम्पनी सरकार यह जानती थी कि राजस्व की कटौती से यह अनुभूति होगी कि कम्पनी सरकार का शासन देशी रियासतों के शासन से अच्छा है। इसके पूर्व भी इस क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने, पिण्डारियों, ठगों आदि का दमन करने के पीछे सरकार जनता को यह बताना चाहती थी कि स्थानीय लोगों की सुरक्षा देशी रियासतों के राजाओं–महाराजाओं के हितों से सर्वोपरि है। कम्पनी सरकार ने राजाओं तथा महाराजाओं को भी न्यायपूर्ण तरीके से शासन करने के लिए उन पर समय–समय पर अंकुश लगाए थे। ऐसे मराठी राजे जो पिण्डारियों के प्रति हमदर्दी रखते थे उन्हे भी कम्पनी सरकार ने दबाने का कार्य कर जनता की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। इस प्रकार तुलनात्मक शासन का जो नमूना कम्पनी सरकार ने प्रस्तुत किया उसके पीछे जनता की सहानुभूति प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य था।

अध्याय – 3 में अंकित चार्ट से केन नदी के पश्चिमी क्षेत्रों का अवलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि कालपी का राजस्व 1803 में ब्रिटिश अधिग्रहण के पहले रु0 197733 था जिसे अंग्रेजी सरकार ने घटाकर रु0 135758 कर दिया। इसी तरह कोटरा में भी राजस्व की दरों में रु0 21000 की रियायत दी गई। सैयद नगर में रु0 2000 की राजस्व कटौती की गई। इस क्षेत्र के लोगों को सन्तुष्ट करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का यह उद्देश्य था कि बुन्देलखण्ड एजेन्सी के गठन के पश्चात् ब्रिटिश शासन को मजबूती देने के लिए लोगों का सहयोग आवश्यक था इस लिए ये रियायतें दी गई।

बुन्देलखण्ड मे सैनिक छावनियों के पीछे ब्रिटिश सरकार के उद्देश्य :

निःसन्देह भारत का हृदय प्रदेश होने के कारण बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासक सैनिक छावनियों की स्थापना करना चाहते थे ताकि साम्राज्य को सुदृढ़ करते हुए उसका चारों ओर विस्तार किया जा सके अतः इनकी स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य साम्राज्यवादी हितों का संरक्षण करना था। इसके साथ ही साथ इन छावनियों की स्थापना कर सरकार डकैतों, पिण्डारियों, अराजक तत्वों तथा अपराधिक जातियों का दमन भी करना चाहती थी क्योंकि ये अराजक तत्व किसानो तथा जमींदारों को न केवल लूटते थे बल्कि उनसे वसूल किया जाने वाला राजस्व स्वयं ले लेते थे और इससे कम्पनी सरकार को नुकसान होता था। दिसम्बर 1805 में बुन्देलखण्ड के कलेक्टर ने यह लिखा था कि **''पिछले वर्ष के अन्त में राजाराम तथा पारसराम जैसे डकैतों ने कम्पनी के क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया है और वे बलपूर्वक राजस्व की वसूली कर रहे हैं। पनवाड़ी, मटौंध और सूपा के आस-पास के जंगली क्षेत्रों में इन डकैतों ने शरण ले रखी है।**[10]'' अतः हम कह सकते है कि छावनियों की स्थापना के पीछे बुन्देलखण्ड के लोगों का जनकल्याण का भाव न होकर सरकारी हितों की रक्षा करना था लेकिन कम्पनी सरकार ने यही प्रदर्शित किया कि वह इन छावनियों की स्थापना द्वारा बुन्देलखण्ड के लोगों को शान्ति एवं सुरक्षा देना चाहती है।

सैनिक छावनियों की स्थापना से देशी सैनिकों के मन में असामनता का भाव पैदा हुआ। हिन्दुस्तानी सैनिक, अंग्रेजी सेना की तुलना में बहुत कम वेतन और भत्ता पाते थे उनके साथ भेदभाव किया जाता था। बुन्देलखण्ड के लोग इन छावनियों में

---

[10] एटकिन्सन, ई.टी (वही) पृष्ठ 42

तैनात सैनिकों के व्यवहार से असन्तुष्ट थे। सिपाहियों का निष्ठुर और दमनात्मक व्यवहार स्थानीय लोगो की नाराजगी का कारण होता था। अधिकांश सिपाही मांसाहारी थे जिसे भी स्थानीय लोग पसन्द नही करते थे लेकिन ब्रिटिश सरकार यह प्रदर्शन करती रहती थी कि छावनियों की स्थापना से बुन्देलखण्ड के लोगों की सुरक्षा प्रभावी ढंग से हो सकेगी।

कम्पनी प्रशासन तन्त्र का स्थानीय लोगों से सम्बन्ध –

नौगाँव छावनी की स्थापना के बाद से ही कम्पनी के अधिकारियों के आगमन और कर्मचारियो की नियुक्ति से अंग्रेजो और स्थानीय लोगों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित होने लगे। आपसी ताल–मेल तथा सामाजिक सम्बन्धों मे परिवर्तन दिखाई देने लगा। सागर, झाँसी, महोबा और जैतपुर विशेष रूप से ऐसे क्षेत्र थे जहाँ कम्पनी के कर्मचारियों के सम्बन्धों की छाप बुन्देलखण्ड के समाज और प्रशासन पर दिखाई पड़ी। अंग्रेजी अधिकारियों और कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा–दीक्षा के लिए आधुनिक शिक्षा की दिशा में नए स्कूल खोले गए। अंग्रेजी का प्रभाव जो अंग्रेजी स्कूलों से प्रारम्भ हुआ वह बुन्देलखण्ड का रूढ़िवान और अज्ञान नष्ट कर नई पाश्चात्य विचारधारा फैलाने में सहायक रहा। ईसाई मिशनरियों ने सर्वप्रथम नौगाँव छावनी से ही अनाथालय, अस्पताल तथा स्कूलों की स्थापना कर मानवीय कल्याण के कार्य करना प्रारम्भ किए ईसाई मिशनरी, बुन्देलखण्डी परम्पराओं को अपनाकर जनता के समीप पहुँच गए। अंग्रेज सरकार ने मिशनरियों की स्थापना के लिए प्रोत्साहन और संरक्षण दिया। पॉलिटिकल एजेन्टस जिसका मुख्यालय नौगाँव था उसने समय–समय पर बुन्देलखण्ड के दौरे और जनसम्पर्क स्थापित किए। इन

सभी कार्यों के पीछे मूल उद्देश्य बुन्देलखण्ड में एक वफादार प्रजा का निर्माण करना था, जो प्रत्येक दृष्टि से अंग्रेजो के प्रति सहायक सिद्ध हो। एक वफादार प्रजा के निर्माण के कारण ही कम्पनी के अधिकारियों ने बुन्देलखण्ड एजेन्सी के गठन के प्रारम्भिक चरण में स्थानीय लोगों को सुविधाएं प्रदान की।

परवर्ती राजस्व प्रबन्ध तथा ब्रिटिश शोषण की नीति –

बुन्देलखण्ड एजेन्सी के गठन के पश्चात् कम्पनी सरकार ने कुछ ही वर्षों के अन्दर अपनी पकड़ मजबूत बना ली थी इसके बाद औपनिवेशिक शासन ने राजस्व दरों में वृद्धि करते हुए इस क्षेत्र के किसानों से अधिक से अधिक राजस्व वसूली प्रारम्भ की। 1805 में आर्स्किन ने बाँदा का अस्थायी प्रबन्ध किया था किन्तु उसके पश्चात् वान्चूप ने जिले में कलेक्टर का पद भार ग्रहण किया जिसने राजस्व की दरों में वृद्धि कर दी।[11] राजस्व की बढ़ती दरों को कठोरता से वसूलने के आदेश दिए गए जिससे किसानों में असन्तोष बढ़ा। बाँदा के कलेक्टर कैडेल ने ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा राजस्व दरों में की गई वृद्धि में आलोचना करते हुए लिखा था कि **''ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा प्रशासन राजस्व वसूली के तरीकों मे उन अमानुषिक तरीकों का पालन कर रहा है जो किसी काल में अत्याचारी राजाओं द्वारा किए जाते थे।**[12]'' राजस्व की वृद्धि बाँदा तक ही सीमित न रही ललितपुर और झाँसी जिलों में भी इन दरों में वृद्धि की जाती रही। उनकी असमानताओं के बारे में झाँसी के डिप्टी कलेक्टर जेनकिन्सन ने 1871 में लिखा था **''झाँसी जिले के भाण्डेर परगनें में राजस्व की दरें कम थी जबकि अन्य परगनो में काफी ऊँची थी। मऊ तथा पण्डवाहा**

[11] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 132
[12] कैडेल ए, सेटैलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ 14

में भी राजस्व की असमान्य दरें निर्धारित की गई।[13]'' 1892 के बन्दोबस्त के समय मऊ परगनें के जाँच अधिकारी पोर्टर ने स्वीकार किया कि राजस्व की ऊँची दरें इन परगनों की गरीबी के लिए उत्तरदायी है।[14] यह बन्दोबस्त इतने कठोर थे कि अपनी अवधि पूरी करने के पूर्व ही इनका पुर्ननिर्धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1903 में झाँसी जिले के फाइनल बन्दोबस्त के समय बन्दोबस्त अधिकारी पिम[15] ने लिखा था ''**इस जिले में राजस्व की जो दरें निर्धारित की गयी थी वे उन गाँवों में जहाँ परिश्रमी किसान आबाद थे वहाँ काफी रखी गयी थी किन्तु ऐसे गाँव जहाँ प्रभावशाली बुन्देला ठाकुरों का बोलबाला था उनके लिए राजस्व की दरें कम रखी गई।**'' दरों में असमानता का यह कारण वास्तव में बुन्देला ठाकुरों को खुश करने के लिए किया गया था। ताकि वह कम्पनी सरकार की सहायता करें। वही दूसरी ओर परिश्रमी किसानों को हतोत्साहित किया गया था।

दूसरी ओर जालौन और हमीरपुर भी राजस्व दरों की कठोरता के शिकार रहे इन जिलों में भी राजस्व प्रबन्ध अपना समय पूरा नही कर सकें। राजस्व की कठोर दरों के कारण जालौन और हमीरपुर मे भी लोग अपनी भूमि बेंचने को बाध्य हुये। 1855 में जालौन की स्थिति का वर्णन करते हुए बालमेन्द्र ने लिखा था कि'' **इस जिले का 1/6 भाग खेती की परिधि से बाहर हो गया, अकालों के कारण लोग खेती करना छोड़ रहे हैं राजस्व की कठोर दरों से भी लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ा।**'' 1855 में जालौन के सुप्रीटेंडेंट कैप्टन शीने ने भी इस मत की पुष्टि की है।[16] राजस्व की

---

[13] जेनकिन्सन ई.जी., झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871 पृष्ठ 103
[14] इम्पे तथा मेस्टन, झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892 पृष्ठ 55–56
[15] पिम ए.डब्ल्यू., फाइनल सेटैलमेण्ट रिपोर्ट ऑफ झाँसी, इलाहाबाद, पृष्ठ 14
[16] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 119

दरों में बढ़ोत्तरी के कारण बुन्देलखण्ड में भूमि का स्थानान्तरण होने लगा। मारवाड़ियों, जैनियों तथा ऋणदाताओं ने किसानों की जमीनें खरीद ली। सरकार को बाध्य होकर कृषि योग्य भूमि ऋण दाताओं के हाथ में जाने से रोकने के लिए '**बुन्देलखण्ड भूमि स्थानान्तरण कानून**' पारित करना पड़ा किन्तु तब तक काफी देर हो चुकी थी क्योंकि भूमि गरीब किसानों के हाँथ से निकल कर मारवाड़ियों, जैनियों के हाँथ में पहुँच चुकी थी।

बुन्देलखण्ड का सामाजिक, आर्थिक शोषण की नीति –

1802 से 1947 की अवधि के बीच कम्पनी सरकार ने पूरे देश की ही भाँति बुन्देलखण्ड का भी सामाजिक, आर्थिक शोषण किया फलतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी इग्लैण्ड में उत्पादित व्यापारिक वस्तुओं को इस क्षेत्र में प्रवेश दिलाया। शीघ्र ही मानचेस्टर, लीवरपूल, लंकाशायर, बर्किघंम आदि औद्योगिक नगरों से विदेशी कपड़े, लोहे तथा अन्य जरूरत की चीजें इस देश में लाई गई और बुन्देलखण्ड में भी इनकी बिक्री प्रारम्भ की गयी। विदेशी वस्तुओ के आयात पर कोई कर नही था जबकि स्थानीय उत्पादों पर अधिक से अधिक कर लगाया जाता था। इस नीति के घातक परिणाम हुए और बुन्देलखण्ड के हस्तशिल्प तथा कुटीर उद्योग इसलिए नष्ट हो गए क्योंकि इनके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ इग्लैण्ड में उत्पादित वस्तुओं से मँहगी बिकती थी। स्थानीय औद्योगिक उत्पादों को हतोत्साहित करने का नतीजा यह हुआ कि बुन्देलखण्ड के उद्योग धन्धें नष्ट हो गए।

बुन्देलखण्ड में नील उद्योग का विनाश :-

अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड की अच्छी किस्म की मार भूमि में अल नामक पौधे की खेती की जाती थी।[17] इस पौधे की जड़ को खोदकर तथा उसे भट्ठियों में जलाकर विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्माण किया जाता था जिसका उपयोग वस्त्रों के रंगने के कार्य में होता था।[18] यह रंगाई उद्योग इस क्षेत्र मे मुख्यतः मऊरानीपुर तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों तक फैला हुआ था। इस क्षेत्र में एक प्रकार के वस्त्र की बुनाई होती थी जिसे खरूआ वस्त्र उद्योग के नाम से पुकारा जाता है।[19] खरूआ उद्योग का प्रधान केन्द्र मऊरानीपुर में स्थित था इस कपड़े की रंगाई में जो विभिन्न प्रकार के रंग प्रयोग होते थे वे अल पौधे की जड़ को पकाकर तैयार किए जाते थे। उन दिनों यह बड़ा ही प्रसिद्ध उद्योग था जिससे इसकी खेती करने वाले किसान लाभान्वित होते रहते थे।

अल नामक पौधे की खेती अच्छी किस्म की मार भूमि में की जाती थी और लगभग एक एकड़ भूमि में इस पौधे की 10 मन जड़ का उत्पादन हो जाता था।[20] 1873 में यह अनुमान लगाया गया था कि यह जड़ रु0 8 प्रति मन के हिसाब से बेंची जाती थी।[21] यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि यह पौधा जो कि यहाँ के कृषकों के लिए आमदनी का एक प्रमुख स्रोत था, उसकी खेती का पतन अंग्रेजी शासन काल मे हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी शासक इस क्षेत्र के रंग उद्योग को नष्ट करना चाहते थे। इसके पीछे उनका इरादा यह था कि इग्लैंण्ड में

---

[17] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 252
[18] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 57
[19] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 57
[20] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 57
[21] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 57

जिस रंग का उत्पादन हो रहा है, उसे भारत में बेचा जाए यही कारण था कि अल पौधे की खेती क्षेत्र के किसानों के लिए लाभप्रद उद्योग था, लेकिन 1892 तक इसकी खेती काफी कम हो गई। परिणामस्वरूप झाँसी, हमीरपुर, जालौन तथा बाँदा के किसानों को आर्थिक रूप से भारी नुकसान हुआ।[22] मऊरानीपुर का प्रसिद्ध खरूआ वस्त्र उद्योग जो अल पौधे के रंग से रंगा जाता था, उसको भी गहरा धक्का लगा। अल पौधे की खेती के नष्ट होने के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते है –

1. इस पौधे में खेती का अनुपात कम था।
2. इस पौधे की खेती की देख–रेख करने की बहुत ही आवश्यकता थी क्योंकि इसमें कीड़े भी लग जाते थे।
3. इस पौधे की जड़े काफी गहराई में जाती थी तथा इनकी खुदाई के लिए काफी पैसा खर्च करना पड़ता था।[23] इसके साथ ही सरकार की ओर से अल पौधे की खेती को हतोत्साहित किया गया अतः नील उद्योग पूर्णतः नष्ट हो गया।

कुटीर उद्योग धन्धों का पतन –

जहाँ बुन्देलखण्ड के किसान आर्थिक रूप से नष्ट हो रहे थे वहीं दूसरी ओर व्यापारी तथा उत्पादन वर्ग भी खुशहाल नही था इसका कारण स्पष्ट था कि अंग्रेज अधिकारियों को बुन्देलखण्ड के क्षेत्रीय विकास में कोई रुचि नही थी और वे तो इस क्षेत्र को औद्योगिक रूप से पिछड़ा बनाए रखना चाहते थे, ताकि 1857 के विद्रोह में भाग लेने की उचित सजा यहाँ के निवासियों को दी जा सके। 1872 में एटकिन्सन

[22] इम्पे तथा मेस्टन, झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892 पृष्ठ 3
[23] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 252–253

ने लिखा था कि "**झाँसी जिले में कुल 6222 व्यक्ति व्यापारिक कार्यों में जुड़े हुए हैं इसके अलावा कुछ ऐसे लोग हैं जो आयात-निर्यात तथा ऋण के लेन-देन का काम भी किया करते हैं।**[24]" ललितपुर जिले की भी यही स्थिति थी जो 1891 तक एक पृथक जिला था।[25] यहाँ कुछ ऐसे जैन व्यापारी थे जो गल्ला, तम्बाकू तथा ऋण के लेन-देन का व्यापार करते थे।[26] प्राप्त आँकड़ो से प्रतीत होता है कि इस जिले से अन्य क्षेत्रों को मोटा अनाज, दालें, तिलहन, सूती कपड़ा तथा घी का व्यापार यहाँ के लोगों को अधिक लाभ नही प्रदान कर सका। 1880-81 में झाँसी जिले में रु0 449862 मन के मूल्य का सामान दूसरे जिलों को निर्यात किया गया, लेकिन दूसरी ओर विदेशी गल्ले के आयात नमक, चीनी, सूती कपड़े की वस्तुएं तथा रु0 750308 मन तक के मूल्य के सामान इस क्षेत्र में मंगाने पड़े। इस प्रकार व्यापार का सन्तुलन बिगड़ता ही चला गया और इस क्षेत्र के लोगों को आयात तथा निर्यात की दृष्टि से कोई लाभ नही हुआ।

खरूआ वस्त्र उद्योग का पतन : –

बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश शासन की स्थापना के लगभग 100 वर्ष पूर्व मऊरानीपुर, इस सम्भाग के व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। जेनकिन्सन ने इसके बारे में जानकारी दी है – "**मऊरानीपुर पहले एक छोटा सा गाँव था, जहाँ लोगों का मुख्य पेशा खेती था। झाँसी के राजा रघुनाथ राव के समय छतरपुर के कुछ व्यापारी भाग कर मऊरानीपुर आ गए जिन्हे राजा रघुनाथ राव**

[24] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 269
[25] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 347-348
[26] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 347-348

ने संरक्षण प्रदान किया। अतः इन व्यापारियों ने इस क्षेत्र में अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान खोलने प्रारम्भ कर दिए[27] तभी से यह क्षेत्र व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित होने लगा।''

मऊ का एक औद्योगिक केन्द्र के रूप में विकसित होने के पीछे क्या कहानी रही है, इसकी विवेचना किए बिना भी हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी सत्ता से पूर्व ही यह क्षेत्र अपने खरूआ वस्त्र उद्योग के लिए महत्वपूर्ण हो चुका था। खरूआ वस्त्र एक प्रकार के रंग से रंगा जाता था। जिसे अल नामक पौधे की जड़ से पकाया जाता था।[28] यही कारण था कि अल पौधे की खेती बुन्देलखण्ड के जिलों में काफी प्रसिद्ध हो चुकी थी। एटकिन्सन ने इस खरूआ उद्योग के अन्तर्गत बनाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कपड़ों की विस्तृत सूची दी है जिसे वहाँ के आस–पास के बुनकरों द्वारा बुना जाता था। इनकी रंगाई कर देने पर इसे खरूआ कपड़े के नाम से पुकारा जाता था। यह उद्योग इतना विकसित हो चुका था कि 1863 में डेनियल के अनुसार **''इस कपड़े का निर्यात लगभग 6 लाख 80 हजार रुपया वार्षिक की दर से हुआ।''** मऊरानीपुर के व्यापारी भारत के दूर–दूर क्षेत्रों मे अपना समान बेंचते थे। अमरावती, मिर्जापुर, नागपुर, इन्दौर, फर्रूखाबाद, हाथरस, कालपी, कानपुर और दिल्ली जैसे नगर इनके व्यापारिक सम्बन्धों के प्रमुख केन्द्र थे।[29]

यह आश्चर्य का विषय है कि खरूआ वस्त्र उद्योग जितना लाभप्रद था, वह अचानक नष्ट हो गया। सरकार की ओर से इस उद्योग को कोई प्रोत्साहन नही मिलता यहाँ तक कि विदेशी रंग आ जाने के कारण मऊरानीपुर के उद्योग को

---

[27] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 60
[28] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 60
[29] एटकिन्सन, ई.टी., बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 289

संरक्षण नही मिला तथा निषेधात्मक तरीके अपनाकर सरकारी नीति ने इन उद्योगों के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इंग्लैण्ड से भारत आने वाले कपड़ों पर कर न होने के कारण वे कपड़े बुन्देलखण्ड के बाजारों में सस्ते दरों पर बिकने लगे। ऐसी स्थिति में सरकारी कर से दबा हुआ मऊ का वस्त्र उद्योग पतन की कगार पर पहुँच गया। साथ ही सरकार की ओर से इस उद्योग में निर्मित वस्त्रों के विकास की ओर ध्यान नही दिया गया जो इसके पतन का कारण हुआ।[30]

खरूआ वस्त्र उद्योग के अलावा मऊरानीपुर, बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों को विभिन्न व्यापारिक सामानों को पहुँचाने तथा उन्हे इकट्ठा करने का प्रमुख केन्द्र भी था। यहीं से दक्षिण बुन्देलखण्ड तथा मध्य भारत के नगरों को तथा हाथरस, फतेहगढ़, कानपुर, अलीगढ़ और मिर्जापुर आदि व्यापारिक नगरों को मऊरानीपुर से सामान भेजें या खरीदे जाते थें। इन दिनों बन्जारे व्यापारिक सामानों को पहुँचाने व लाने का कार्य करते थे।[31] धीरे–धीरे झाँसी में रेल्वे स्टेशन हो जाने के कारण तथा इसकी केन्द्रीय स्थिति के कारण मऊरानीपुर का व्यापारिक महत्व घटने लगा और झाँसी इस क्षेत्र के आयात तथा निर्यात के लिए प्रसिद्ध हो गया।

अन्य उद्योग –

खरूआ उद्योग के अलावा बुन्देलखण्ड मे कुछ अन्य कुटीर उद्योग भी थे जिसका पतन अंग्रेजी शासन काल मे हुआ। 1825 मे कैप्टन जेम्स फ्रेंकलिन ने झाँसी में बनने वाली अच्छी किस्म की कालीन का उल्लेख किया था।[32] 1844 में

---

30 पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 61

31 पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 62

32 फ्रेंकलिन जे., मेमायर्स ऑफ बुन्देलखण्ड मई 12, 1825, पृष्ठ 277

कर्नल स्लीमैन ने भी इस क्षेत्र में बनने वाली ऊनी कालीन की प्रशंसा की थी[33] लेकिन आगे आने वाले दिनों में सरकार की निषेधात्मक व्यापार की नीति और संरक्षण के अभाव मे इस क्षेत्र का यह उद्योग नष्ट हो गया। इसके अतिरिक्त झाँसी जिले के तालबेहट परगने में आस–पास के गांवों में कम्बल बुनाई का कार्य होता था।[34] मड़ौरा में पीतल तथा लोहे की अनेक कलात्मक वस्तुएं बनाई जाती थी।[35] ललितपुर में भी अमेरिकन मिशनरियों ने सुअर की चर्बी से मसक बनाने का कार्य प्रारम्भ किया था।[3] ऐरच में वहाँ के गाँवों के आस–पास के मुसलमान बड़ी ही कलात्मक ढंग की चुनरी बनाते थे।[36] इसके अतिरिक्त ललितपुर में चन्देरी में बनने वाली अच्छी किस्म की साड़ी निर्मित करने के लिए कुछ जुलाहे आकर बस गये थे लेकिन 1865 में हैजा फैल जाने के कारण उनमे से अधिकांश मर गए।[37] इसके बाद कभी भी ऐसा प्रयास नही किया गया।

बाँदा जिले मे भी इसी प्रकार के कुटीर उद्योग थे जिनका विकास करने पर इस क्षेत्र के लोगों को राहत प्रदान की जा सकती थी। वहाँ मोटे सूती कपड़े की बुनाई का कार्य होता था जिसे **गजी** कहा जाता था। इस कपड़े की रंगाई करके उसे फर्श इत्यादि पर बिछाने के कार्य में लाया जाता था।[38] बाँदा के विभिन्न स्थानों में खाना पकाने के लिए पीतल तथा ताँबे के बर्तन बनाने के कार्य भी होते थे तथा

---

[33] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 75, तथा ई.बी. जोशी, झाँसी गजेटियर, लखनऊ, 1965 पृष्ठ . 144

[34] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 75

[35] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 75

[36] इम्पे डब्ल्यू.एच.एल. तथा मेस्टन, जे.एस., झाँसी सेटेलमेण्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892 पृष्ठ 23

[37] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 348

[38] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77

जगह–जगह सोने वा चाँदी के अच्छे किस्म के आभूषण बनाए जाते थे।[39] इस जिले के कुछ कस्बों में कम्बल तथा सूती वस्त्र बुनाई के कार्य भी होते थे तथा कहीं – कहीं टाट भी बुना जाता था।[40] 1909 में ड्रेकब्राक मैन ने लिखा है – बाँदा से जुड़े हुए कुछ गाँवो में जैसे रौली, कल्यानपुर और गोड़ा आदि स्थानों पर विभिन्न प्रकार के पत्थरों को काटकर उन पर पॉलिस करके अलंकृत किया जाता था।[41] कर्वी में शिल्क की कढ़ाई का हस्तशिल्प विकसित दशा में था।[42] इस जिले का सबसे प्रसिद्ध उद्योग पत्थरों की कटाई तथा पॉलिश करना था।[43] केन नदी के तलहटी में जो छोटे किस्म के पत्थर पानी की रगड़ से मुलायम व चिकने हो जाते थे उन्हे लेकर यहाँ के कारीगर पॉलिश करके उन्हे अच्छी किस्म के चमकीले पत्थरों के रूप मे कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करते थे।[44] इन पत्थरों को लकड़ी के टुकड़ों पर मढ़कर अच्छी हस्त निर्मित चीजें बनाई जाती थी। इस कलात्मक कार्य से यहाँ के कारीगरों को दिल्ली प्रदर्शनी में पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था[45] लेकिन दुर्भाग्यवश अंग्रेजी शासनकाल में इन उद्योगों को कोई संरक्षण नही दिया गया, बल्कि सरकार ने निषेधात्मक तरीके अपनाकर इन्हे हतोत्साहित किया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि सरकार ने बुन्देलखण्ड के व्यापार को नष्ट करने की एक योजना सी बना ली थी। कर्वी स्थित सूती मिल[46] जिसमें बुन्देलखण्ड के आस–पास के सूत की कताई

[39] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77
[40] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77
[41] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 76–77
[42] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77
[43] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77
[44] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77
[45] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., बाँदा गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 77
[46] कैडेल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट बाँदा, 1881 पृष्ठ 102

होती थी, 1903 में बन्द हो गयी। अतः यहाँ कार्यरत 140 कर्मचारी निकाल दिए गए, इससे बेरोजगारी को बढ़ावा मिला।[47]

हमीरपुर जिले में भी खरूआ वस्त्र के निर्माण के कई केन्द्र थे[48] जो अंग्रेजी शासनकाल में नष्ट हो गए। यही स्थिति कुछ अन्य कुटीर उद्योग धन्धों की भी रही जिसमें जुलाहों द्वारा वस्त्र निर्मित, लोहे, पीतल आदि के बर्तन का निर्माण का कार्य, आभूषण निर्माण इत्यादि थे।[49] 1847 में ऐलन ने लिखा था कि "**हमीरपुर जिले मे कपड़ों की रंगाई का कार्य कुछ स्थानों पर होता है जिसमें खरूआ कपड़े शामिल होते हैं। कहीं कहीं पर आभूषण निर्माण कार्य होता था। ये सम्पूर्ण उद्योग अंग्रेजी सरकार की निषेधात्मक नीति से नष्ट हो गए।**"

जालौन में भी अल पौधे की खेती काफी बड़े पैमाने पर की जाती थी। कोंच, कालपी, सैयद नगर और कोटरा में अल पौधे की जड़ से जो रंग तैयार किया जाता था उससे वस्त्रों की रंगाई की जाती थी।[50] इस खरूआ कपड़े के कई प्रकार होते थे जिनको बड़े ही कलात्मक ढंग से रंगा जाता था। इस प्रकार इस क्षेत्र मे स्थित सभी उद्योग धन्धे अंग्रेजी शासन की नीति के कारण नष्ट हो गए जिससे आर्थिक, सामाजिक पिछड़ापन आया और बेरोजगारी बढ़ी।

बुन्देलखण्ड में कपास की खेती का पतन –

अंग्रेजी शासन से पूर्व इस क्षेत्र की काली मिट्टी मे उच्च किस्म की कपास पैदा होती थी। 1903 में झाँसी जिले के बारे में यहाँ के बन्दोबस्त अधिकारी **पिम** ने

---

[47] कैडेल ए, सेटेलमेण्ट रिपोर्ट बाँदा, 1881 पृष्ठ 102
[48] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 183
[49] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 183
[50] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 201

लिखा था[51] कि "इस जिले में 10.1 प्रतिशत खेती योग्य जमीन में कपास उत्पादन होता है। मोठ में यह प्रतिशत 10.1 है जबकि गरौठा में 13.7 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि में कपास की खेती की जाती हैं[52] ललितपुर जिले में कपास की किस्म निम्न होने के कारण कपास का उत्पादन अधिक नही हो पाता था।[53]

जालौन जिले की मार भूमि कपास उत्पादन के अधिक अनुकूल थी। एक एकड़ मार भूमि में 15 मन कच्चा कपास का उत्पादन होता था। उन दिनों रु0 18 प्रतिमन के हिसाब से इसकी बिक्री होती थी।[54] कपास किसानो की आमदनी का अच्छा स्रोत था। आश्चर्य यह है कि इसका उत्पादन लगातार कम होता गया। प्राप्त आँकड़े इसकी पुष्टि करते है जैसे – झाँसी जिले में 1865 ई में 35107 एकड़ भूमि में कपास बोई गई किन्तु 1903 तक आते–आते यह 34363 एकड़ तक सीमित रह गयी।[55] बाद के वर्षों में यह उत्पादन और कम होता गया वास्तविकता यह है कि मऊरानीपुर, कालपी, पूँछ, कोटरा, सैयदनगर, एरच आदि स्थानों पर वस्त्रों की बुनाई और प्रिटिंग का जो कार्य होता था उन केन्द्रों का पतन होने लगा अतः इसमें प्रयुक्त कपास की माँग भी कम होती गई। 1903 में कर्वी की सूती मिल भी बन्द हो गई।[56] इससे कपास की मांग कम हो गई और इसका उत्पादन घटने लगा। सरकार ने कपास उत्पादन और बुन्देलखण्ड के वस्त्र उद्योग को हतोत्साहित किया जिससे इस क्षेत्र के किसानों का नुकसान हुआ और सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन बढ़ा। यही स्थिति तिलहन की खेती की भी रही, यह ऐसी फसलें थी जिससे

---

[51] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 55
[52] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 55
[53] पाठक एस.पी., झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 55
[54] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 316
[55] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 201
[56] एटकिन्सन, ई.टी, बुन्देलखण्ड गजेटियर, (वही) पृष्ठ 250–251

किसानों को नगदी प्राप्त होती थी लेकिन इसकी खेती के पतन ने आर्थिक तंगी को और बढ़ावा दिया जिससे किसान गरीबी और महँगाई की चपेट मे आ गए।

सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन के कारण अपराधों मे वृद्धि –

अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड को पिछड़ा बनाए रखने के लिए सुनियोजित नीति बनाई गई। इसका कारण यह था कि अंग्रेज अधिकारी यह समझते थे कि इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता प्रिय जनता को सामाजिक, आर्थिक रूप से कुचलकर उन्हे कमजोर बनाया जा सकता है और इस क्षेत्र के लोगों के स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जा सकती है। अंग्रेज अधिकारी 1857 के विद्रोह के समय जन आक्रोश को भूल नही पाए थे। उनके मन में हमेशा यह डर लगा रहता था कि जैसे ही ब्रिटिश नियन्त्रण में ढील हुई वैसे ही बुन्देलखण्ड के लोग स्वतन्त्रता की घोषणा कर देगें अतः सोची समझी नीति के द्वारा इस क्षेत्र के लोगों को सामाजिक, आर्थिक रूप से पिछड़ा बनाया गया।

मध्य भारत तथा बुन्देलखण्ड के इस भू–भाग को गरीबी और भुखमरी के कगार पर लाकर अंग्रेज अधिकारियों ने अमेरिका तथा यूरोप से आने वाले ईसाई धर्म प्रचारको के कार्य को और सरल बना दिया। ये ईसाई प्रचारक ओहियो नगर से चलकर सर्वप्रथम नौगाँव की छावनी में आए थे। यहाँ से छतरपुर, कुलपहाड़, झाँसी, ललितपुर, बाँदा आदि क्षेत्रों में स्कूल, अस्पताल और अनाथालय की स्थापना कर गरीबी से त्रस्त बुन्देलखण्ड की जनता को नए धर्म की ओर आकर्षित किया। अतः लोगों ने इस सहायता के बदले अपने धर्म परिवर्तन में भी कोई कमी नही की। धर्म परिवर्तन के जरिए अंग्रेज एक वफादार प्रजा का निर्माण करना चाहते थे जो धार्मिक

विश्वासों की दृष्टि से अंग्रेजो के समीप हो इसलिए सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन द्वारा अंग्रेजों ने अपने दोनो हितों की पूर्ति की। व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी से पीड़ित लोग डकैती, ठगी, लूट आदि जघन्य अपराधों में लिप्त होने लगे। बुन्देला ठाकुर जो इस क्षेत्र के राजे–महाराजे दीवान होते थे, उनका इतना अधिक आर्थिक पतन हुआ कि वे डकैती जैसे गम्भीर अपराधों को अपनाने लगे। ललितपुर, जनपद बुन्देला ठाकुरों के गैंग से अधिक प्रभावित हुआ। ड्रेक ब्रॉक मैन[57] ने लिखा है कि "**ललितपुर सब डिवीजन में प्रत्येक गाँव प्रभावशाली बुन्देला डकैतों से आतंकित था। सर्वप्रथम दलीप सिंह तथा रणधीर सिंह के एक गिरोह का गठन हुआ। सर्वप्रथम दलीप सिंह ने 1878 मे ललितपुर जेल से भागकर रणधीर सिंह के साथ मिलकर इसी गिरोह का गठन किया था।[58] रणधीर सिंह शंकर जेल इलाहाबाद में कैद था किन्तु अपने एक साथी मंगलिया के साथ भागने में सफल हुआ।[59] ललितपुर के जंगलों में छिपकर यह डकैती करने लगा और धीरे–धीरे यह गैंग बुन्देलखण्ड तथा आस–पास के क्षेत्र में आतंक फैलाने लगा।**" सनौरिया अपराधिक जन जातियों ने ठगी का पेशा अपनाया।[60] इस तरह इन अपराधियों का जन्म बुन्देलखण्ड के पिछड़ेपन के कारण ही था।

अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा की भावना का उदय –

बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन 1802 से गठन एवं प्रशासन की अवधि (1947) तक औपनिवेशिक शासन ने यहाँ के लोगों का जो सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न

---

[57] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 128
[58] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 128
[59] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 128
[60] ड्रेकब्राकमैन, डी.एल., झाँसी गजेटियर, इलाहाबाद 1909 पृष्ठ 128

किया उसका यह प्रभाव पड़ा कि लोग अंग्रेजो को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। राजस्व करों मे वृद्धि, लघु उद्योग धन्धों का विनाश, कृषि एवं सिंचाई की सुविधाओं का अभाव आदि कारणों से जो गरीबी और भुखमरी फैली, उस कारण लोग अंग्रेजी शासन को समझने लगे इसके साथ ही 1857 के विद्रोह के समय बुन्देलखण्ड के लोगों ने विदेशी शासन के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया। इस विद्रोह के समय विदेशी शासन ने अमानुषिक तरीके अपनाए। दमनचक्र की यादें लोगों के दिमाग में लम्बे समय तक बनी रही। झाँसी के कमिश्नर मेजर पिनकने ने 1858 में अपने एक गोपनीय पत्र में यह उल्लेख कर दिया था[61] कि **''झाँसी जिले के लोग स्वयं को हम लोगों से दूर रखे हुए हैं।''** यहाँ के लोगों की अंगेजों से पृथक रहने की प्रवृत्ति लम्बे काल तक चलती रहीं इसके साथ ही अंग्रेजी यातनाओं को याद करते हुए उन्हे कुत्ते की तरह तिरस्कृत करने लगे। झाँसी नगर में फारेस्ट कमिश्नर मेजर पिनकने के स्मारक को लोग अब भी **'कुत्ते की टौरिया'** कहकर पुकारते हैं। विदेशी शासन के दमन के प्रति लोगों द्वारा इस प्रकार के तिरस्कृत शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड एजेन्सी के प्रशासन के समय विदेशी शासन ने जो नीतियाँ अपनायीं वह इस क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन का कारण रहा।

[61] पत्र संख्या 48, 22 मार्च 1858, पिनकने सप्ताहिक रिपोर्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(A) भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

1. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 11 जून 1817 ई0 फाइल नं0 14
2. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 7 अप्रैल 1817 ई0 फाइल नं0 62
3. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 26 अक्टूबर 1817 ई0 फाइल नं0 49
4. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल प्रोसीडिंग कन्सल्टेंशन – 17 जनवरी 1842 ई0 फाइल नं0 6 से 2
5. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 8 जून 1842 ई0 फाइल नं0 114
6. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 16 नवम्बर 1842 ई0 फाइल नं0 125
7. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 28 फरवरी 1856 ई0 फाइल नं0 29, 31
8. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – पर्श्यन लेटर नं0 256, 15 अप्रैल 1856 ई0
9. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 12 दिसम्बर 1856 ई0 फाइल नं0 195
10. फॉरेन डिपार्टमेन्ट सीक्रेट कन्सल्टेंशन – 31 जुलाई 1857 ई0 फाइल नं0 182
11. फॉरेन डिपार्टमेन्ट सीक्रेट कन्सल्टेंशन – 18 दिसम्बर 1857 ई0 फाइल नं0 235 (I, VI)

12. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 13 अगस्त 1858 ई0 फाइल नं0 140
13. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 25 सितम्बर 1858 ई0 फाइल नं0 326–328
14. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 8 अक्टूबर 1858 ई0 फाइल नं0 82
15. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – लेटर नं0 30 दिसम्बर 1859 ई0 फाइल नं0 283
16. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – लेटर नं0 31 दिसम्बर 1858 ई0 फाइल नं0 2131
17. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – लेटर नं0 8 नवम्बर 1858 ई0 फाइल नं0 20
18. फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेंशन – 18 जुलाई1859 ई0, फाइल नं0 188
19. 1858 डेटेड कैम्प वानपुर – 11 मार्च 1858, लेटर नं0 19
20. ऑफ 1858 ई0 डेटेड कैम्प तालबेहट – 14 मार्च 1858 ई0, लेटर नं0 22
21. ऑफ 1858 ई0 डेटेड कैम्प विफोर झाँसी – 22 मार्च 1858 ई0, लेटर नं0 48
22. ऑफ 1858 ई0 डेटेड कैम्प विफोर झाँसी – 29 मार्च 1858 ई0, लेटर नं0 69
23. पिनकने वीकली रिपोर्ट – नवम्बर 1848, 22 मार्च 1858, ई0
24. प्रोसीडिंग होम डिपार्टमेण्ट पॉलिटिकल ब्रांच – फाइल नं0 19/1908 ई0 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
25. प्रोसीडिंग होम डिपार्टमेण्ट पॉलिटिकल आई0के0डब्ल्यू0 ब्रांच फाइल नं0 3/79/42, 1942, पोल0आई0पार्ट–2, (9/410, 9/413), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

26. झाँसी डिवीजन प्री म्यूटिनी रिकार्ड : जिल्द 47, डिपार्टमेण्ट III फाईल नं0 319

27. झाँसी डिवीजन प्री म्यूटिनी रिकार्ड : जिल्द 46, डिपार्टमेण्ट III फाईल नं0 298

28. झाँसी डिवीजन प्री म्यूटिनी रिकार्ड : जिल्द 88, डिपार्टमेण्ट XXVIII फाईल नं0 7

29. झाँसी डिवीजन प्री म्यूटिनी रिकार्ड : जिल्द 84, डिपार्टमेण्ट XIX फाईल नं0 175

30. झाँसी डिवीजन प्री म्यूटिनी रिकार्ड : जिल्द 22, डिपार्टमेण्ट III फाईल नं0 199

31. झाँसी डिवीजन प्री म्यूटिनी रिकार्ड : जिल्द 47, डिपार्टमेण्ट III फाईल नं0 301

32. बुन्देलखण्ड एजेन्सी रिकार्ड, फाईल नं0 3, 1857

33. बाँदा कलेक्ट्रिएट प्री म्यूटिनी रिकार्ड, फाइल नं0 36, भाग - II

B. BUNDELKHAND AGENCY RECORDS

45. File No. 17/1861 : Introduction of Engg. Language as official medium of correspondence with Native State.

46. File No. 3/1886-76 : Educational progress in schools of Datia & Charkhari state.

47. File No. /1867 : Measures for suppression of Sunoria thieves of Orchha.

48. File No. 2/1867-68 : Measures for suppression of sunoria thieves of Orchha.

49. File No. 26/1868-71 :	Measures for suppression of sunoria thieves in some of statesof Bundelkhand Agency- History of sunoria thieves.
50. File No. 5/1872-78 :	Establishment of Rajkumar College at Nowgang in memory of Lard Mayo.
51. File No. 21/1871-80:	Appointment of Native Doctor and compounder for charitable dispensary at Nowgang.
52. File No. 11/1872-84:	purchase of House for Rajkumar College at Nowgang.
53.File No. 1/1878-84 :	Inspection of Native state,s school.
54. File No. 10/1886-88:	Proposed Increase of police establishment at nowgang.
55. File No. 13/1894-99 :	Docoity.
56. File No. 0/1886-88 :	Proposed increase of police establishment at nowgang.]
57. File No. 7/1888 :	Political intelligence Diary regarding treasury, toshakhana and public offices in bundelkhand Agency.
58. File No. 20/1894-1900 :	Sangrias professional thieves.
59. File No. 2/1898 :	Precaution against plague.
60. File No. 56/1900-01 :	Proposals of sending the boys of chiefs and jagirdars to Daly college Indore.
61. File No. 60/1901-04 :	Nowgong jail –reorganization of nowgong jail establishment.
62. File No. 2/1903 :	opening of dispensary at panna state contain list of furniture's of the bir singh dispensary-suggestions for alterations of state hospital panna.
63. File No. 24/1904 :	primary education in native states of bundelkhandAgency.

64. File No. 4/1907 : introduction of subscription from European officers for the support of nowgong civil hospital.

65. File No. 13/1909 : opening of dispensary at pad aria in Ajaigarh state.

66. File No. 33/1915 : opening of dispensary at datia state.

67. File No. 4/1919 : opening of dispensary at Alipore.

68. File No. 116/1921 : Amalgamation of post of agency surgeon in bagel hand with post of agency surgeon in bundelkhand.

69. File No. 111/1923 : opening of zanana hospital datia.

70. File No. 111/1923 : opening of dispensary at dhanwahi in nagod state.

71. File No. 24/1924 : Opening of maternity and child welfare center at nowgong.

72. File No. 18/1930 : Organisation of Baby week during 1930.

73. File NO. 7/1931 : Opening of dispensary at Malehra (Chattarpur state).

74. File No. 12/1932 : Proposal for opening of anti rabic center at nowgong civil hospital.

75. File No. 25/1938 : medical arrangement in charkhari state.

76. File No. 49/1947 : Annual grant to now gong civil hospital.

77. Introduction note to Bundelkhand Agency Record, Vol. I 1865-1915.

C. REPORTS, MEMOIRS AND TREATIES :

Aitchinson, C.U. : A Collection of Treaties, Engagement and Sanads, Volume III & V. Calcutta. 1909.

Cadell, A. : Settlement Report on the District of Banda (Exclusive of Karwi, Sub-Division) Allahabad, 1881, N.W. Provinces and Oudh Government.

Cunnigham, A. : Archeological Survey Reports, Volume XVIII and XXI, Indological Book House, Varanasi 1969.

Davidson, J. : Report on the Settlement of Lullutpore, North-western Provinces, Allahabad, 1869.

Franklin, J. : Memoirs on Bundelkhand, 1825.

Heare, H.S. : Final Report on the Revision of Settlement in the 1896.

Humphries, E.de. M. : Final Report of the Revision of the Settlement of the Banda District. Allahabad, 1909.

Hutchenson and Chick, N.A. : Annals of Indian Rebellion 1857 + 58.

Impey, W.H.L. and Meston, J.S. : Report on the Second Settlement of the Jhansi District (Excluding the Lalitpur Sub-Division), North-western Provinces, Allahabad, 1892.

Jenkinson, E.G. : Report of the Settlement of Jhansi District, Allahabad, 1871.

Mukherji, P.C. : Report on the Antiquities in the District of Lalitpur, Roorkee, 1899, Reprinted by Indological Book House, New Delhi.

Petterson, A.B. : Final Settlement Report on Karwi.

Pim, A.W. : Final Settlement Report on the Revision of the Jhansi Distict, including Lalitpur sub-Division, Allahabad, 1907.

Pinkney, F.W. : Official Narrative of 1858. Indian Historical Records Commission Proceedings, Volume XXVII, Part II, Nagpur, 1950

D. DISTRICT GAZATTEERS

Atkinson, E.T. : Statistical Descriptive and Historical Account of the N.W. Provinces of India, Volume I (Bundelkhand), Allahabad, 1874.

Drake Brockman, D.L. : Banda Gazetteer, Allahabad, 1909.

Drake Brockman, D.L. : Banda Gazatteer, Volume XXI of the District Gazatteers of the United Provinces of Agra and Oudh, Allahabad, 1929.

Drake Brockman, D.L. : Jhansi : A Gazetteer, Allahabad, 1909.

Hunter, W.W. : Imperial Gazetteer of India, Vol. IV, London, 1881.

Joshi, E.B. : Uttar Pradesh District Gazetteer Jhansi, Lucknow, 1965.

Luard, C.E. : Datia State Gazetteer, Lucknow, 1907.

Luard, C.E. : The District Gazetter, of the United Provinces of Agra and Oudh (Supplementary Statistics), Volume XXI, Allahabad, 1924.

: Eastern States (Bundelkhand) Gazetteer, Lucknow, 1907.

: Imperial Gazetteer of India, Volume I and II, Calcutta, 1908.

E. OTHER HISTORICAL WORKS

Bhatia, B.M. : Famines in India, Asia Publishing House New Delhi.

Burgess, J.A.S. : Indian Antiquary, Volume IV, Indological Book House, Reprint Corporation, 7 Malkaganj, Delhi.

Beames, John. : Memoirs on the History, Folklore and Distribution of the Races of the North-Western

Provinces of India, (Amplified addition of H.M. Elliot's Suppliemntal glossary of Indain Terms) Volume I, London, 1869.

Bose, N.S. : History of the Chandellas of Jejakabhuti, Calcutta, 1956.

Crooks, W. : The Tribes and castes of the North-western Provinces and oudh, Volumes I to IV, Calcutta, 1896.

Crooks, W. : Races of Northern India Cosmo Publication, Delhi, 1973.

Dharma Bhanu, : History and Administration of the Provinces of Agra (named subsequently the N.W. Provinces) 1834, 1858 (A Thesis submitted for Ph.D. in the Agra University in 1954.

Dey, N.L. : The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, Calcutta, 1899.

Godsey, Visnu Bhatt. : Majha Pravas, Edition II, 1948 (Chitrasala Prakashan, Pune 2).

Gupta B.D. : Maharaja Chhatrasal Bundella, Agra, September, 1958.

Ghurye, G.S. : Caste and Class in India, Bombay, 1957.

Hira Lal. : Madhya Pradesh Ka Itihas (Kashi Nagari Pracharini Sabha, Varanasi).

Kaya, J.W. and
Malleson, G.B. : The Hostory of Seapey war in India, Volume I to IV, London, 1864-1888.

Tripathi, K.P. : Bundelkhand ka Brihad Itihas, 1991.

Mishra, Keshav Chandra. Chandel Aur Unka Rajatva Kal. (Kashi Nagari Pracharini Sabha, Varanasi) Samvat 2011.

Mishra, A.S. : Nana Sahib Peshwa, Lucknow, 1961.

Munshi, Shiam Lal : Tawarikh-I-Bundelkhand, Nowgong, 1880.

Maher, B.D. : Laxmi Bai Rase of Madnesh, Edition I, Jhansi, 1969.

Mitra, Ramcharan Hayaran Bundelkhand Ki Sanskriti Aur Sahitya, Rajkamal Publication, Delhi.

Pannikar, K.M. : A Survey of Indian History, Reprinted by Asia Publishing House, Bombay, 1995.

Parasnis, D.V. : Jhansi Ki Rani Laxmi Bai (Hindi Translation) Edition V, Samvat 1995, Sahitya Bhavan LTd., Prayag.

Pogson, W.R. : A History of the Bundelas, 1828, (Reprinted by B.R. Publishing Corporation Delhi, 1974).

Rizvi, S.A.A. (Ed). : Freedom, Struggle in Uttar Pradesh, Volume I & III, Lucknow, 1957 and 1959.

Rogers, A. and Beveridge, H. (Ed and Tr). : The Tuzuk-I-Jahangiri, Volume I, London, 1909.

Russel, R.U. : Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Volume IV, London, 1916.

Saksena, B.P. : History of Shahjhan of Delhi, Allahabad, 1948.

Sarkar, J.N. : History of Aurangzeb, Volumes I and II, Edition II, Calcutta, 1925.

Sarkar, J.N. : Fall of the Mughal Empire, Volume III, Edition II (M.C. Sarkar & Sons, Calcutta, 1952.)

Sardesai, G.S. : New History of the Maratha, Volume II.

Srinivasan, C.K. : Baji Rao the First, the Great Peshwa Bombay, 1962.

Srivastava, A.L. : The First two Nawabs of Avadh, Ed. II, Agra, 1951.

Sen, Surendra Nath. : Eighteen Fifty Seven, Indian Press, Calcutta, 1951.

Pathak, S.P. : Jhansi During the British Rule, I Ed. 1987, Ramanand Vidya Bhawan, New Delhi.

Sharma, S.R. : Mughal Empire in Indian. (Reprint Ed Agra, 1971).

Sunder Lal. : Bharat Men Angreji Raj, Volume I, (Lucknow, 1960).

Singh, Pratipal : Bundelkhand Ka Sankshipt Itihas, Volume I, Hitchintak Press, Varanasi, Samvat 1985.

Srivastava, Hari Shankar Famines and Famine Policy of the Government of India (1858-1918). (A thesis for Ph.D. Degree submitted in Agra University, in 1956.)

Tiwari, G.L. : Bundelkhand Ka Sankshipt Itihas, Ed. I, Samvat 1990, Kashi Nagari Pracharini Sabha, Varanasi.

F. PAMPHLETS

'A Brief Historical Statement – The FECI', Nov. 3, 1974.

Bundelkhand Friends Church Membership Record (1902-1927).

CEEFI Trienniel Report, 1965.

CEEFI Trienniel Report, 1968.

CEEFI Trienniel Report, 1971.

"Greetings from Nepal" Mari Printing House, Darjeeling, 32 P. India Mission Mannual.

India Missionary Directory, 1948.

जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री – यूनिवर्सिटी ऑफ केरल, त्रिवेन्द्रम।

इतिहास अनुशीलन – इतिहास अनुशीलन प्रतिष्ठान, भोपाल।

मधुकर – पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी, कुण्डेश्वर।

काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

एडवोकेट ऑफ इण्डिया, समाचार पत्र 2 नवम्बर 1916, मुम्बई

द पायनियर (लखनऊ)। 2 नवम्बर 1916।

विन्ध्याचल पत्रिका, छतरपुर।